|| Preamble || Geeta - Chapter 11 ||

To nurture and intensify Arjun's devotion, Shree Krishna had described His divine vibhūtis (opulence) in the previous chapter. Towards the end, He had mentioned that all the beauty, glory, and power is just a spark of His immeasurable splendour. Hearing this, Arjun became curious.

In this chapter, he requests the Lord to show him His viśhwarūp, or the infinite cosmic form. Shree Krishna grants Arjun divine vision to see His infinite-form that comprises all the universes. Arjun sees the entire creation in the body of the God of gods with unlimited arms, faces, and stomachs. It has no beginning or end and extends immeasurably in all directions. His radiance is similar to a thousand suns blazing together in the sky. The sight dazzles Arjun, and his hair stands on end. He witnesses the three worlds trembling with fear of God's laws and the celestial gods taking His shelter. He can see several sages offering prayers and singing hymns exalting God. Then Arjun sees the Kauravas, along with their allies, rushing into the mouth of this formidable form, who look like moths rushing with great speed toward the fire to perish.

Beholding this universal form, Arjun confesses that his heart and mind are unstable with fear. Although petrified by the appearance, Arjun wants to know the identity of this breath-taking form of God, who has no resemblance to his teacher and friend Shree Krishna. The Lord declares that in the form of Time, He is the destroyer of the three worlds. He has already destroyed the Kaurava warriors, and the Pandavas' victory is certain. Therefore, Arjun should not be fearful anymore. He should just get up and fight.

Overwhelmed, Arjun starts praising the Lord who, in His infinite forms, pervades the entire universe and offers several salutations to His majestic form. He also begs for forgiveness to Shree Krishna for any offenses or acts of disrespect he may have committed in ignorance, considering Him to

be a mere human. Arjun then pleads the Lord for His grace and requests Him to take a pleasing form.

Shree Krishna then manifests into His four-armed form, carrying a mace, disc, conch shell, and lotus flower in each arm. Soon after, He resumes His gentle and loving two-armed form of the charming Shree Krishna. He then tells Arjun that before Him, no one has ever seen God in this primeval cosmic form. Even those who study the Vedas, do severe penance, charity or fire sacrifices, etc., do not get this opportunity. Only with unalloyed devotion similar to Arjun can one see God, get to know Him, and attain Yog or union with Him.

Courtesy - The song of GOD (Swami Mukandanand ji)

।। प्रस्तावना ।। गीता- अध्याय 11।।

एकादशोऽध्यायः अर्जुन के प्रार्थना पर भगवान ने उन को अपने विश्वरूप का दर्शन करवाया। इसलिये इस अध्याय का नाम **विश्वरूप दर्शन योग** रखा गया है। भगवान द्वारा अपने स्वरूप का वर्णन इतना सरस एवम गहन है कि गीता के उत्तम भागो में इस अध्याय की गणना होती है। परमात्मा निर्गुणाकार है अतः स्वरूप दर्शन के माया का सहारा ले कर अर्जुन को दर्शन देते है और अभी तक जो हम ने पढ़ा है उस स्वरूप के दर्शन को हम लोग करेंगे।

अध्याय सातवे में ज्ञान-विज्ञान योग हम ने परमात्मा की अष्टधा प्रकृति, योग माया को जाना, जिस में परमात्मा को समझने के श्रद्धा, विश्वास की बात कही गई थी। अध्याय आठ में ब्रह्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ और अधिदेह के द्वारा मृत्यु और मृत्यु के उपरांत आदि को पढ़ा। इसे हम अध्यात्म का ज्ञान भी कह सकते है। अध्याय नवम में ज्ञान विज्ञान युक्त भक्ति मार्ग पढ़ा, जिस में परमात्मा ने सब के लिये समान है, जो उस की शरण मे जाता है, उसे योगक्षेम वही प्रदान करता है। इसी के कारण अर्जुन को परमात्मा के स्वरूप को जानने की इच्छा हुई, और दशम अध्याय में उस ने परमात्मा से उन की विभूतियों को विस्तार से बताने की प्रार्थना की। विभूतियों को सुनने के बाद, तृप्ति कानो सुनी बातों से अधिक आंखों से देखी वस्तु से होती है। अक्सर हम जब किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान के विषय किसी से अधिक बड़ाई सुन लेते है, तो उस को आंखों से देख कर ही

मन एवम आत्मा की तृप्ति होती है। अतः नवम एवम दशम भक्तियोग में परमात्मा के विश्वरूप का दर्शन अर्जुन के आग्रह पर परमात्मा कराते है, जिन्हें हम आगे पढ़ेंगे।

अर्जुन को अपने विराट विश्वरूप दर्शन कराने से पूर्व अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान की गई थी, यही दिव्य दृष्टि संजय को महृषि व्यास से प्राप्त थी। इसलिये दिव्य स्वरूप का दर्शन दो लोग कर पाए और इस के अतिरिक्त बर्बरीक जो महाभारत का युद्ध देख रहे थे, उन्होंने दर्शन किये। हमारी सांसारिक इन्द्रियों से मन जुड़ी होने से संवेदनाओ, कामनाओ और आकांक्षाओं से घिरी रहती है। इन्द्रिय-मन-बुद्धि के संयम के अभाव में हम जो कुछ भी देखते या सुनते है, उस का तुरन्त रिएक्शन हमारे मन मे अहम और कामना के अनुसार होता है। दिव्य दर्शन में अहम या कामना नही है, वह परमात्मा प्रत्यक्ष देखना तभी संभव है, जब उस मे हमारे विचार और अहम का अभाव हो। अक्सर लोग सुनने से पहले जवाब देने को तैयार रहते है। यह व्हाट्सएप्प ग्रुप में अक्सर देखा जाता है कि हमारी रुचि संदेश पढ़ने और समझने की अपेक्षा भेजने में ज्यादा रहती है। इसलिये जो हमारे सामने प्रत्यक्ष है, उस की अपेक्षा हम उस को अधिक महत्व देते है, जो सामने नही है।

विश्वरूप दर्शन में प्रकृति और चेतन के प्रत्येक कण में परमात्मा होने के बाद भी हम उसे महसूस या देख नही पाते। हमे हमारे परमात्मा का वही स्वरूप चाहिए, जिस की छवि या स्वरूप बचपन से हमारे भीतर बन गयी है। जब तक समभाव नही होते, उस के स्वरूप के दर्शन भी हमे एक छवि की भांति लगेंगे। दिव्य दृष्टि का अर्थ ही यही है कि अपने अंदर के विचारों, कामनाओ, अहम का त्याग कर है, प्रकृति के नेत्रों की बजाए अपने ह्रदय में बसे परमात्मा के नेत्रों से उस परमब्रह्म के विराट स्वरुप के अवलोकन करें। उसे अपने मै, अपने चारों ओर महसूस करे। उस के पूर्ण स्वरूप के सम्पूर्ण ब्रह्मांड की क्रियाओं को काल के साथ अनुभव करें। इसलिये अपने अंतर्मन को पूर्णतयः शांत और एकाग्र करते हम विश्वरूप दर्शन के इस अध्याय में हम यह कोशिश करते है।

परमात्मा के सगुण विराट स्वरूप का दर्शन अदृश्य, अधरेय, अस्पृश्य, निर्गुण, निष्फल, अज, नित्य, शाश्वत और निष्क्रिय बताया गया है। यह परस्पर विरोधी कथन है। परमात्मा को दूर भी, पास भी, सत भी और असत भी कहा गया है। इसी प्रकार उसे सगुण भी और निर्गुण भी माना गया है। इस लिये परमात्मा के स्वरूप का वर्णन नेति नेति कह कर सम्पूर्ण स्वरूप की इतिश्री करदी गई है। परमात्मा का सच्चा स्वरूप अव्यक्त ही है, इसलिये परमात्मा के स्वरूप जो अर्जुन को प्रकट किया गया है, वह भी उन का मायिक स्वरूप ही है, जिस का अद्भुत

विवरण व्यास जी द्वारा निरूपण किया गया है। इस आगे 55 श्लोक में हम श्रद्धा, प्रेम, विश्वास के साथ स्मरण और समर्पित भाव से आनंद के साथ पढ़ते है और मन की आंखों से उन का दर्शन करते है।

ध्यान दीजिए, इस में अर्जुन ने भगवान का विराट विश्वरूप देखा। विराट रूप का अर्थ है मानवीय धरातल और परिधि के ऊपर जो अनंत विश्व का प्राणवंत रचना विधान है, उसका साक्षात दर्शन। विष्णु का जो चतुर्भुज रूप है, वह मानवीय धरातल पर सौम्यरूप है। विश्व रूप दर्शन के लिये इन्द्रिय, मन और बुद्धि का संयम नही है तो स्वीकृति भी नही होगी। क्या आप के सामने कोई भिक्षुक खड़ा हो कर कहे कि मैं ब्रह्म स्वरूप हूँ, हम स्वीकार कर सकते है?, जब तक श्रद्धा, विश्वास, प्रेम न हो, कोई किसी साधु-संत या किसी भी देवता या अपने निजी धर्म को छोड़ कर अन्य देवता को स्वीकार नही करता। फिर विश्वरूप के दर्शन को पुस्तक की भांति, पढ़ना तो सम्भव है किंतु विश्वरूप में उस को दर्शन करना, तभी संभव है जब उस वर्णन की मन और ह्रदय से स्वीकृति हो। इसी के लिये सरल और सयंम की आवश्यकता है।

हम लोग गीता अध्ययन के दशम अध्याय समाप्त कर चुके है। प्रथम छह अध्याय "तत" अर्थात जीव के विषय मे जीव को किस प्रकार योग साधना द्वारा अपने को जानना चाहिये कि वह वास्तव में क्या है। इसके लिये कर्मयोग, ध्यानयोग, ज्ञानयोग के द्वारा सांख्य एवम कर्मयोग के विषय मे बताया गया। अध्याय 7 से 12 तक हम 'त्वम' अर्थात परमात्मा के विषय मे पढ़ रहे है, परमात्मा को जानना अर्थात शरणागत होना है, इसलिये भक्तियोग के मार्ग में श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, स्मरण और समर्पण से आगे बढ़ रहे है। अध्याय 13 से 18 में 'असि' अर्थात जीव और परमात्मा के आपसी संबंध आदि को और जीव को किस प्रकार व्यवहार और आचरण करना चाहिये, जिस से वह मोक्ष को कर्तव्य धर्म के पालन के साथ प्राप्त कर सके। गीता व्यवहारिक जीवन को समझ कर जीने की पुस्तक है, इसलिये जब तक हम इस का अध्ययन सूक्ष्म और गहन तरीके से नही करते, यह भिखारी के हाथ मे हीरे के समान है। हीरे का मूल्य जौहरी ही जानता है। किसी श्लोक या अध्याय का लाखो बार पाठ करने से कुछ नही होगा, जब तक हम उस मे निहित ज्ञान के पढ़ के, समझ कर, मनन कर के अपने जीवन मे अंगीकृत न कर ले। अध्याय 11, परमात्मा के सम्पूर्ण सृष्टि का अद्भुत एवम विलक्षण वर्णन है, इस को देखने के लिये अर्जुन को दिव्य दृष्टि थी, तो उस को समझने के हमे भी गहन चिंतन और मनन की आवश्यकता होगी।

जब अर्जुन ने भगवान का विराट रूप देखा तो उसके मस्तक का विस्फोटन होने लगा। 'दिशो न जाने न लभे च शर्म' ये ही घबराहट के वाक्य उनके मुख से निकले और उसने प्रार्थना की कि मानव के लिए जो स्वाभाविक स्थिति ईश्वर ने रखी है, वही पर्याप्त है। सत्य के प्रकाश को देख पाना और समझ पाना सभी के लिये कठिन है। हम सरलता चाहते है, जिस से मानसिक कष्ट न हो, बिना कष्ट उठाये ज्ञान और भगवद कृपा चाहते है, क्योंकि पढ़ने और समझने की अपेक्षा दैनिक दिनचर्या और व्यापार ज्यादा आवश्यक है। गम्भीर विषय भी पानी मे घोल कर पीने की दवा समान चाहिये। किन्तु जब बार बार प्रयास करते है, तो ही ज्ञान का मार्ग प्रशस्त होता है।

आइए! अर्जुन के मोह भंग होने के साथ उस की परमात्मा के विश्वरूप दर्शन की इच्छा को प्रकट करने आग्रह का लाभ हम लोग भी लेते है।

।। हरि ॐ तत सत।। प्रस्तावना - अध्याय 11 ।।

विशिष्ट प्रार्थना

अध्याय 10 में परमात्मा ने अपनी विभूतियों का वर्णन किया जो हमे यह बतलाता है कि परमात्मा हमारे चहुँ ओर है। अर्जुन उन के दर्शन का अभिलाषी हो गया, वो भी यह जान कर भी उस के समुख सारथी बन कर जो खड़ा उसे ज्ञान दे रहा है, वह भी तो ईश्वर है। अर्थात परमात्मा को हम अपने उस मानसिक स्वरूप में ही देख कर स्वीकार कर सकते है, जो हम ने बचपन से आज तक पढ़ा है। इसलिए अर्जुन ने जब उन के वास्तविक स्वरूप के दर्शन करने चाहे तो भगवान ने उसे दिव्य दृष्टि दी। **संजय को दिव्य दृष्टि वेद व्यास जी ने दी और वेद व्यास जी ने वही दिव्य दृष्टि महाभारत की रचना करते हुए, सभी पाठकों को दी। किंतु उस दिव्य दृष्टि को धारण वही कर सकता है, जो मन, बुद्धि और हृदय से परमात्मा के प्रति प्रेम, श्रद्धा, विश्वास के साथ स्मरण करता हुआ समर्पित हो। प्रस्तुत अध्याय 11, पढ़ते वक्त यदि जो व्यक्ति इन गुणों से ओत प्रोत हो कर शंका रहित समर्पित भाव रखता है, तो व्यास जी की लेखनी के सशक्त माध्यम से परमात्मा के दिव्य स्वरूप के दर्शन उस को निश्चित होते ही है।** अतः मैं प्रार्थना ही कर सकता हूं कि ईश्वर के विराट स्वरूप को हम सब भी अध्ययन की दिव्य दृष्टि से दर्शन करे। किसी भी जाति, धर्म और संप्रदाय में परमात्मा के मोहक स्वरूप के अतिरिक्त महाकाल का विलक्षण स्वरूप में प्रस्तुत कर सकने

का साहस नहीं है, परंतु सनातन धर्म नहीं संस्कृति और सत्य है, इसलिए ही हम विराट दिव्य स्वरूप परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को दर्शन भी करते है और समझते है।

तुलसी और कबीर की वाणी को समझे और पठन के साथ दर्शन भी करे।

"बालचरित अति सरल सुहाए। सारद सेष संभु श्रुति गाए॥ जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन बंचित किए बिधाता"

अर्थ है: श्री रामचंद्रजी की भोली और सुंदर बाल लीलाओं का सरस्वती, शेषजी, शिवजी और वेदों ने गान किया है. जिनका मन इन लीलाओं में अनुरक्त नहीं हुआ, विधाता ने उन मनुष्यों को वंचित कर दिया यानी नितांत भाग्यहीन बनाया॥

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहिं । सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माँहि ।।

"जब तक मेरा 'मैं' अर्थात अहंकार था तब हरि (ब्रह्म) का साक्षात्कार नहीं हुआ, लेकिन हरि के साक्षात्कार से साथ मेरा अहंकार अथवा निजपन खत्म हो गया। जब दीपक रूपी ज्ञान मिला तो मोह अथवा अहंकार रूपी अँधियारा खत्म हो गया।"

किंतु गीता हो या कोई भी धार्मिक ग्रंथ, तुलसीदास जी ने सही लिख दिया "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी"।

प्रणाम

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.1॥

अर्जुन उवाच,
मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम॥

"arjuna uvāca,
mad-anugrahāya paramaṁ,
guhyam adhyātma- saṁjñitam..।
yat tvayoktaṁ vacas tena,
moho 'yaṁ vigato mama"..।।

भावार्थ:

अर्जुन ने कहा - मुझ पर कृपा करने के लिए आपने जो परम-गोपनीय अध्यात्मिक विषयक ज्ञान दिया है, उस उपदेश से मेरा यह मोह दूर हो गया है। (१)

Meaning:

Arjuna said:

Out of compassion for me, you have spoken about the supreme secret known as the knowledge of the self. By those statements, my delusion has been destroyed.

Explanation:

We begin the eleventh chapter with Arjuna's words. He recalls the root cause of his panic attack from the first chapter which is moha or delusion which caused confusion between his duty as a warrior and as a family member. He now says that his delusion has been dispelled. How did that happen? It is only because Shri Krishna revealed the knowledge of the self, Adhyaatma vidyaa, to Arjuna, the answer to the question "who am I?"

Therefore, ayaṃ mama mohaḥ; mohaḥ is two-fold; (1) dharma- adharma mohaḥ; and (2) ātma- anaātma mohaḥ; confusion regarding what is right and what is wrong; ethical conflict; and philosophical confusion.

When Arjuna understood his true nature as the self, the aatmaa, the eternal essence, he came to know that the self does not kill or be killed, it is neither the doer of action or the enjoyer of the results. He then realized that even if his body died, or his body killed another body, nothing would happen to the eternal essence in each of those bodies. Given the power of this knowledge to destroy the biggest delusion about who he was, he terms it "paramam" or supreme. And since it requires a sincere student and a rare teacher, he terms it "guhyam" or secret.

Now, we may think that there was something special in Arjuna that qualified him to receive this supreme knowledge. Arjuna was humble enough to acknowledge that it was purely out of compassion that Shri Krishna showered his grace upon him and gave him this knowledge. Only through the grace and compassion of Ishvara and a qualified guru can one receive this knowledge.

Here in first shlok Arjun summarised his understanding after getting into confusion as per chapter one says "vishad yog". So, he clearify his understanding in two shlok before lord krishana. In first shlok he clearify what he understands from chapter 2 to six and in next shlok, he clearifies what he understands from chapter 7 to 10.

He says that the teaching was given by you; vacaḥ means the words of wisdom; was given to me; was imparted to me by you and for what purpose. Madanugrahāya purely for blessing me, saving me from the problem of sorrow, which was described in the first chapter; And not only it is the most supreme sacred holy words; guhyam; and they are the greatest secret also; which is not easily or ordinarily available in the world; because such words can come from only jñānis; and jñānis themselves are rare in the world.

And Gītā is a unique teaching which is dealing with both the ethical conflict as well as philosophical confusion. Normally the vēda pūrva bhāga is meant to resolve ethical conflict; vēda antha bhāga is meant to resolve philosophical confusion. Gītā is a unique śāstrā which deals with ethical conflict, as well as philosophical confusion.

And therefore Arjuna says, I am getting clearer and clearer.

Another aspect of the teaching was Ishvara's involvement with the universe. Arjuna highlights it in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

दसवें अध्याय के सातवें श्लोक में भगवान् ने कहा था कि जो मेरी विभूति और योग को तत्त्व से जानता है अर्थात् सम्पूर्ण विभूतियों के मूल में भगवान् ही हैं और सम्पूर्ण विभूतियाँ भगवान् की सामर्थ्य से ही प्रकट होती हैं तथा अन्त में भगवान् में ही लीन हो जाती हैं , ऐसा तत्त्व से जानता है, वह अविचल भक्तियोग से युक्त हो जाता है। इसी बात को अर्जुन अध्यात्मसंज्ञित मान रहे हैं।

अर्जुन प्रथम दो श्लोक में प्राप्त गुह्यतम ज्ञान की प्राप्ति के साथ अभी तक अध्याय 2 से 10 तक के ज्ञान को दोहराते है।

अर्जुन को मोह में विषाद उत्पन्न हो गया था इसलिए वे अपने कर्तव्य को नही समझ पा रहे थे। उन को जीव और आत्मा के भेद में अज्ञान होने से वे शरीर के मिटने को मृत्यु समझ रहे है। अतः सांसारिक और आध्यात्मिक मोह को नही समझने से उन्हे भीष्म, द्रोण आदि को मारना अपने स्वजनों की हत्या लग रहा था और युद्ध भूमि के कर्तव्य, धर्म और अध्यात्म में वे अंतर नही कर पा रहे थे। इसलिए भगवान कृष्ण के उपदेश से उन का मोह भंग हुआ और उन्होंने आत्म के गुह्यतम ज्ञान को भी प्राप्त किया जो विरले ज्ञानी पुरुष को प्राप्त हो सकता है। उस ने जाना कि शरीर और आत्मा में चेतना तत्व क्या है। चेतना शरीर का कोई भाग, उत्पाद या संपत्ति नहीं है; चेतना स्वतंत्र है वह इकाई जो शरीर में व्याप्त और जीवंत है, चेतना तक सीमित नहीं है।शरीर की सीमाएँ और शरीर के गिरने के बाद भी चेतना जीवित रहती है, वह शाश्वत सर्वव्यापी चेतना ही मेरा स्वरूप है।

सम्पूर्ण जगत् भगवान् के किसी एक अंश में है - इस बात पर पहले अर्जुन की दृष्टि नहीं थी और वे स्वयं इस बात को जानते भी नहीं थे, यही उन का मोह था। वास्तव में मोह का अर्थ अज्ञान के साथ आत्म मुग्ध रहना।

जब तक आप को यह ज्ञात न हो कि आप की सफलता के पीछे किसी और ने भी मेहनत की है, व्यक्ति अपने लिये आत्ममुग्ध ही रहता है। सांसारिक जीवन मे पिता की मेहनत से पुत्र श्रेष्ठता को हासिल करता है किंतु उसे यही लगता है कि यह गुण उस का स्ववाभिक है और उस की अपनी मेहनत से वह इस मुकाम पर है, इसलिये बड़े होने पर भले ही कह दे, कि उन्होंने उस के किया ही क्या है। किंतु जिस दिन उसे पता चलता है कि वास्तविकता क्या है, तो उस का यह अहम और मोह भंग हो जाता है।

अर्जुन को अपने सामर्थ्य और परिजनों के प्रति एक मोह था। परन्तु जब भगवान् ने कहा कि सम्पूर्ण जगत् को अपने एक अंश में व्याप्त कर के मैं तेरे सामने बैठा हूँ, तब अर्जुन की इस तरफ दृष्टि गयी कि भगवान् कितने विलक्षण हैं उनके किसी एक अंश में अनन्त सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं, उस में स्थित रहती हैं और उसी में लीन हो जाती हैं और वे वैसे के वैसे रहते हैं, जिसे वो अपना सखा एवम सारथी समझ रहा है, वो ही साक्षात परमात्मा है। वही जगत का कर्ता, हर्ता, निर्गुण, सगुण, निराकार, साकार, मायातीत, सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर है। इस परमगुह्य ज्ञान से उस कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव का मोह के नष्ट होने लगा और अर्जुन को यह ख्याल आया कि पहले जो मैं इस बात को नहीं जानता था, वह मेरा मोह ही था।

अतः ग्यारहवें अध्याय का प्रारम्भ अर्जुन के इन वचनों के साथ शुरू होता है जिस ने परमात्मा के स्वरूप का चिंतन सुना। उस का कर्ता का अहम भाव समाप्त हो रहा है एवम वह यह भी जान चुका है जिसे वो युद्ध भूमि में मारने से इनकार कर रहा है, वो उस का वहम मात्र है। संसार का संचालन यदि कोई कर्ता है तो वो एक मात्र परमात्मा ही है। इसलिये वह प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे भगवन! मेरे ऊपर अनुग्रह कर के जो भी परम् गोपनीय अध्यात्म विषयक वचन आप ने कहे उस से मेरा मोह एवम अज्ञान नष्ट हो गया।

मोह निवृत्ति, सत्य के ज्ञान का एक पक्ष है, न कि वह अपने आप में ज्ञान की प्राप्ति। अर्जुन अज्ञान के कारण नाम रूप मय इस सृष्टि में अपना अलग और स्वतन्त्र अस्तित्व अनुभव कर रहा था। वह अब इस भेद के मोह से मुक्त हो चुका था। उसे वह दृष्टि मिल गयी, जिस के द्वारा वह इस भेदात्मक दृश्य जगत् में ही व्याप्त एक सत्ता को देख पाने में समर्थ हो जाता है। परन्तु फिर भी उसने अनेकता में एकता का प्रात्यक्षिक दर्शन नहीं किया था।

विचारणीय बात यही है कि अर्जुन को यह ज्ञान परमात्मा की शरण मे जाने से मिला। भगवान श्री कृष्ण कहते है कि तुम्हारा मुझ में अत्यधिक प्रेम है, इसलिये मैं यह सब बातें तुम्हारे हित मे कह रहा हूँ। साधक को जबतक अपने पुरुषार्थ, साधन या योग्यता का स्मरण, श्रद्धा और समर्पण भाव से अधिक होता है, तब तक वह भगवद कृपा के परमलाभ से वंचित रहता है। इसलिये जब भी किसी ज्ञानी पुरुष से हम मिले तो अपना ज्ञान बखारने की बजाय श्रद्धा से उस के ज्ञान को प्राप्त करे, जिस से वह प्रेमपूर्वक अपने गुह्यतम ज्ञान को हमे प्रदान करे।

अर्जुन अपने ज्ञान के अध्याय 2 से 6 को समझ जाने को स्वीकार करते हुए, अपने अज्ञान और मोह के दूर हो जाने और कर्म, सांख्य, बुद्धि और भक्ति योग के गुह्यतम ज्ञान के प्राप्त होने की बात कहते है। अध्याय 7 से 10 से ज्ञान प्राप्ति की बाद वे अगले श्लोक में कह कर अपनी इच्छा को कहेंगे।

गीता ही एक मात्र ग्रंथ है जो सांसारिक, सामाजिक और आध्यात्मिक और मोक्ष के ज्ञान के मध्य समन्वय बना कर अपनी बात कहता है। अन्य कोई भी ग्रंथ सभी विषयों को एक साथ रख कर प्रस्तुत नही करता। इसलिए गीता का अध्ययन जीवन की किसी भी समय से शुरू किया जा सकता है।

विवरण सुनने से जो भी बौद्धिक स्तर पर जानकारी प्राप्त होती है वो धूमिल एवम अधूरी सी लगती है। यह जिज्ञासा की उस के आगे सत्य क्या होगा इस के लिए बेचैनी होना स्वाभाविक है, इसलिये व्यक्ति कार्य को कर के अनुभव प्राप्त करता है या फिर प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखना चाहने लगता है। यथार्थ की जानकारी की प्रेरणा या जिज्ञासा ही हमे आगे बढ़ने के मनोबल देती है। अर्जुन का यह कथन, गीता पढ़ने वाले सभी पाठकों की उत्कंठा का परिचय देता है, जो भागवत दर्शन के आतुर है एवम आगे इसी दिशा में बढ़ता है, जो वह आने वाले श्लोक में कहता है।

।। हरि ॐ तत सत।।11.01।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.2॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वतः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्॥

"bhavāpyayau hi bhūtānāṁ,
śrutau vistaraśo mayā..।
tvattaḥ kamala- patrākṣa,
māhātmyam api cāvyayam"..।।

भावार्थ:

हे कमलनयन! मैंने आपसे समस्त सृष्टि की उत्पत्ति तथा प्रलय और आपकी अविनाशी महिमा का भी वर्णन विस्तार से सुना हैं। (२)

Meaning:

For, I have heard about the creation and dissolution of all beings, elaborately, from you O lotus-eyed one, and also about your imperishable glory.

Explanation:

Arjuna, ever the good student, uses this shloka to summarize Shri Krishna's teaching. He acknowledges that he has understood the essence of the teaching, which asserts Ishvara as the creator, maintainer and dissolution of the entire universe. In other words, there is no other cause of the universe besides Ishvara. He is both the raw material and the intelligence behind the universe. This "mahaatmyam" or glory was further reinforced in Arjuna's mind by hearing the divine expressions of Ishvara from Shri Krishna.

By the above verse, Arjun implies, "O Shree Krishna, I have heard from you about your imperishable majestic glories. Although you are present within all, you are untainted by their imperfections. Although you are the supreme controller, yet you are the non-doer and are not responsible for our actions. Although you bestow the results of our karmas, you are impartial and equal to all. You are the supreme witness and the dispenser of the results of our actions. I thus conclude that you are the object of adoration of all beings."

The Lord is the cause of the universe. Lord as the very material cause of the universe, which means, the Lord is the basic stuff out of whom the universe has evolved. The technical points one should remember; material cause is the cause of sr̥ṣṭi stiti layam; just as ocean is the material cause of the waves; So, waves are born out of ocean; rests in the ocean and resolves in to the ocean. That means what? If waves are born out of the ocean and resolves into the ocean, what is the conclusion I get; there are no waves separate from the ocean. In fact, waves is only an additional name given to the very ocean itself; similarly the whole creation is like a

wave in the ocean of God; So the entire cosmos of several billions of galaxies is nothing but bubbles. So, each galaxy can be compared to a small bubble and all these bubbles of galaxies are rising from whom; upādānē:'khilādhārē; and there are no bubbles separate from ocean. Similarly, there is no creation separate from God or to put in another language; God is in the form of world.

However, by addressing Shri Krishna as “lotus- eyed”, Arjuna also reveals his understanding of another aspect of Ishvara. Like the lotus that does not get affected by the attributes of its pond, Ishvara does not get personally involved in the workings of the universe. He is impartial to everyone in the granting of results, liberation and bondage. He remains as the “avyayam” or imperishable foundation upon which the mechanical Prakriti projects the multitude of names and forms.

Now, there is a hint of dissatisfaction expressed by Arjuna in this shloka. Even though he has understood the teaching from Ishvara himself, resolved his doubts, and also learnt the techniques of karma yoga and dhyana yoga or meditation, he needs one more thing. What is that? He divulges it in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

जब हमें किसी से कुछ भी चाहिये तो सब से पहले उस की स्तुति या स्तवन कर के उस को सम्मान देते है। प्रशंसा से सभी का मन भी प्रफुल्लित होता है एवम देने वाला भी उदार ह्रदय से प्रदान करता है। किंतु जब यह प्रवक्ता, ज्ञानी या गुरु का विषय हो तो उन की स्तुति या उन का आत्म विश्वास या उन का मन प्रफुल्लित तभी होगा जब सुनने वाला यह कहे कि आप की बाते मुझे समझ मे आ गयी।

अर्जुन ने अध्याय 2 से 6 तक की शिक्षा को प्रथम श्लोक में दोहराई, अब वह ईश्वर स्वरूप के ज्ञान को जो हम ने 7 से 9 में पढ़ा, दोहराता है। अर्जुन समस्त भौतिक अभिव्यक्तियों के उत्पन्न और नष्ट करने वाले स्रोत के रूप में उन की महिमा की निरन्तर पुष्टि कर रहा है। वह श्रीकृष्ण को 'कमलपत्रक्ष' कह कर संबोधित करता है। इसका तात्पर्य है 'जिसके नेत्र कमल

के फूल के समान विशाल कोमल, सुन्दर और मतवाले हैं।' उपर्युक्त श्लोक द्वारा अर्जुन सूचित करता है-"हे श्रीकृष्ण! मैंने आपसे आपकी अक्षय महिमा को सुना। यद्यपि आप सब में निवास करते हैं तथापि उनकी अपूर्णता से अछूते रहते हैं। यद्यपि आप परम नियन्ता हैं फिर भी आप अकर्ता हो और हमारे कर्मों के लिए उत्तरदायी नहीं होते। आप हमें कर्मों का फल प्रदान करते हैं और आप सबके लिए निष्पक्ष और समान रहते हैं। आप परम साक्षी और कर्मों का फल प्रदान करने वाले न्यायधीश हो। इसलिए मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि आप ही सभी प्राणियों की आराधना का परम लक्ष्य हो।

भगवान ब्रह्मांड का कारण है। भगवान उसी के रूप में ब्रह्मांड का भौतिक कारण, जिसका अर्थ है, भगवान वह मूल सामग्री है जिससे ब्रह्मांड विकसित हुआ है। तकनीकी बिंदु जो किसी को याद रखने चाहिए; उपादान कारण ही सृष्टि स्थिति का कारण है, लेयम; जैसे समुद्र लहरों का उपादान कारण है; तो लहरें सागर से पैदा होती हैं; सागर में विश्राम करता है और सागर में ही विलीन हो जाता है।

इसका मतलब क्या है? यदि लहरें समुद्र से पैदा होती हैं और समुद्र में ही विलीन हो जाती हैं, तो मुझे क्या निष्कर्ष मिलता है; सागर से अलग कोई लहर नहीं है। वास्तव में, लहरें सागर को ही दिया गया एक अतिरिक्त नाम है; इसी प्रकार संपूर्ण सृष्टि ईश्वर के सागर में एक लहर की तरह है; तो कई अरब आकाशगंगाओं का पूरा ब्रह्मांड बुलबुले के अलावा और कुछ नहीं है। अतः प्रत्येक आकाशगंगा की तुलना एक छोटे बुलबुले से की जा सकती है और आकाशगंगाओं के ये सभी बुलबुले किस से उठ रहे हैं; उपादने:'खिलाधारे; और समुद्र से अलग कोई बुलबुले नहीं हैं। इसलिए इस सृष्टि का कोई अस्तित्व ही नहीं है, जो भी है वह परब्रह्म है। इसी प्रकार ईश्वर से पृथक या अन्य भाषा में कहें तो कोई सृष्टि नहीं है; ईश्वर विश्वरूप है।

व्हाट्सअप में आप के संदेश पर जो प्रतिक्रिया देते है वो लोग आप को ज्यादा अच्छे लगेंगे क्योंकि उन्होंने बताया कि उन्होंने आप का संदेश पढ़ा। फेसबुक या व्हाट्सएप्प में लाइक ज्यादा खोजा जाता क्योंकि संदेश भेजने वाले की उत्सुकता उस के संदेश पढ़ने वाले की प्रतिक्रिया पर अधिक होती है। यह सजग एवम उदासीन श्रोता का फर्क भी है। किसी सम्मेलन में वक्तव्य या प्रदर्शन के बाद ताली बजा कर स्वागत या सम्मान दिया जाता है।

अर्जुन भी ने गुरु और शिष्य की इस परंपरा का पालन करते हुए संवाद में किसी कठिन विषय की समाप्ति पर शिष्य के मन में कुछ शंका की निवृत्ति के लिए वह गुरु के पास

प्रार्थना की। परन्तु प्रश्न करने के पूर्व उसे यह सिद्ध करना होगा कि वह विवेचित विषय को स्पष्टत समझ चुका है। तत्पश्चात्, उसे अपनी नवीन शंका का समाधान कराने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस पारम्परिक पद्धति का अनुसरण करते हुए अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण को यह बताने का प्रयत्न करता है कि वह पूर्व अध्याय का विषय समझ चुका है।

अर्जुन यहाँ कहते हैं कि मैंने आप से प्राणियों की उत्पत्ति और प्रलय का वर्णन विस्तार से सुना है। आप ने बताया कि मैं सम्पूर्ण जगत् का प्रभव और प्रलय हूँ, मेरे सिवाय अन्य कोई कारण नहीं है। सात्त्विक, राजस और तामस भाव मेरे से ही होते हैं, प्राणियों के अलगअलग अनेक तरह के भाव मेरे से ही होते हैं। सम्पूर्ण प्राणी मेरे से ही होते हैं और मेरे से ही सब चेष्टा करते हैं। प्राणियों के आदि, मध्य तथा अन्त में मैं ही हूँ और सम्पूर्ण सृष्टियों के आदि, मध्य तथा अन्तमें मैं ही हूँ । आप के द्वारा स्पष्ट करने से मैं आप की योगमाया को जान सका। जिस प्रकार बादल छटने से सूर्य का प्रकाश फैल जाता है, उसी प्रकार मेरे अज्ञान के बादल छट गए है, मुझे आप के ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान भी हो रहा है।

अर्जुन द्वारा इतना कुछ कहने का तात्पर्य प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश सुनने से नहीं है, प्रत्युत इस का तात्पर्य यह सुनने से है कि सभी प्राणी आप से ही उत्पन्न होते हैं, आप में ही रहते हैं और आप में ही लीन हो जाते हैं अर्थात् सब कुछ आप ही हैं। फिर भी??

"फिर भी? एक संदेह रह ही जाता है, जिस का निवारण तभी होगा जब प्रात्यक्षिक दर्शन से उसकी बुद्धि को तत्त्व का निश्चयात्मक ज्ञान हो जायेगा।" यह इच्छा या कथन इस श्लोक का छुपा भाव है इसलिये यह श्लोक विश्वरूप दर्शन की इच्छा को प्रगट करने की पूर्व तैयारी है। जब शिष्य अपनी योग्यता सिद्ध करने के पश्चात् कोई युक्तिसंगत प्रश्न पूछता है अथवा किसी संभावित विघ्न की निवृत्ति का उपाय जानना चाहता है, तो गुरु को उसकी सभी सम्भव सहायता करनी चाहिये।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.02।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.3॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम॥

"evam etad yathāttha tvam,

ātmānaṁ parameśvara..।
draṣṭum icchāmi te rūpam,
aiśvaraṁ puruṣottama"..।।

भावार्थ:

हे परमेश्वर! इस प्रकार यह जैसा आप के द्वारा वर्णित आपका वास्तविक रूप है मैं वैसा ही देख रहा हूँ, किन्तु हे पुरुषोत्तम! मै आपके ऐश्वर्य-युक्त रूप को मैं प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ। (३)

Meaning:

As you have spoken about yourself, so is it, O supreme Ishvara. I wish to see your divine form, O supreme person.

Explanation:

Arjun addresses Shree Krishna as the best person because no other personality is equal to him. Often scholars, basing their opinion upon dry intellectual analysis, have difficulty in accepting the concept of God as a person. They wish to perceive God as only an impersonal light, without attributes, virtues, qualities and pastimes. However, when we tiny souls possess a personality, then why should we deny a personality to the Supreme Lord? Not only can he have a personality, but he also has the best personality, and Supreme Divine Personality. The difference between our personality and God's personality is that he is not only a perfect person; he also has his impersonal all- pervading aspect, which is devoid of attributes and form.

Parameśvara means the supreme Lord, the controller; not only the one who has created the world; but the one who sustains the world by maintaining the physical laws of the creation. Therefore, parama Īśvaraḥ; stiti kāraṇabhuthā; you are. Not only that; you are puruṣōttama also; puruṣōttama means the Supreme Lord; the greatest Lord; the word puruṣōttama has got

a philosophical significance also; which Krishna himself will teach in the 15th chapter. In fact, the entire chapter is titled puruṣōttama yoga; there Krishna will point out puruṣōttama is nirguṇa brahmna.

When someone describes the plot and special effects of the latest Hollywood summer blockbuster to us, and our curiosity and interest for that movie increases, we reach a point when we say “I want to see that movie right now, and I want to see it on a large IMAX screen”. Why does that happen? Of the five sense organs, the organ of sight is the dearest to us. As they say, “a picture is worth a thousand words”.

Similarly, Arjuna’s curiosity towards Shri Krishna had reached its peak at this point. That is why he asked Shri Krishna, who was the “avatar” or incarnation of Ishvara, to reveal his divine form that was described in the last shloka of the previous chapter. How magnificent would that form be, if this entire universe was sustained by only a fraction of Ishvara, and if all of the divine expressions were contained in Ishvara. In addition to the might and grandeur of this form, Arjuna also wanted to see how everything originated, existed and dissolved within Ishvara, and finally, how everything was Ishvara in essence.

Now, seening GOD by eyes or listing about the the GOD has created thrill, excitement for the person who is thoroughly devoted to the GOD and pure from the heart. He must have sufficient knowledge which became cause of thrill for the same. Ahilya waits standstill for years together for Rama for his darshan, Sabri spends entire life for darshan of Rama for a few time. But whereas Darshan of Lord Rama to Rawan and Lord Krishana to Kans did not impact of both as both Ravan and Kans were full of impurity of Raag - dwesh, hate and greediness, even though both are knowledgeable personality as compared to Ahilya and Sabri. Listing of music give much more pleasure to a person who is ready to listen and knowing the music.

Therefore, when Arjuna has listened the GOD is cause of everything and everything is GOD, his excitement increases for seeing GOD from bottom of his heart.

We call something divine when it is endowed with the attributes of knowledge, lordship, power, prowess and brilliance. Arjuna put in a request to Shri Krishna to see that that form, where it is possible to have this vision of many in one. However, the sincere Arjuna did not order to command Shri Krishna to show that form. He qualified his request with a great deal of humility.

In many other cultures, sacred means obtaining in one part of the creation; and outside the temple, everything is secular; but for a Hindu or for a vaidhika, there is nothing called secular, everything is sacred; eating is pūja; remember we are doing pooja daily; eating is pūja, brushing the teeth is pūja; snānam is pūja, everything that I do is pooja and that will come only if I remember that I am always in association with, in the presence of the Lord. How can I have that aiśvaraṃ rūpam? the darśanam, what you call, samparka or contact with that viśvarūpa Īśvara; you should help me. This is Arjuna's request.

Therefore, there is a discrepancy, a gap between what I know and what I am. My intellectual personality and emotional personality is not well harmonised and therefore you should help me in harmonisation.

I would like to have the Visvarūpa darśanam when I am interacting with the world; as Dayananda swami beautifully say; we do not have the sacred-secular division at all in our culture.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन अब आगे अपनी बात कहते है । आप ने जैसा कहा कि यह संसार मेरे से ही उत्पन्न होता है और मेरे में ही लीन हो जाता है , मेरे सिवाय इसका और कोई कारण नहीं है , सब

कुछ वासुदेव ही है , ब्रहम, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञरूप में मैं ही हूँ , अनन्य भक्ति से प्रापणीय परम तत्त्व मैं ही हूँ , मेरे से ही यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, पर मैं संसार में और संसार मेरे में नहीं है, सत् और असत्रूप से सब कुछ मैं ही हूँ, मैं ही संसारका मूल कारण हूँ और मेरे से ही सारा संसार सत्ता-स्फूर्ति पाता है, यह सारा संसार मेरे ही किसी एक अंश में स्थित है आदि-आदि। अपने- आपको आपने जो कुछ कहा है, वह सब-का-सब यथार्थ ही है। यह सब बातें मुझे समझ मे भी आ रही है।

यहां परमेश्वर का अर्थ है सर्वोच्च भगवान, नियंत्रक; सिर्फ वही नहीं जिसने दुनिया बनाई है; लेकिन वह जो सृष्टि के भौतिक नियमों को बनाए रखते हुए दुनिया को बनाए रखता है। इसलिए परम ईश्वर; स्थिति कारणभूत; तुम हो। इतना ही नहीं, आप भी पुरूषोत्तम हैं; पुरूषोत्तम का अर्थ है सर्वोच्च भगवान; सबसे महान भगवान; पुरूषोत्तम शब्द का दार्शनिक महत्व भी है; जिसे कृष्ण स्वयं 15वें अध्याय में पढ़ाएंगे।

यहाँ दिलचस्प बात यह है कि परंपरागत रूप से परमेश्वर का प्रयोग आम तौर पर भगवान शिव के लिए किया जाता है। यहाँ विष्णु को भी परमेश्वर कहा गया हैं और पुरूषोत्तम भी। यद्यपि शिव भी पुरूषोत्तम हैं; इन दोनों शब्दों का प्रयोग करके, व्यासाचार्य इसे स्पष्ट करना चाहते हैं, शिव और विष्णु एक ही हैं।

संस्कृत से वाक्प्रचार **एवमेतत्** (यह ठीक ऐसा ही है) के द्वारा अर्जुन तत्त्वज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष को स्वीकार करता है। समस्त नाम और रूपों में ईश्वर की व्यापकता की सिद्धि बौद्धिक दृष्टि से संतोषजनक थी। फिर भी बुद्धि को अभी भी प्रत्यक्षीकरण की प्रतीक्षा थी।

यदि भगवान कारण है और प्रभाव संसार है; तार्किक रूप में प्रभाव से अलग कारण नहीं हो सकता। इसलिए संसार ईश्वर से अलग नहीं हो सकता और यदि संसार ईश्वर से पृथक नहीं है तो सभी गैर-महिमाएँ संसार स्वाभाविक रूप से भगवान का होना चाहिए।अर्जुन कृष्ण को ऐसे प्रमाणपत्र दे रहा है मानो कृष्ण को अर्जुन के प्रमाण पत्र की जरूरत है। वैसे भी कृष्णा जरूर मुस्कुरा रहे होंगे।

अब बौद्धिक रूप से मैं यह समझ पा रहा हूं कि सारा संसार अवश्य ही दिव्य होगा। क्योंकि सारा संसार ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है; इसलिए ऐसा कुछ भी नहीं है जो अपवित्र हो। जब सब कुछ पवित्र है तो सब कुछ होना ही पूजा है। इसलिए दुनिया को स्वीकार्य और अस्वीकार्य में विभाजित करने का कोई सवाल ही नहीं है, क्योंकि कब

सारी सृष्टि ईश्वर है। मैं किसी भी चीज़ को नीची दृष्टि से कैसे देख सकता हूँ। तो मुझे इसे देखने में सक्षम होना चाहिए संसार दिव्य है और अगर मैं संसार को परमात्मा की तरह देख सकूं। मुझे कभी किसी के प्रति द्वेष नही विकसित करना। लेकिन मेरी समस्या क्या है? एक तरफ मैं सब कुछ कहता हूं ईश्वर है, लेकिन जब मैं बातचीत पर आता हूँ तो मन में भारी राग-द्वेष है। यह समस्या अर्जुन के हम सब की भी है कि स्वीकार्य हो कर भी आत्मसात नही है। इसलिए हम मानते है कि ईश्वर सब को देख रहा है और हर जगह विद्यमान है। किंतु अनुचित करते हुए हम इस तथ्य को झुठलाते भी है। तभी तो योगमाया से वशीभूत हम परमात्मा को जानते हुए भी नहीं जानते।

इसलिए मैं जो जानता हूं और जो मैं हूं, उसमें एक विसंगति है, एक अंतर है। मेरे बौद्धिक व्यक्तित्व और भावनात्मक व्यक्तित्व में अच्छा सामंजस्य नहीं है और इसलिए आपको सामंजस्य बिठाने में मेरी मदद करनी चाहिए और यहां हमें यह समझना चाहिए, कि किसी भी अनुभव में दो चीजें शामिल होती हैं। यह है या ईश्वर दर्शनम है, भगवान का अनुभव या उस मामले के लिए, कोई अन्य अनुभव। इस में दो चीजें शामिल हैं। एक तो अनुभव की वस्तु है जिसके लिए उपलब्ध होना चाहिए मुझे और यह पर्याप्त नहीं है कि अनुभव की वस्तु उपलब्ध है, बल्कि हमें अनुभव का विषय भी की आवश्यकता है, एक अनुभवकर्ता जो अनुभव की सराहना करने के लिए पर्याप्त रूप से तैयार है। उस के विषय की तैयारी का महत्व बहुत अधिक महत्वपूर्ण है।मान लीजिए मैं एक महान संगीतकार के कर्नाटक संगीत के बारे में बात करता हूँ । लेकिन श्रोता को कुछ पता हो कर्नाटक संगीत क्या है, राग क्या हैं? तो ही क्या हैं किसी राग की सुंदरता होती है? जब उस व्यक्ति के पास एक सुरीला, तैयार दिमाग न हो, अनुभव की वस्तु उपलब्ध है, लेकिन फिर भी वह अनुभव का आनंद नहीं उठा पाता है। प्रभाव नहीं पड़ता और वह वस्तु के अभाव के कारण नहीं, बल्कि प्रभाव के कारण होता है। संवेदनशीलता की कमी, श्रोता की ओर से तैयारी का अभाव होने से संगीत की सुंदरता का प्रभाव भी श्रोता पर नही पड़ता।

इससे एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात याद रखनी चाहिए: ईश्वर दर्शनम के लिए ईश्वर दर्शनम् होना; मुझे जबरदस्त तैयारी से गुजरना चाहिए। बिना मेरे तैयारी, भले ही ईश्वर मेरे ठीक सामने आ जाए, कुछ नहीं होगा और वह तैयारी और कुछ नहीं बल्कि मन की पवित्रता है; जो कि तम गुणों काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य का शमन है। वे पहले से ही दृष्टि में बाधा डालने वाले मोतियाबिंद हैं। काम क्रोधादि अशुद्धि की बाधा का मोतियाबिंद होने पर, अहंकार- ममकराधि अशुद्धता, वह तराजू जो दृष्टि को ढकती है और जब हटा दी जाती है

तो भगवान आने की जरूरत नहीं; मैं पहले से उपलब्ध विश्वरूपम की सराहना करना शुरू करता हूं।

शबरी और अहिल्या में कुछ समय के दर्शन के लिए भगवान राम का इंतजार वर्षो तक किया और दर्शन होने के बाद मोक्ष को भी प्राप्त किया किंतु रावण और कंस के समक्ष भगवान आने के बाद भी उन्हें उन के दर्शन का महत्व अपने तामसी प्रवृति अहंकार से नहीं हुआ। अर्जुन भी गीता सुन रहा है और धृतराष्ट्र भी किंतु धृतराष्ट्र को गीता का प्रभाव नहीं हुआ, क्योंकि वह तैयार नहीं था।

जब भी किसी भी व्यक्ति, वस्तु, स्थान या अवसर की खूब तारीफ या विशेषता सुन लेते है उस को देखने की इच्छा बलवती हों ही जाती है। यह भी ऑडियो में किसी भी पिक्चर की कहानी प्रभावशाली नही हो सकती जितनी वीडियो में होगी क्योंकि आँखे सब से सशक्त संवेदनशील इंद्री होती है।

इसलिए अर्जुन कहता है कि अब जिस के संकल्प से यह लोक परंपरा उत्पन्न और विलीन होती है, जिसे आप स्वयं मैं कहते है, आप का मूल स्वरूप है, जिस से आप देवताओ के कष्टों को दूर करने के लिये दो भुजावाले और चार भुजावाले रूप धारण करते है, पर जलशयन के निमित्त से अथवा मत्स्य, कच्छप इत्यादि के रूप में किये जानेवाले नाटकों के समाप्त होने पर आप की सगुणता जिस जगह में विलीन होती है, उपनिषद जिस का गान करते है, योगी हृदयस्थ हो कर जिसे देखते है, सनक इत्यादि जिसे अपने हृदय से लगाये रहते है, और आप के जिस अनन्त विश्व रूप का वर्णन मैं सदा अपने श्रवेनेद्रियों से श्रवण करता आया हूँ, मैं आपके वही ईश्वरीय रूप को अपने नेत्रों से देखना चाहता हूँ। **हमारे शास्त्रों में ईश्वर का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि वह ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज इन छ गुणों से सम्पन्न है।** इस अवसर पर भगवान् ने अर्जुन को यह दर्शाने का निश्चय किया कि वे न केवल समस्त व्यष्टि रूपों में व्याप्त हैं वरन् वे वह समष्टिरूपी पात्र हैं, जिस में ही समस्त नाम और रूपों का अस्तित्व है। भगवान् सर्वव्यापक होने के साथ ही साथ सर्वातीत भी हैं।

किसी अन्य संस्कृतियों में, पवित्र का अर्थ सृष्टि के एक हिस्से में प्राप्त करना है और मंदिर के बाहर, सब कुछ धर्मनिरपेक्ष है; लेकिन एक हिंदू या एक वैदिक के लिए, धर्मनिरपेक्ष नाम की कोई चीज़ नहीं है, सब कुछ पवित्र है। उस के खाना भी पूजा है। याद रखें हम रोज पूजा कर रहे हैं, खाना पूजा है, दाँत साफ़ करना पूजा है; स्नानम पूजा है, मैं जो कुछ भी करता

हूं वह पूजा है और वह तभी होगा जब मैं याद रखूंगा कि मैं हमेशा भगवान के साथ, उनकी उपस्थिति में हूं। मुझे वह ऐश्वरं रूपम कैसे मिल सकता है? दर्शनम, जिसे आप कहते हैं, संपर्क या उस विश्वरूप ईश्वर से संपर्क, तुम्हें मेरी मदद करनी चाहिए. यह अर्जुन का अनुरोध है।

जब मैं दुनिया के साथ बातचीत कर रहा होता हूं तो मैं विश्वरूप दर्शनम चाहता हूं; जैसा कि दयानंद स्वामी खूबसूरती से कहते हैं; हमारी संस्कृति में पवित्र-धर्मनिरपेक्ष विभाजन बिल्कुल नहीं है।

पूर्व अध्याय में भी अर्जुन का आग्रह परमेश्वर की बातों को सुन कर उन की समस्त विभूतियो को सुनने का था। किंतु जब कुछ ही विभूतियाँ संक्षेप में सुनने के बाद परमात्मा द्वारा यह कहा गया कि मैं अपने एक अंश से पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त हूँ, तो समस्त विभूतियो को जानने की इच्छा सम्पूर्ण दर्शन में परिवर्तित हो गई। सत्य यही है आशा और कामनाये आप कितना भी करे, कभी कम नही होती, जितना हम जानना चाहते है, उतना जान कर, जितना हम पाना चाहते है, उतना यदि मिल भी जाये तो यह और अधिक के लिये बलवती हो जाती है।

अर्जुन का यह आग्रह परब्रह्म के विश्वरूप के दर्शन का था, न कि भगवान विष्णु के चतुर्भुज मनमोहक दर्शन का। क्योंकि ब्रह्म निर्गुणाकार एवम अव्यक्त है, जिसे अर्जुन ने पूर्व अध्याय में सर्वव्यापी विभूतियो में सुना इसलिये उस की परब्रह्म के दर्शन की उत्कंठा उचित है किंतु कट्टर बुद्धिवाद के अत्युत्साह में आकर अर्जुन ने विश्वरूप दर्शन की अपनी मांग भगवान् के समक्ष रखी, किन्तु उसे तत्काल यह भान हुआ कि उसकी यह धृष्टता है और उसने सद्व्यवहार की मर्यादा का उल्लंघन किया है। उस का यह आग्रह अत्यंत संकोच के कारण ईश्वर के एक ही छह गुण वाले रूप के दर्शन तक सीमित था क्योंकि उसे यह ज्ञान था कि परमात्मा की सम्पूर्ण विभूतियो का वर्णन संभव नही वैसे परमात्मा के सम्पूर्ण रूप का दर्शन की मांग करना भी सही नही। इसलिये अगले श्लोक में वह अधिक नम्रता से क्या कहता है, पढ़ते है।

।।हरि ॐ तत सत।। 11.03।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.4॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्॥

"manyase yadi tac chakyaṁ,
mayā draṣṭum iti prabho..।
yogeśvara tato me tvaṁ,
darśayātmānam avyayam"..।।

भावार्थ:

हे प्रभु! यदि आप उचित मानते हैं कि मैं आपके उस रूप को देखने में समर्थ हूँ, तब हे योगेश्वर! आप कृपा करके मुझे अपने उस अविनाशी विश्वरूप में दर्शन दीजिये। (४)

Meaning:

O Lord, if you think that it is possible for this to be seen by me, then O Yogeshvara, you show me your undivided form.

Explanation:

We come across another aspect of Arjuna's request in this shloka. Imagine the plight of a movie actor who is absolutely devoted to his craft. He has worked day and nights for a whole year in a movie as a supporting actor. After the shooting ends, he is filled with a burning desire to see the entire movie. Why so? It is because he has only seen the bits and pieces of the movie that he was involved with, and he is not satisfied unless he sees it as a single story, end to end.

Likewise, Arjun desired to see the cosmic form of the Supreme Divine Personality. He now seeks his approval. "O Yogeshwar, I have expressed my wish. If you consider me worthy of it, then by your grace, please reveal your cosmic form to me, and show me your Yog- aiśhwarya (mystic opulence)." Yog is the science of uniting the individual soul with the Supreme soul, and those who practice this science are called yogis. The word Yogeśhwar also means "Lord of all yogis." Since the object of

attainment for all yogis is the Supreme Lord, Shree Krishna is consequently the Lord of all yogis. The yoga in “Vibhooti yoga” is the power that creates variety in the one undivided Ishvara. Previously, in verse 10.17, Arjun had addressed the Lord as “Yogi,” implying “Master of yog.” But he has now changed it to “Yogeshwar” because of his increased respect for Shree Krishna.

Arjuna is no longer content with seeing bits and pieces of Ishvara’s expressions. He wants to see how it all comes together as one undivided entity. This is indicated by Arjuna’s use of the word “avyayam” which means undivided, without any discontinuity. And like the only person who can reveal the whole movie is the director, the only person that can reveal the undivided nature of the universe is the “prabhu”, the governor, master and controller.

Now, Arjuna knows that he has to approach Shri Krishna with humility. That’s why he politely says: “show me that form only if you think that I am qualified to see it”. Morever, Arjuna does not want to imagine it or dream it up, he wants to see it with his eyes, with his “drishti”.

So, does Shri Krishna agree to this request? We shall see next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन ने जब परमात्मा से कहा कि वह आप का एक विश्वरूप का दर्शन करना चाहता है, तो उसे यह लगा कि कुछ गलत तो नही बोल दिया। क्योंकि जब कोई बड़ा व्यक्ति, गुरुजन और यहां तो परमात्मा है तो उस का यह आग्रह अधिकार के साथ न हो कर प्रार्थना के स्वरूप में होना चाहिए।

अध्याय 10 में जब उस मे परमात्मा को समस्त विभूति कहने को कहा था तो उस का आग्रह अधिकार पूर्ण था क्योंकि वो कृष्ण को अपना मार्ग दर्शक, सखा, गुरु एवम रिस्तेदार के रूप में जानता था, किन्तु अब विभूतियां सुनने के बाद वह समझ गया कि उस के समझ जो रथ में सारथी बन कर बैठा है वो कोई ओर नही साक्षात परमात्मा है। उस मे अपने

आग्रह में से अधिकार को समाप्त करते हुए, प्रार्थना करना शुरू किया और कृष्ण को प्रभु एवम योगेश्वर संबोधित किया।

प्रभु अर्थात परमात्मा एवम योगेश्वर अर्थात जो भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, ध्यानयोग, हठयोग, राजयोग, लययोग, मन्त्रयोग आदि जितने भी योग हो सकते हैं, उन सब का स्वामी है। वस्तुतः यहाँ योगेश्वर शब्द योग अन्य अर्थ के लिये प्रयुक्त है जिस का अर्थ अव्यक्त रूप से व्यक्त सृष्टि के निमार्ण का सामर्थ्य अर्थात युक्ति जिस में हो, वही सम्पूर्ण विश्वरूप अर्थात "विभूति योग" को दिखाने का सामर्थ्य रखने की योग्यता रखता है। इसलिये वह योग्यता का ईश्वर है।

अर्जुन प्रार्थना करते है आपका वह स्वरूप तो अविनाशी ही है, जिस से अनन्त सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं, उसमें स्थित रहती हैं और उसी में लीन हो जाती हैं। आप अपने ऐसे अविनाशी स्वरूप के दर्शन के योग्यता मुझ में है या नही ? यदि आप मुझे इस योग्य समझते है तो मुझे दर्शन करवाये। जैसे रोगी डॉक्टर के पास जा कर अपनी तकलीफ का वर्णन तो कर सकता है, किन्तु रोग और उस का उपचार उसे नही मालूम, इसलिये इस सम्बोधन का भाव यह मालूम देता है कि यदि आप मेरे में विराट रुप देखने की सामर्थ्य मानते हैं, तब तो ठीक है नहीं तो आप मेरे को ऐसी सामर्थ्य दीजिये, जिससे मैं आपका वह ऐश्वर् (ईश्वरसम्बन्धी) रूप देख सकूँ।

पूर्व में योग्यता तो हम ने पढ़ा कि मात्र शिक्षा ही ज्ञान नही होता। ज्ञान के शिक्षा, अभ्यास, जिज्ञासा और चित्तवृति निरोध अर्थात राग और द्वेष में नहीं भटकने वाला मन चाहिए। इसलिए भगवान के दर्शन शबरी और अहिल्या को मिले किंतु रावण और कंस को नही। किंतु योग्यता का अधिकारी होने के लिए आवश्यक धैर्य चाहिए क्योंकि यह तुरंत दान - महा कल्याण का विषय नहीं है। अर्जुन इस बात को समझते थे कि वे अधिकारी है या नहीं, इस का निर्णय वे नहीं कर सकते क्योंकि विभूति का वर्णन सुनने से उस के स्वरूप को एक स्थान पर देख पाना, उस के संभव हो भी सकता है, यह बिना परमात्मा की कृपा के असंभव है।

अर्जुन के प्रार्थना में परमात्मा के विश्वरूप को देखने की अभिलाषा के साथ, सामर्थ्य भी प्रदान करने की प्रार्थना है। अर्जुन ने अव्यक्त निर्गुणाकार ब्रह्मांड के प्रत्येक कण में समाहित परमात्मा को देखने की इच्छा की, जो असंम्भव सी प्रतीत होती है, क्योंकि जिस का स्वरूप ही नही है, वह नेत्रों से किस प्रकार दिख सकता है। यहां अव्यक्त को फिर भी चक्षु के

अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों एवम बुद्धि से जाना जा सकता है, किन्तु जो अव्यक्त के अतिरिक्त निर्गुणाकार भी है, उस के स्वरूप को अर्जुन जानता था, इस जीवात्मा रूपी देह की इन्द्रियों से सम्भवतः देख पाना संम्भव न हो, इसलिये उस ने उस का सामर्थ्य भी देने की प्रार्थना की। यहां यद्यपि यह कहना जल्द होगा कि निर्गुणाकार के सगुणाकार स्वरूप के दर्शन जो भी परमात्मा ने अर्जुन को दिखाए, वह मात्र उस का मायविक स्वरूप ही है, जो परमात्मा की योगमाया से उत्पन्न कर के परमात्मा ने अर्जुन को दिखाया।

अर्जुन का अनुरोध कहता है, हे योगेश्वर! क्या आप मुझे विश्व रूप दिखा सकते हैं? यहाँ भी हमें बहुत सावधान रहना चाहिए। वह कहते हैं क्या आप विश्व रूपम दिखा सकते हैं, वास्तव में विश्व रूपम दिखाने का कोई सवाल ही नहीं है, क्योंकि विश्व रूपम ठीक सामने उपलब्ध है। इसलिए विश्वरूप दिखाना और कुछ नहीं है, क्या आप अस्थायी रूप से मेरे मन की बाधाओं को दूर कर सकते हैं। जिस से मैं स्वयं दर्शन को आत्म रूप में देख सकूं। योगेश्वर का अर्थ है चमत्कारी शक्तियों का भगवान। तो आप अपनी चमत्कारी शक्तियों का उपयोग करें और अस्थायी रूप से अशुद्धता के तराजू को हटा दें। आप मेरी आंखों या मन से अशुद्धता का आवरण हटा दें और मुझे विश्व रूप दर्शन का आनंद लेने दें।

गीता विश्व रूप दर्शन का यह अध्याय या भागवत में कृष्ण की लीलाएं हम भाव विभोर हो कर सुन भी ले, किंतु दर्शन के अधिकारी तो भगवान की कृपा से तभी हो सकते है, जब आत्मशुद्धि के साथ परमात्मा के प्रति श्रद्धा, विश्वास और प्रेम का समर्पण हो। हम राग - द्वेष में समर्पण भी दिनचर्या का भाग समझ कर निश्चित समय के लिए ही करते है।

किसी वैज्ञानिक के खोज या अनुसंधान, किसी बड़े वकील द्वारा जटिल केस की तैयारी या CA की परीक्षा में पास होने के टाइम टेबल की उपयोगिता अधिक है या उस के प्रति तन मन से समर्पण अधिक उपयोगी है। अतः अधिकारी वही है वो अपने लक्ष्य के प्रति संपूर्ण रूप से समर्पित है।

व्यवहार में अनुरोध की शैली, संवाद में उत्तम कह सकते है कि हम जो देखना चाहते है, वह अनुरोध, प्रार्थना, हठ, उत्कंठा, उत्साह एवम मित्रवत आग्रह सभी का प्रतीक है, जिस के कारण स्वयम परमात्मा भी इसे स्वीकार करे बिना पीछे नही जा सकते। क्योंकि इस मे यदि देखने का सामर्थ्य की कमी भी हो, तो भी उसे भी प्रदान करने की प्रार्थना है।

यदि कोई उत्तम अधिकारी शिष्य एक सच्चे गुरु से कोई नम्र अनुरोध करता है, तो वह कभी भी गुरु के द्वारा अनसुना नहीं किया जाता है अत अगले श्लोक में भगवान कृष्ण उसे क्या कहते है, हम पढ़ते है।

।।हरि ॐ तत सत।। 11.04।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.5॥

श्री भगवानुवाच
पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥

"śrī-bhagavān uvāca,
paśya me pārtha rūpāṇi,
śataśo 'tha sahasraśaḥ..।
nānā-vidhāni divyāni,
nānā-varṇākṛtīni ca"..।।

भावार्थ:

श्री भगवान ने कहा - हे पार्थ! अब तू मेरे सैकड़ों-हजारों अनेक प्रकार के अलौकिक रूपों को और अनेक प्रकार के रंगो वाली आकृतियों को भी देख। (५)

Meaning:

Shree Bhagavaan said:

Behold, O Paartha, my hundreds and thousands of divine forms, of myriad kinds, and of various colours and shapes.

Explanation:

After listening to Arjun's prayers, Shree Krishna now asks him to have a vision of his viśhwarūp, or universal form. He uses the word paśhya, meaning "behold" to indicate that Arjun must pay attention. Although the form is one, it has unlimited features, and contains innumerable personalities

of multitude shapes and variegated colors. The various shapes and features are shown in next shloks 6 and 7 also. Shree Krishna uses the phrase śhataśho 'tha sahasraśhaḥ to indicate they exist in innumerable fashions and multitude ways.

But ability to see God in its original form needs certain qualification, one of the most qualification is pure heart or aatmshudhhi. We shall further discuss in forthcomming shlok.

This entire chapter, written in a poetic style, elaborately describes this form and Arjuna's reaction to it. It is said that the chanting of this chapter is one of the highest forms of meditation possible.

To get things started, Shri Krishna "turned on" the "screen" upon which this divine form could be shown to Arjuna. He began by revealing the amount of diversity in the sheer number of colours, shapes and forms that he was about to show to Arjuna. The literal words used are "hundreds" and "thousands", but in essence they mean infinite and innumerable.

While demonstrating the features of the latest LCD TV, the salesman will try his best to show as many channels he possibly can so that the customer is convinced about the capabilities of the TV such as number of pixels, colours and so on. Or if it is a sari shop, the salesperson will try to show innumerable varieties of the very same red colour so that the customer is confident about the range and variety in that shop's inventory.

Shri Krishna, however, was not concerned only with lining up the diversity of forms that he was ready to show. He also wanted to highlight that there was one thing common among that infinite diversity - Ishvara himself. He indicated this by saying "pashya me roopani" - behold my forms, not behold all these forms.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन की प्रार्थना परमात्मा से उस के एक दिव्य स्वरूप के दर्शन की थी। किन्तु यहां परमात्मा उस पर अत्यंत स्नेह एवम प्रसन्न होते हुए कहते है, है पार्थ, तू मेरे रूपों को देख। रूपों में भी तीन चार नहीं, प्रत्युत सैकड़ों हजारों रूपों को देख अर्थात् अनगिनत रूपों को देख सकता है। भगवान् ने जैसे विभूतियों के विषय कहा है कि मेरी विभूतियों का अन्त नहीं आ सकता, ऐसे ही यहाँ भगवान् ने ,अपने रूपों की अनन्तता बतायी है। भगवान् उन रूपों की विशेषताओं का वर्णन करते हैं कि उन की तरह तरह की बनावट है। उन के रंग भी तरह तरह के हैं अर्थात् कोई किसी रंग का तो कोई किसी रंग का, कोई पीला तो कोई लाल आदि आदि। उन में भी एक एक रूप में कई तरह के रंग हैं। उन रूपों की आकृतियाँ भी तरह तरह की हैं अर्थात् कोई छोटा तो कोई मोटा, कोई लम्बा तो कोई चौड़ा आदिआदि। जैसे पृथ्वी का एक छोटा सा कण भी पृथ्वी ही है, ऐसे ही भगवान् के अनन्त, अपार विश्वरूप का एक छोटा सा अंश होने के कारण यह संसार भी विश्वरूप ही है। परन्तु यह हरेक के सामने दिव्य विश्वरूप से प्रकट नहीं है, प्रत्युत संसार रूप से ही प्रकट है। कारण कि मनुष्य की दृष्टि भगवान् की तरफ न होकर नाशवान् संसार की तरफ ही रहती है। ऐसे ही विश्वरूप भगवान् सब के सामने संसार रूप से ही प्रकट रहते हैं अर्थात् हरेक को यह विश्वरूप संसार रूप से ही दीखता है। परन्तु यहाँ भगवान् अपने दिव्य अविनाशी विश्वरूप से साक्षात् प्रकट होकर अर्जुन को कह रहे हैं कि तू मेरे दिव्य रूपों को देख।

श्रीकृष्ण ने 'शतशोऽथ सहस्रशः' वाक्यांश का प्रयोग यह विदित कराने के लिए किया है कि वे असंख्य स्वरूपों, आकारों और बहुरंगी रूपों में विद्यमान रहते हैं। अर्जुन को यह कहने के पश्चात कि मेरे विश्वरूप को अनंत आकारों और रंगों में देखो। अब श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि स्वर्ग के देवताओं और दूसरे अन्य आश्चर्यों को अब मेरे विराट शरीर में देखो।

परब्रह्म अव्यक्त एवम निर्गुणाकार होने के बावजूद, भक्त के आग्रह पर अपनी विभूतियो का वर्णन करता है, अपने स्वरूप को दिखाने के तैयार है, तो वह निश्चय ही आत्म दर्शन ही होगा। हमारे जीवन मे अनेक व्यक्ति आते-जाते है किंतु जिन से हमारा परिचय हो जाये, उस को हम भरी भीड़ में भी पहचान लेते है। जब ज्ञान द्वारा परमात्मा की असीमित विभूतियो को जान लेंगे तो निश्चय ही उन के अनगिनत विभिन्न स्वरूप में उन को भी देख लेंगे। वह तो अपने एक अंश से सभी जगह है, उस से परिचय हो तो वह भी हम पहचान सकते है।

अर्जुन को अब तक ज्ञान तो प्राप्त हो गया था किंतु अभी भी वह मानवीय कमजोरी से ओत प्रोत था। उस के पास विभेद दृष्टि नही थी अतः वो संसार मे परमात्मा की उपस्थिति को नही देख पा रहा था। जब पूरे संसार के कण कण में परमात्मा है, हर जीव जंतु परमात्मा है, प्रकृति के हर रंग में परमात्मा है तो हम उसे परमात्मा की दृष्टि से कहाँ देखते है, हमे पेड़, पौधे, मनुष्य जीव, कंकर पत्थर ही नजर आते है परमात्मा नही। जीव जब जड़ प्रकृति से जुड़ जाता है, तो वो परमतत्व से भी अलग हो जाता है। परमतत्व को देख सके, इस प्रकार की दृष्टि स्वामी राम कृष्ण परमहंस या संत ज्ञानेश्वर की थी। कहते है, स्वामी रामकृष्ण परमहंस माँ काली से घंटो बात करते थे।

अष्टावक्र जी राजा जनक से कहते हैं कि अज्ञानी पुरुष पदार्थ- दृश्य को ही देखता है , उसके अन्दर छिपी आत्मा को नहीं देख पाता । इससे उसको आत्मा का दर्शन नहीं हो पाता। धीर ज्ञानी पुरुष दृश्य को नहीं , अपितु अविनाशी आत्मा को देखते हैं। उसी आत्मा से सारा संसार दृश्यमान होता है।।

यह भी मानवीय कमजोरी है कि मिट्टी के ढेर सारे बर्तनों में हम मिट्टी तत्व को देख भी सकते है स्वीकार भी करते है किंतु सिर्फ मिट्टी देख कर पूरे मिट्टी के पदार्थो को देख पाना संभव नही होता। स्वर्ण आभूषण में स्वर्ण तत्व को पहचान पाना आसान है किंतु स्वर्ण से आभूषणों की कल्पना करना कठिन। क्योंकि वह बुद्धि द्वारा दिया जाने वाला दर्शन है अर्थात बुद्धिगम्य दर्शन है।

भगवान् श्रीकृष्ण को अपना विराट् स्वरूप धारण करने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि अर्जुन को केवल इतना ही करना था कि अपने समक्ष स्थित रूप को वह देखे। परन्तु दुर्भाग्य से, द्रष्टव्य रूप को देखने के लिए उपयुक्त दर्शन का उपकरण उसके पास नहीं था और इसलिए अर्जुन उन सबको नहीं देख सका, जो भगवान् श्रीकृष्ण के सारथी रूप में पहले से ही विद्यमान था। वक्ता एवम श्रोता या लेखक एवम पाठक में यही अंतर होता है। वक्ता या लेखक जिस ज्ञान, भावना, बुद्धि एवम दर्शन से श्रोता या पाठक को अपनी बात कहता है यदि दोनों एक सामान भाव से कह सुन रहे हो या लिख- पढ़ रहे हो तो ही ज्ञान या संवाद पूर्ण माना जाता है जो प्रायः नही होता। हम भी परमात्मा की विभूति पढ़ने के बाद परमात्मा के दिव्य स्वरूप को नही देख पाते क्योंकि हम भी अर्जुन की भांति इस संसार के नियम से चलते है। अतः यह दर्शन हमे भी नही हो पा रहे।

विश्वरूप दर्शन जिस ताल और लय के साथ परमात्मा के स्वरूप को प्रकट करता है, वह ज्ञान के साथ साथ नित्य पठन का भी अध्याय है। अर्जुन को आगामी दो श्लोक में विभिन्न स्वरूप को प्रकट करते हुए दर्शन देते हुए परमात्मा को हम पढ़ेंगे किंतु क्या अर्जुन दर्शन कर पाएगा? हम ने परमात्मा को उस के स्वरूप में दर्शन करने के लिए कुछ योग्यताओं का वर्णन किया था जिसमे आत्मशुद्धि अर्थात राग और द्वेष से रहित चित्त परम आवश्यक है किंतु अर्जुन का युद्ध भूमि के राग - द्वेष अभी छूटा ही कहां है। इसलिए आगे आठवें श्लोक में हम इस तथ्य को समझेंगे। कुछ अहंकारी लोग जब कहते है कि वे नास्तिक है, परमात्मा को नहीं मानते, यदि कहीं भगवान है तो उसे उन्हे दिखाओ तो वे मानेंगे। उनके लिए यह 5 से 8 श्लोक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह बताता है कि उन्हें ईश्वर क्यों नहीं दिखाई देता।

भगवान अपने विभिन्न रूपो के दर्शन करवाने की बात कहते हुए आगे क्या कहते है, यह हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.05।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.6॥

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥

"paśyādityān vasūn rudrān,
aśvinau marutas tathā..।
bahūny adṛṣṭa- pūrvāṇi,
paśyāścaryāṇi bhārata"..।।

भावार्थ:

हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! तू मुझमें अदिति के बारह पुत्रों को, आठों वसुओं को, ग्यारह रुद्रों को, दोनों अश्विनी कुमारों को, उनचासों मरुतगणों को और इसके पहले कभी किसी के द्वारा न देखे हुए उन अनेकों आश्चर्यजनक रूपों को भी देख। (६)

Meaning:

Behold the Aadityaas, the Vasus, the Rudraas, the Ashvinis as well as the Maruts, O Bhaarata. Behold the many astonishing (sights) that were invisible until now.

Explanation:

Shri Krishna continues to describe the Vishwa-roopa, the universal form of Ishvara. He now points to the deities and the demi-gods that are seen in his form but were also mentioned as his divine expressions in the previous chapter.

The universal form of the Lord not only contains marvels that exist on earth but also marvels that exist in the higher planetary systems, never before seen together in this manner. He further reveals that the celestial gods are all tiny fragments of his divine form; he shows the twelve adityas, eight vasus, eleven rudras, two Ashwini Kumars, as well as the forty-nine maruts within himself.

The twelve sons of Aditi are: Dhata, Mitra, Aryama, Shakra, Varun, Amsha, Bhaga, Vivasvan, Pusha, Savita, Tvashta, Vaman. The eight Vasus are: Dara, Dhruv, Soma, Ahah, Anila, Anala, Pratyush, Prabhas.

The eleven rudras are: Hara, Bahurupa, Tryambaka, Aparajita, Vrisakapi, Shambhu, Kapardi, Raivata, Mrigavyadha, Sarva, Kapali. The two Ashwini Kumars are the twin-born physicians of the gods.

The forty-nine maruts (wind gods) are: Sattvajyoti, Aditya, Satyajyoti, Tiryagjyoti, Sajyoti, Jyotishman, Harita, Ritajit, Satyajit, Sushena, Senajit, Satyamitra, Abhimitra, Harimitra, Krita, Satya, Dhruv, Dharta, Vidharta, Vidharaya, Dhvanta, Dhuni, Ugra, Bhima, Abhiyu, Sakshipa, Idrik, Anyadrik, Yadrik, Pratikrit, Rik, Samiti, Samrambha, Idriksha, Purusha, Anyadriksha, Chetasa, Samita, Samidriksha, Pratidriksha, Maruti, Sarata, Deva, Disha, Yajuh, Anudrik, Sama, Manusha, and Vish.

Arjuna would only have read about these deities in the scriptures. Now, he was fortunate enough to see those deities with those own eyes. Shri Krishna calls this fact to his attention by saying that these sights were invisible or inaccessible to everyone else but Arjuna. Also, Shri Krishna repeatedly says “pashya” or behold, to underscore this point.

If a teenager who is an ardent fan of Spiderman somehow manages to meet him in person, what would his reaction be? It is astonishment, “aascharya”, which is defined as “that which makes us go aah”, that which makes our mouth wide open for a very long time. Shri Krishna, further describing his form, says that these sights are nothing short of pure astonishment.

।। हिंदी समीक्षा ।।

हमे अध्याय 10 में भगवान श्री कृष्ण द्वारा वर्णित विभूतियों के उदाहरण को ध्यान देने की आवश्यकता है जिस के कारण अर्जुन को परमात्मा के विराट स्वरूप दर्शन करने की लालसा उत्पन्न हुई। अन्यथा मानव अवतार में कृष्ण अर्जुन के सम्मुख खड़े ही थे। इसलिए परमात्मा स्वरूप कृष्ण भी उस की इच्छा को ध्यान में रखते हुए, उस को अपने विराट स्वरूप में जो दिखाने जा रहे है , उस को पूर्व श्लोक से वर्णित करते हुए आगे कहते है।

मेरे रूप को दर्शन देते हुए भगवान कृष्ण आगे कहते है कि अदिति के पुत्र धाता, मित्र, अर्यमा, शुक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु -- ये बारह आदित्य हैं। यह द्वादश सूर्य अत्यंत प्रकाशवान है।

धर, ध्रुव, सोम, अहः, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास- ये आठ वसु हैं। जिन के मुख स्वास से सब जगह ज्वालामय हो उठता है।

हर, बहुरूप, त्रयम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व और कपाली - ये ग्यारह रुद्र हैं । जिन की तिरछी भौंह मात्र से क्रोध संसार कांप उठता है।

अश्विनीकुमार दो हैं। ये दोनों भाई देवताओं के वैद्य हैं।यह समस्त प्राणियो के जीवन दाता है।

सत्वज्योति, आदित्य सत्यज्योति, तिर्यग्ज्योति, सज्योति, ज्योतिष्मान्, हरित, ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, सत्यमित्र, अभिमित्र, हरिमित्र, कृत, सत्य, ध्रुव, धर्ता, विधर्ता, विधारय, ध्वान्त, धुनि, उग्र, भीम, अभियु, साक्षिप, ईदृक्, अन्यादृक्, यादृक्, प्रतिकृत्, ऋक्, समिति, संरम्भ, ईदृक्ष, पुरुष, अन्यादृक्ष, चेतस, समिता, समिदृक्ष, प्रतिदृक्ष, मरुति, सरत, देव, दिश, यजुः, अनुदृक्, साम, मानुष और विश् - ये उनचास मरुत हैं। जो समस्त संसार की वायु को धारण किये हुए है। इन सबको तू मेरे विराट् रुप में देख सकता है।

बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र और दो अश्विनीकुमार - ये तैंतीस कोटि (तैंतीस प्रकारके) देवता सम्पूर्ण देवताओं में मुख्य हैं। देवताओं में मरुद्गणोंका नाम भी आता है, पर वे उनचास मरुद्गण इन तैंतीस प्रकार के देवताओं से अलग माने जाते हैं क्योंकि वे सभी दैत्यों से देवता बने हैं।

परमात्मा के इस स्वरूप को नारायणीय धर्म मे भी बाई ओर 12 आदित्य, सम्मुख 8 वसु, दाहिनी ओर 11 रुद्र और पीछे दो अश्विनी कुमार है। आदित्य को क्षत्रिय, मरुद्गण वैश्य और अश्विनी कुमार शुद्र कहे जाने वाले वैदिक देवता है, इसलिये यह विश्वरूप चातुर्वर्ण्य देवताओ का भी स्वरूप माना गया है।

मेरे विश्व रूप में ऐसे अनगिनत और अनन्त रूप है, जिन का वर्णन करते करते वेद भी असमर्थ हो गए, काल का आयुष्य भी थोड़ा है और ब्रह्मा को भी जिन की थाह नही लगी तथा जिन की चर्चा भी कभी वेदत्रयी के श्रवण इंद्रियाओ तक नही पहुची, वे अनेक रूप तुम प्रत्यक्ष देखो और आश्चर्यमय आनन्द एवम सफलता का उपभोग करो।

भगवान अर्जुन को यहाँ भारत कह कर संबोधित करते है। 'भा' प्रकाश का द्योतक है अतः जो प्रकाशवान है, वही भारत है।

अर्जुन परमात्मा का छह गुण वाले सौम्य रूप का दर्शन करना चाहता था किंतु उदार हृदय परमात्मा उसे सम्पूर्ण रूप दिखा रहे है, यह रूप इन प्रयुक्त वो समस्त विभूतियां है जिन्हें हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके है। भगवान के विश्वरूप में केवल पृथ्वी पर विद्यमान आश्चर्य ही सम्मिलित नहीं हैं अपितु अन्य उच्च लोकों के आश्चर्य जिन्हें कभी एक साथ इस प्रकार से न देखा गया हो, भी सम्मिलित हैं। वे आगे बताते हैं कि स्वर्ग के सभी देवता

उनके दिव्य स्वरूप का छोटा-सा अंश है। परमात्मा अर्जुन को एक रूप की जगह समस्त रूप विभूतियो के अनुसार विराट् रूप में द्रष्टव्य रूपों का सारांश में निर्देश करके भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने शिष्य अर्जुन की जिज्ञासा को और अधिक बढ़ा दिया। वह इन सब रूपो को कैसे और किस प्रकार देखे, इस के परमात्मा आगे क्या कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.06।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.7॥

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टमिच्छसि ॥

"ihaika-sthaṁ jagat kṛtsnaṁ,
paśyādya sa- carācaram..।
mama dehe guḍākeśa,
yac cānyad draṣṭum icchasi"..।।

भावार्थ:

हे अर्जुन! तू मेरे इस शरीर में एक स्थान में चर-अचर सृष्टि सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देख और अन्य कुछ भी तू देखना चाहता है उन्हे भी देख। (७)

Meaning:

Behold this entire universe now, with moving and non- moving (entities), in one place. Also, besides this, O Gudaakesha, see whatever else you desire in my form.

Explanation:

After hearing Shree Krishna's instructions to behold his form, Arjun wonders where to see it. So Shree Krishna states that it is within the body of the Supreme Divine Personality. There, he will see infinite universes with all their moving and non-moving entities. Every entity exists in the universal form, and so do the events of the past and the future. Arjun will thus be

able to see the victory of the Pandavas and the defeat of the Kauravas as an event that is a part of the unfoldment of the cosmic plan for the universe.

Nowadays, it is common for families to capture a wedding with a video as well as with photographs. So when a guest drops by a family that has just concluded a wedding, he is hit with a barrage of photos and a DVD of the wedding that could last three to four hours. The guest cannot refuse this demand because the family wants him to experience the entire wedding "right here, right now".

So by using the words "now" and "in one place", Shri Krishna is pointing out the power of the Vishwa roopa or cosmic form. Arjuna is able to view the entire universe in one place, without leaving his chariot. Moreover, he is also able to view events that take millions of years in a split second. And what is he able to view? Everything including entities that move, and entities that are stable.

Now, if someone were to offer us the outcome of all the events that were to take place tomorrow, and if our favourite team was contesting a match tomorrow, we would be most interested in learning the outcome of the match. Knowing that Arjuna was most interested in the outcome of the Mahabharata war, Shri Krishna suggested that even that would be visible in his cosmic form. He refers to Arjuna as "Gudaakesha", one who has conquered sleep, so that Arjuna would remain alert while watching the cosmic form.

However, with all this going on, there seemed to be no response from Arjuna. What could be the reason? We shall see next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व श्लोक में 33 कोटि देवताओ और उनचास मरुतगणों का वर्णन करने के पश्चात अर्जुन को विराट विश्वरूप में उन विभूतियो और परमात्मा के एक अंश से सम्पूर्ण ब्रह्मांड को देखने की इच्छा को ध्यान में रखते हुए, परमात्मा ने उस को अपना सम्पूर्ण स्वरूप दिखाने का आव्हान किया, जिस का वर्णन पूर्व अध्याय में किया गया था।

तू निरालस्य हो कर सावधानी से मेरे विश्वरूप को देख । मैं सम्पूर्ण जगत् को एक अंश से व्याप्त करके स्थित हूँ। मेरे इस शरीर के एक देश (अंश) में चरअचर सहित सम्पूर्ण जगत् को देख। एक देश में देखने का अर्थ है कि तू जहाँ दृष्टि डालेगा, वहीं तेरे को अनन्त ब्रह्माण्ड दीखेंगे। तू मनुष्य, देवता, यक्ष, राक्षस, भूत, पशु, पक्षी आदि चलने फिरनेवाले जङ्गम और वृक्ष, लता घास, पौधा आदि स्थावर तथा पृथ्वी, पहाड़, रेत आदि जडसहित सम्पूर्ण जगत् को अद्य अभी, इसी क्षण देख ले, इस में देरी का काम नहीं है।

ब्रह्माण्ड को केवल धूल का एक गुबार समझें, व्यास में लगभग एक मीटर, वह कहते हैं कि धूल के एक गुबार की कल्पना करें, जिसका व्यास एक मीटर है; ठीक है। व्यास में लगभग एक मीटर. धूल का हर कण; एक मीटर में कितने दाने होंगे; उसमें प्रत्येक धूल कण एक आकाशगंगा है; वह कहता है कि यह एक आकाशगंगा है; आप जानते हैं कि आकाशगंगा क्या है; आकाशगंगा तारों का एक समूह है; जिसकी दूरी लाखों प्रकाश वर्ष है। और आप जानते हैं कि प्रकाश वर्ष क्या होता है; यह एक वर्ष में प्रकाश द्वारा तय की गई दूरी है; और क्या आप जानते हैं कि प्रकाश एक सेकंड में कितनी दूरी तय करता है; 3 लाख किलोमीटर; मील नहीं; 3 लाख किलोमीटर; एक सेकंड में. तो एक साल में; जाओ और गणना करो और फिर ऐसे ही इतने प्रकाश वर्ष; एक आकाशगंगा की दूरी है; जैसे कि अरबों आकाशगंगाएँ हैं; कल्पना कीजिए कि वह धूल है।

हम एक साधारण तारे के पास रहते हैं; लाखों आकाशगंगाओं के बीच; एक आकाशगंगा है जिसे मिल्की वे कहा जाता है; और आकाशगंगा में लाखों तारे हैं और हमारा सूर्य एक साधारण तारा है; जो एक सामान्य आकाशगंगा का सदस्य है। धूल के गुबार में कहीं नगण्य। हर रात हमें दिखाया जाता है कि ब्रह्मांड की शुरुआत हो चुकी है, लेकिन हममें से ज्यादातर लोग इसे जाने बिना ही अंधेरे पर पछतावा करते हैं, उसका उपयोग करते हैं या उसका आनंद लेते हैं; यह ज्ञान लाता है. यदि आप अंधेरे से सीखने के इच्छुक हैं, तो वे कहते हैं; यद्यपि इतने सारे तारे हैं; तारों के बीच एक विशाल खालीपन है। तो फिर ब्रह्माण्ड का आकार कितना होगा; जो इन सभी आकाशगंगाओं और सितारों को समायोजित

करता है। और विशाल शून्यता और आकाशगंगाओं वाला यह ब्रह्मांड अंतरिक्ष में समाया हुआ है। तो स्थान का आकार क्या होना चाहिए; और वह स्थान भगवान का आकार है।

यदि धूल के बवंडर में उड़ती धूल एक एक आकाश गंगा है, तो परमात्मा का विराट स्वरूप भी उसी प्रकार अनन्त है, जिस में असंख्य आकाश गंगा है, जब हम एक ही आकाश गंगा को नही देख सकते तो असंख्य आकाश गंगा को झांक पाना असंभव है। किन्तु अर्जुन की इच्छा की पूर्ति हेतु परमात्मा अपने सम्पूर्ण स्वरूप को उसे दिखाने के लिये तैयार है। किन्तु मानवीय सीमाओं और उत्सुकता को भी परमात्मा जानते है। इसलिये विराट स्वरूप में वह अर्जुन को अपने स्वरूप को देखने के लिये उत्साहित करते है और एक अंश में सम्पूर्ण सृष्टि देखने को कहते है।

परमात्मा काल से भी परे है। वह काल से नही बंधा है क्योंकि वो काल का भी कर्ता है। इसलिये परमात्मा के लिये काल की कोई गणना नही होती। वह सब का आदि, मध्य और अंत भी है, इसलिये समस्त काल की गणना परमात्मा में एक ही समय मे विद्यमान रहती है। परंतु मनुष्य या जीव का काल खंड पुनर्जन्म, पूर्वजन्म, भूतकाल वर्तमान काल एवम भविष्य काल होता है। हर जीव में जो कुछ भी वो करता है उस का भविष्य जानने की आकांक्षा होती है, इसलिये भगवान् कहते हैं कि तू पूर्वजन्म, पुनःजन्म, भूत, भविष्य, वर्तमान और भी जो कुछ देखना चाहता है, वह भी देख ले। अर्जुन और क्या देखना चाहते थे अर्जुन के मन में सन्देह था कि युद्ध में जीत हमारी होगी या कौरवों की। इसलिये भगवान् कहते हैं कि वह भी तू मेरे इस शरीर के एक अंश में देख ले।

केवल इतना ही नहीं और भी जो कुछ जय पराजय आदि दृश्य जिस के लिये तू हम उन को जीतेंगे या वे हम को जीतेंगे इस प्रकार शङ्का करता था, वह सब या अन्य जो कुछ यदि देखना चाहता हो तो देख ले।

किन्तु अर्जुन विस्मित है, स्तब्ध है, क्योंकि भगवान श्री कृष्ण उस के गुरु, सखा, सारथी और परमात्मा के रूप पिछले तीन श्लोक में अपने की शरीर मे **पश्य** कहते हुए विश्वरूप दिखा रहे है और उसे अपने सामने बैठे सारथी कृष्ण के अतिरिक्त कुछ नही दिखता।

भगवान कृष्ण अर्जुन को गुडाकेश कहते है, गुडाकेश यानि जिस ने निंद्रा पर विजय प्राप्त की, मनुष्य को तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता पर भी विजय प्राप्त कर लेना चाहिए। भगवान का यह कथन हमे बताता है कि

प्रथम तो भगवान् उत्साही साधक के साहसी मन को इसके लिए प्रशिक्षित करते हैं कि उसमें जानने की उत्सुकता रूपी अक्षय धन का विकास हो। तत्पश्चात् उनका प्रयत्न है कि यह उत्सुकता तीव्र उत्कण्ठा या जिज्ञासा में परिवर्तित हो जाये। इसके लिए ही वे विश्वरूप में दर्शनीय रूपों का उल्लेख करते हैं। इस युक्ति से साधक का मन पूर्ण उत्कटता से एक ही स्थान पर केन्द्रित हो जाता है। यही इस श्लोक का प्रयोजन है।

द्वितीय, प्रारम्भ मे अर्जुन का प्रयत्न समस्या के समाधान को देखने के लिए अधिक था और अनेकता में व्याप्त एकत्व का साक्षात्कार करने के लिए कम। विभूतियोग के अध्याय में एक परमात्मा को सब में दिखाया गया था और यहाँ सब को एक परमात्मा में दिखाया जानेवाला है।

अर्जुन जो कुछ भी देखना चाहते थे उस का वर्णन पश्य शब्द के करते हुये परमात्मा ने कर दिया किन्तु जड़ पदार्थ से प्राप्त नेत्र उतने सक्षम नही हो सकते कि वो परमात्मा को देख सके। सारथी के रूप में परमात्मा सभी के साथ है किंतु उन का दर्शन आत्मा के दिव्य नेत्रों से ही हो सकता है, इसलिये परमात्मा आगे क्या कहते है, पढ़ने के लिये तैयार हो जाये।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.07।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.8॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

"na tu māṁ śakyase draṣṭum,
anenaiva sva- cakṣuṣā..।
divyaṁ dadāmi te cakṣuḥ,
paśya me yogam aiśvaram"..।।

भावार्थ:

किन्तु तू अपनी इन आँखो की दृष्टि से मेरे इस रूप को देखने में निश्चित रूप से समर्थ नहीं है, इसलिये मैं तुझे अलौकिक दृष्टि देता हूँ, जिससे तू मेरी इस ईश्वरीय योग-शक्ति को देख। (८)

Meaning:

But even this you cannot see with your own eye. I give you a divine eye, (so that you can) see the majesty of my yoga.

Explanation:

Even after Shri Krishna had begun displaying his Vishwa roopa, his cosmic form, there seemed to be no response from Arjuna at all. He realized that Arjuna's mortal eyes did not have the capability needed to view the cosmic form. So, he blessed Arjuna with the "divya drishti", the divine vision with which the yoga, the power of creating this diversity in the universe, could be seen in all its majesty.

The granting of spiritual vision is an act of grace by the Supreme Lord. By his grace, God adds his divine eyes to the soul's material eyes; he adds his divine mind to the soul's material mind; he adds his divine intellect to the soul's material intellect. Then, equipped with the divine senses, mind, and intellect of God, the soul can see his divine form, think of it, and comprehend it.

Before we proceed with the rest of this chapter, let us pause to dig a little deeper into this shloka. Each chapter in the Gita is a "yoga", a technique for lifting us higher from the material to the divine. Arjuna was bestowed this vision by Shri Krishna, and we will hear a description of that vision from Sanjaya and Arjuna later in the chapter. But if this chapter is meant to give us a practical technique, what are we supposed to do? What does "divine vision" mean for us?

Let us consider a person from India who is deeply attached to his state or territory. As we have seen repeatedly in the Gita, any sort of deep attachment is a recipe for creating never- ending sorrow. What technique, what yoga could be prescribed for someone in this situation? One could ask that person to get a map of India, look at his state's border, then mentally erase that border as well as all the other state borders, and see what's left.

What will he see? He will only see the border of India. There would be no other divisions or distinctions. All conflicts regarding one state versus another would seem meaningless. It does not mean that the sense of attachment has gone away. That is very difficult to achieve. It simply means that the sense of attachment has been raised one step from the relative to the absolute.

Similarly, Shri Krishna asks all of us to view the world with the vision that everything is in Ishvara. Our eyes, limited as they are, will always report divisions and distinctions. That is their nature. But we can always use our intelligence to look through those divisions and see that ultimately, Ishvara is in everything and everything is in Ishvara. If we learn to do this, our attachment to worldly concerns will drop, and shift towards Ishvara.

We must remember that similar Divya dristi has also been given to Sanjay by Maharishi ved vyas ji. Therefore, he can also be able to see the Divya swarup of Lord. Basically, divine vision means a person who is free from all emotion and his soul is pure. Therefore, when cameraman looks toward Lord, he looks it like a statue whereas a bhakt looks as lord.

Any things which are not created or achieved by person or if the same is granted, it is always temporary in nature. It will leave the person, after it utilisation or passing of time. The same thing happens with Arjuna and Sanjay, the spiritual vision granted from spiritually person has gone after some time.

As we move to the next verse, we will find that the original narrator, Sanjaya, has taken over.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व श्लोक में 'इह एकस्थम' शब्द का प्रयोग करते हुए, परमात्मा अर्जुन को अपने सारथी स्वरूप में समस्त ब्रह्मांड, सचराचर देखने को कहते है किंतु अर्जुन अपने प्राकृतिक नेत्रों से सारथी कृष्ण के अतिरिक्त कुछ भी नही देख पा रहे है।

पातंजलि योगसूक्तम में कैवल्य की स्थिति तभी प्राप्त होती है जब मन, बुद्धि एवम चेतन निर्विकार की भावना से भी निर्विकार हो। हम ने पढ़ा कि परमतत्व में जो विलीन होते है वो योगी ब्रह्मत्त्वविद होते है या अनन्य भक्ति भाव से परमात्मा को स्मरण एवम समर्पित होते है। किन्तु अन्य सभी विभिन्न लोको में अपने पुण्य कर्मों को भोग कर पुनः जन्म को प्राप्त करते है। अर्जुन युद्ध भूमि में एक योद्धा के रूप में स्वजनों को देख कर मोह ग्रसित एवम भय से युक्त था। इसलिये ब्रह्मत्त्वविद नही था। वह राग - द्वैष से युक्त होने के कारण परमात्मा के स्वरूप की देखने की इच्छा रखने एवम परमात्मा द्वारा स्वरूप दिखाने के बावजूद कुछ नही देख पा रहा था।

अतः भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से अत्यंत प्रेम करते है, इसलिये कहते है कि तुम्हारे जो चर्मचक्षु हैं, इन की शक्ति बहुत अल्प और सीमित है। प्राकृत होने के कारण ये चर्मचक्षु केवल प्रकृति के तुच्छ कार्य को ही देख सकते हैं अर्थात् प्राकृत मनुष्य, पशु, पक्षी आदि के रूपों को, उन के भेदों को तथा धूपछाया आदि के रूपों को ही देख सकते हैं। परन्तु वे मन, बुद्धि एवम इन्द्रियों से अतीत मेरे रूप को नहीं देख सकते। मैं तुझे अतीन्द्रिय, अलौकिक रूप को देखने की सामर्थ्य वाले दिव्यचक्षु देता हूँ अर्थात् तेरे इन चर्म चक्षुओं में ही दिव्य शक्ति प्रदान करता हूँ, जिससे तू अतीन्द्रिय, अलौकिक पदार्थ भी देख सके और साथ साथ उन की दिव्यता को भी देश सके।

यद्यपि दिव्यता देखना नेत्र का विषय नहीं है, प्रत्युत बुद्धि का विषय है। तथापि भगवान् कहते हैं मेरे दिये हुए दिव्य चक्षुओं से तू दिव्यता को अर्थात् मेरे ईश्वर सम्बन्धी अलौकिक प्रभाव को भी देख सकेगा। पश्य क्रिया के दो अर्थ होते हैं - बुद्धि (विवेक) से देखना और नेत्रों से देखना। इसी को ईश्वरीय योग दृष्टि से देखना बोलेंगे।

मन की तीसरी आँख के तौर पर हिंदू लोग तिलक का प्रयोग करते है। उचित भावना, उचित आचरण और आत्मशुद्धि से दिव्य दृष्टि मिलती है। यह वैसा ही है जैसे कोई पर्यटक कैमरा लेकर किसी मंदिर में जाए और विभिन्न मूर्तियों की तस्वीरें ले। उसके लिए, भगवान नहीं, विभिन्न मूर्तियाँ है और वह कला के बारे में बात करता है और वह प्रश्न पूछता है कि क्या यह AD है या BC है। यदि यह बी.सी. है तो वह कुछ और तस्वीरें लेगा। शायद वह

लाखों रुपये देकर भी खरीद ले, प्रदर्शनी भी लगाएगा, वह केवल आयु, कला, धातु ही देख सकता है। लेकिन वह कभी हाथ नहीं जोड़ सकता। वह कभी भी साष्टांग नमस्कार नहीं कर सकता। जब दीपाराधना होती है तो वह आरती नहीं कर सकता। किंतु परमात्मा के प्रति श्रद्धा, प्रेम और विश्वास रखने वालो को, इससे क्या फर्क पड़ता है। हम में से कितने लोग वास्तव में जानते हैं कि कपाली मंदिर, रत्न गिरीश्वर मंदिर या पार्थसारथी मंदिर में विभिन्न मूर्तियों की आयु क्या है? या वे सभी भौतिक कार्य हैं, जिनकी हमें कोई परवाह नहीं है, हमारी आंखें सतही चट्टान में प्रवेश करती हैं और भगवान को देखती हैं जिनका आह्वान और पूजा की गई है और वह आँख भावना है। हम ने भारत में जन्म लिया है तो पत्थर को साष्टांग नमस्कार करने के लिए इस सनातन संस्कृति से अवगत होना होगा, किसी निर्जीव पत्थर जिस में प्राण प्रतिष्ठा की गई हो, को नमस्कार करना ही है और यदि किसी को राख (विभूति) प्राप्त करनी हो, जिसका कोई मूल्य ही नही और उसे हम विभूति या भस्म को माथे पर लगाना और यहां तक कि मुंह में डालना भी सीखना होता है, वह भी बिना यह जाने कि यह कैसे बनाई जाती है।

परमात्मा सब कुछ जानते हुए भी जो बात उन्हें चार श्लोक पहले कहनी चाहिए वो अब कह रहे है क्योंकि वो अर्जुन को यह आभास दिलाना चाहते कि युद्ध भूमि में जो मै तुम्हे ईश्वर का स्वरूप दिखा रहा हूँ वो इस रणक्षेत्र में खड़े किसी योद्धा को नही दिखेगा। भगवान के स्वरूप को देखने की दिव्य शक्ति संजय को व्यास जी ने दी और अब यह अर्जुन को मिल रही है।

यदि ज्ञान एवं एकाग्रता नही हो तो कोई भी ग्रंथ काली लकीरों से ज्यादा नही होता। किसी भी बात को समझने के योग्यता एवम परिपक्कवता का महत्व होता ही है। सब हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं कि एक सारतत्व को उस से बनी विभिन्न वस्तुओं में देख पाना अपेक्षत सरल कार्य है, किन्तु इस के विपरीत अनेक को एक तत्त्व में देखने के लिए दर्शनशास्त्र के सम्यक् ज्ञान से सम्पन्न सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता होती है। किसी कविता को पढ़ने मात्र के लिए केवल वर्णमाला का ज्ञान होना आवश्यक है, परन्तु उसके सूक्ष्म सौन्दर्य को समझने के लिए तथा उसी के समान अन्य कविताओं के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए एक ऐसे प्रवीण मन की आवश्यकता होती है, जिसने सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं के रसास्वादन के आनन्द में अपने आप को डुबो दिया हो। इसी प्रकार, एक को अनेक में देखना श्रद्धा से परिपूर्ण हृदय का कार्य है परन्तु अनेक को एक में अनुभव करने के लिए हृदय के अतिरिक्त ऐसी शिक्षित बुद्धि की आवश्यकता होती है, जिसे दार्शनिकों की युक्तियों को

समझने की योग्यता प्राप्त हुई हो। जानने और अनुभव करने की क्षमता का विकास होने पर ही एक शिक्षित बुद्धि को असाधारण का दर्शन करने की विशिष्ट सार्मथ्य प्राप्त होती है।

भगवद कृपा के बिना कुछ भी नही देख सकते, यशोदा ने कृष्ण को मुख खोल कर मिट्टी खाई या न खाई देखने के दिखाने को कहा तो कृष्ण ने अपने मुख में समस्त ब्रह्मण्ड के दर्शन करा दिए। जिसे देख कर यशोदा विस्मित हो कर बेहोश सी हो गईं, तो कृष्ण अपने बाल रूप में पुनः लीला करने लगे। ऐसी ही कृपा अब परमात्मा के द्वारा हम सब पर बरसने वाली है जिसे हम संजय के दिव्य नेत्रों से वर्णन द्वारा अगले कुछ श्लोकों में पढेंगे और परमात्मा के दर्शन को हृदय में महसूस करेंगे।

विश्वरूप दर्शन के जब तक मन की गहराइयों एवम हृदय की सरलता से अध्ययन नही करते, इस को पढ़ना व्यर्थ है। व्यवहार में कानून को किताबो में पढ़ने वाले से उसे आत्मसात करनेवाला ही अधिक तथ्यों के साथ बहस कर सकता है। वैसे गीता के इस अध्याय में जो सरल है, वही विश्वरूप में परमात्मा के दर्शन के लाभ ले सकता है।

अष्टावक्र जी राजा जनक से कहते हैं कि कुछ व्यक्ति ईश्वर को भावरूप मानते हैं, कुछ उसे अभावरूप अर्थात् केवल शून्य मानते हैं । ईश्वर को माननेवाले के लिए परमात्मा है , नास्तिक कहता है कि परमात्मा नहीं है । ये दोनों ही अज्ञानी हैं । अतः ज्ञानी न तो यह कहता है कि ' परमात्मा है ' और न कहता है ' वह नहीं है ' , वह दोनों में तटस्थ रहता है । ऐसा व्यक्ति ही स्वस्थ मन और परमशान्ति को प्राप्त होता है अर्थात दिव्यदृष्टि का शाब्दिक अर्थ है, सब कुछ परमात्मा ही है, इस भाव से भी शून्य हो कर परमात्मा को देखना।

जो भगवद कृपा से जब परमात्मा या किसी योगी से कोई शक्ति या अलौकिक ज्ञान प्राप्त होता है तो वह उतने समय तक ही उपयोगी होगा, जिस के लिए दिया गया है। वह स्थायी नहीं होता। इसलिए अर्जुन और संजय की दिव्य दृष्टि समय के अंतराल में समाप्त हो गई। किंतु जिस ने यह शक्ति स्वयं के स्तर को ऊंचा कर के प्राप्त की है, वह उस के पास स्थायी होती है अर्थात वह उस का अधिकारी है। कुछ लोग मंत्र सिद्ध कर के सिद्धियां प्राप्त करते है, वे सिद्धियां उन के अधिकार में नहीं होती, इसलिए समय के अंतराल में नष्ट हो जाती है।

जो सुनते कम, सुनाते ज्यादा है, जो पढ़ते कम, पढ़ाते ज्यादा है एवम जो देखते कम, दिखाते ज्यादा है, उन का ज्ञान भी होता कम है, पर उस का अहम ज्यादा होता है। अर्जुन

को जो अहम प्रथम अध्याय में था, वह अब पूर्णतयः खत्म हो गया है, वह परमात्मा के प्रति शरणागत हो गया है। यही स्थिति उस को विश्वरूप दर्शन के अधिकृत करती है। जो दिव्यदृष्टि परमात्मा ने अर्जुन को प्रदान की थी, वैसी ही दिव्यदृष्टि महृषि व्यास जी ने धृतराष्ट्र को महाभारत के युद्ध का आंखों देखा हाल सुनाने के लिये उन के सारथी संजय को दी थी। इसलिए विश्वरूप के दर्शन का लाभ अर्जुन एवम संजय दोनो को प्राप्त हुआ। इस के अतिरिक्त अर्जुन के रथ में विराजमान हनुमान जी एवम बर्बरीक (आज के खाटू श्याम जी) को यह स्वरूप देखने को मिला। जो पाठक गीता अध्ययन एकाग्रचित्त से करते है, उन को विराट विश्वरूप का दर्शन महृषि व्यास जी की लेखनी से मिलता है, आइए, आगे हम विश्वरूप के दर्शन दिव्यदृष्टि से करते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.08।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.9॥

संजय उवाच
एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥

"sañjaya uvāca,
evam uktvā tato rājan,
mahā- yogeśvaro hariḥ..।
darśayām āsa pārthāya,
paramaṁ rūpam aiśvaram"..।।

भावार्थ:

संजय ने कहा - हे राजन्! इस प्रकार कहकर परम- शक्तिशाली योगी भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को अपना परम ऐश्वर्य- युक्त अलौकिक विश्वरूप दिखलाया। (९)

Meaning:

Sanjaya said:

O King, then having spoken this, Hari, the great Yogeshwara, showed the supreme form of Ishvara to Paartha.

Explanation:

At this point in the Gita, neither Shri Krishna nor Arjuna could continue narrating since Shri Krishna was showing the cosmic form, and Arjuna was taking it all in. The great sage Veda Vyaasa, the compiler of the Mahabharata, chose to switch the narration over to Sanjaya, who was relaying the events to Dhritraashtra, the “King” that is mentioned in this shloka.

We notice a subtle shift in the language used by Sanjaya. His praise of Shri Krishna is one degree higher than that used by Arjuna. For instance, he refers to Shri Krishna as “Mahaa Yogeshwara” whereas Arjuna uses “Yogeshwara”. It is because Sanjaya knew Shri Krishna more thoroughly and deeply than Arjuna did. Moreover, he was already blessed with divine vision through Vyaasa, which enabled him to see exactly what Arjuna saw.

Sanjay also says "Hari". The word Harihi is also a significant word.

"harir harati pāpāni duṣṭa cittaira abhi smr̥ tāḥ.

anicayāt samspr̥ṣṭaḥ dahat ēva hi pāvakāḥ hariḥ pāpāni harati;"

Lord Viśṇu is called Hari becomes, the root, Hru, harati means to suck, to absorb, to withdraw all the pāpams from the devotee’s mind; it is because of the impurity.

Sant Jnyaneshwara’s commentary of this shloka emphasizes Arjuna’s good fortune of being able to view this cosmic form. He lists Lakshmi, Shesha and Garuda as tireless servants of Lord Vishnu who have yet to see the cosmic form that Arjuna sees, underscoring the love Shri Krishna for his devotee Arjuna. He also enumerates others who were able to see a tiny glimpse of this cosmic form including Yashoda and Dhruva. Even when duryodhan attempted to arrrest Shrikrishana when he has tried for

compromise between Pandav and Kaurav to avoid the war, the cosmic view was shown by Shri Krishna in Assembly i.e. rajayasabha of Dhrithrastra.

So what did this form look like? In the next four verses, Sanjay describes to Dhritarashtra what Arjun saw. The word aiśhwarya means “opulence.” The cosmic form of God is replete with the manifestation of his opulence’s, and it invokes fear, awe, and reverence in the beholder.

।। हिंदी समीक्षा ।।

गीता सुनानेवाले दो लोग थे, एक स्वयम परमात्मा जो अर्जुन को सुना रहे है, दूसरे संजय जो व्यास जी से प्राप्त दिव्य दृष्टि से कृष्ण द्वारा कही गीता को धृष्टराष्ट्र को सुना रहे है। अर्जुन एवम धृष्टराष्ट्र दोनों ही मोह ग्रस्त थे किंतु अर्जुन कर्मयोगी होने से इस मोह से निर्लिप्त हो रहा था किंतु धृष्टराष्ट्र मोह में अंधे ही थे इसलिये उन को गीता के ज्ञान का कोई असर नही था। संजय सुनाने वाले परमात्मा श्री कृष्ण से इतना अधिक प्रभावित हो गया था कि वो चाहता था कि धृष्टराष्ट्र इस बात को समझे की परमात्मा जिस की तरफ है उस की जीत सुनिश्चित है, इसलिये युद्ध को टाला जाए। इसी प्रभाव में वह कृष्ण को महायोगेश्वर हरि संबोधन देते हुए संजय धृतराष्ट्र को सूचना देता है कि महायोगेश्वर हरि ने अर्जुन को अपना ईश्वरीय रूप दिखाया। उन के स्वरूप को परमं रूपमैश्वरम् कहते हुए विराट स्वरूप को संबोधित किया। हरि का अर्थ के जो सर्वस्व हरण कर ले। संजय के मन में अभी भी कहीं क्षीण आशा है कि यह सुनकर कि विश्वविधाता भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों के साथ हैं, सम्भवत अन्धराजा अपने पुत्रों की भावी पराजय को देखें और विवेक से काम लेकर, विनाशकारी युद्ध को रोक दें।

तो उन मौन क्षणों के दौरान संजय वर्णन करते हैं; हे राजन! भगवान कृष्ण कोई और नहीं वह विष्णु है, वह हरिहि शब्द का प्रयोग करता है, जिस का अर्थ है।

ह्रीर हरति पापानि दुष्टा चित्तैरा अभि स्मृताः..।

अनिकायात् संस्पृष्टः दहत एव हि पावकः हरिः पापानि हरति;..।।

भगवान विष्णु को हरि कहा जाता है। हरति का अर्थ है चूसना, अवशोषित करना, भक्तों के मन से सभी पापों को बाहर निकालना। यह अशुद्धि के कारण है; मैं अपने सामने दिव्यता नहीं देखता मुझे उस राग द्वेष को हटाना है, जिसे भगवान विष्णु अवशोषित करते हैं।

हम सभी गीता पढ़ते है, हरि के दर्शन भी करते है किंतु सांसारिक राग - द्वेष में उस के वास्तविक स्वरूप को नहीं देख पाते, इसलिए पूजा पाठ के बाद भी धृतराष्ट्र की भांति ज्यों के त्यों रह जाते है।

ज्ञानेश्वरी में विश्वरूप दर्शन के लिये अर्जुन के भाग्य की प्रशंसा लक्ष्मी,, गरुड़, नारद एवम शेष नाग से अधिक की गई है क्योंकि ईश्वरीय रूप तो प्रह्लाद, बाली, ध्रुव, लक्ष्मी एवम नारद आदि कई लोगो ने देखा किन्तु विश्वरूप की झलक यशोदा ने देखी और पूर्ण दर्शन अर्जुन एवम संजय कर पा रहे है। दुर्योधन को भी यह दर्शन परमात्मा ने उस समय दिए जब कृष्ण भगवान समझौते के अंतिम प्रयास के लिए उस के पास गए और वह उन्हें बंदी बनाने का प्रयास कर रहा था।

महृषि व्यास जी की गीता की लेखन कला अद्वितीय है क्योंकि यह सब परमात्मा द्वारा सत्यापित करके लिखा है, इसी प्रकार जब परमात्मा के रूप का वर्णन का समय आया तो संजय संवाद से बताया गया क्योंकि अर्जुन जो देख रहा है वो बोलने की स्थिति में ही नही रह जाता, अतः परमेश्वर के स्वरूप को संजय के अतिरिक्त और कौन बता सकता था? धृष्टराष्ट्र जो आँख का अंधा नही, मन का भी पुत्र मोह में अंधा था, यह उन श्रोताओं के प्रतिनिधित्व करता है जो गीता अध्ययन के बाद या गीता सुनने के बाद भी कोरे के कोरे रह जाते है क्योंकि वो मोह के वश में सत्य को स्वीकार नही करते।

जीव का कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव का प्रभाव अत्याधिक होने से, परमात्मा का ज्ञान भी रज या तम गुण से प्रभावित होता है। वह अज्ञानी प्राकृतिक लाभ एवम सुखों के लिये परमात्मा की पूजा या आराधना करता है। धृतराष्ट्र भी कृष्ण से दुर्योधन के पक्ष में युद्ध टालने की अपेक्षा रखता है, इसलिये उस के विश्वरूप का दर्शन का कोई औचित्य नही दिखाई देता। जबकि संजय अपने स्वामी का भला चाहता है, इसलिये वह यह वर्णन करते हुए अपेक्षा रखता है कि उस के स्वामी समझ जाएं कि सारथी कृष्ण स्वयं भगवान विष्णु है, इसलिये युद्ध रोक कर समझौता कर ले। बताने वाले के उद्देश्य की पूर्ति तभी सम्भव है, जब सुनने वाले की इच्छा या विचार में कोई समानता हो और उस के मन मे सुनने वाले के प्रति समर्पण भाव हो।

गीता अध्ययन करने वाले सैंकड़ो लोगो मे लोग जब तक भगवान के प्रति समर्पित भाव न हो तो अध्ययन करने वाला अहम भाव मे विश्वरूप के दर्शन से वंचित हो कर, वाचाल अर्थात इन श्लोक को रट कर बोलने वाला रह जाता है।

अलौकिक और ऐश्वर्य पूर्ण स्वरूप में और सामान्य स्वरूप में अंतर सीमित या एकरूप और अनंत आदि और अंतहीन रूप का है। इसलिए संध्या वंदना में भी कहा जाता है।

प्राच्यै दिषे नमः। दक्षिणायै दिषे नमः। प्रतिच्यै दिशे नमः। उदीच्यै दिषे नमः। ऊर्ध्वाय नमः। आधाराय नमः। अन्तरिक्षाय नमः। भूमियै नमः। विष्णुवे नमः। मृत्यवे नमः।।

जो सभी दिशाओं और सभी जगह विद्यमान है, वह विष्णु का ऐश्वर्य स्वरूप ही है।

यहाँ संजय भगवान को सब से बड़े योगेश्वर 'महायोगेश्वर' एवम सब के पापो एवम दुखो की हरण करने वाले 'हरि' शब्द से संबोधित करते है। उन के स्वरूप को 'परम्' अर्थात शुद्ध, श्रेष्ठ एवम अलौकिक, ईश्वरीय गुणों के प्रभाव और तेज से युक्त एवम योगशक्ति से सम्पन्न 'ऐश्वर' कहते हुए, रूपम एवम विराट स्वरूप बोलते है। अगले चार श्लोकों में संजय, अर्जुन ने जो देखा था उसका वर्णन करता है। ऐश्वर्य शब्द का अर्थ 'वैभव' है। भगवान का विराट विश्वरूप उनके ऐश्वर्यों की अभिव्यक्तियों से परिपूर्ण है और इसे देखने से भय, विस्मय और श्रद्धा उत्पन्न होती है।संजय उस अद्भुत विराट स्वरूप अनेक मुख, नेत्र, हाथ, पैर, अनेक गन्धो , आभूषणों, फूलों, रत्नों एवम मोतियों को धारण किये एवम अनेक शस्त्र से सज्जित परमात्मा के प्रकट स्वरूप का वर्णन करते हुये और क्या कहते है, हम पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।।11.09।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.10-11॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥

"aneka- vaktra- nayanam,
anekādbhuta- darśanam..।
aneka- divyābharaṇaṁ,
divyānekodyatāyudham..।।10।।

divya- mālyāmbara- dharaṁ,
divya- gandhānulepanam..।
sarvāścarya- mayaṁ devam,

anantaṁ viśvato- mukham"..||11||

भावार्थ:

इस विश्वरूप में अनेकों मुँह, अनेकों आँखे, अनेकों आश्चर्यजनक दिव्य- आभूषणों से युक्त, अनेकों दिव्य- शस्त्रों को उठाये हुए, दिव्य- मालाऍं, वस्त्र को धारण किये हुए, दिव्य गन्ध का अनुलेपन किये हुए, सभी प्रकार के आश्चर्यपूर्ण प्रकाश से युक्त, असीम और सभी दिशाओं में मुख किए हुए सर्वव्यापी परमेश्वर को अर्जुन ने देखा। (१०-११)

Meaning:

With several faces and eyes, showing several marvellous sights, wearing several divine ornaments, armed with several divine uplifted weapons. Wearing divine garlands and clothes, anointed with divine fragrances, all of these wonderful (sights) were shining and infinite, with faces on all sides.

Explanation:

A person has limits in every aspect. He has limit of face, time, space, size, holding and exercising. But when he starts working in a group all the limits are increase to the extent of group, it means all the person faces are group faces. When the entire universe is one group, what will be happened, we see in cosmic visual of God.

Shri Krishna has a unique style of communication. Like an artist, he first sketches out a broad outline of what he wants to cover, and then step by step fills in the colour to create a grand painting. We see this style in the way he reveals the Vishwa roopa, the cosmic form to Arjuna. Sanjay elaborates upon Shree Krishna’s divine universal form with the words aneka (many) and anant (unlimited). The entire creation is the body of God’s cosmic form, and therefore it contains countless faces, eyes, mouths, shapes, colours, and forms. The human intellect is habituated to grasping things within the limited kernel of time, space, and form. The cosmic form of

God revealed unusual wonders, marvels, and miracles in all directions, transcending the limitations of space and time, and thus it could be aptly termed as wondrous.

When someone is confronted with such a mighty spectacle, they want to take it all in. The Sistine chapel in the Vatican is an example of an artwork where most people are so overwhelmed with all the details and the complexity that they don't know where to look. The cosmic form surrounded and engulfed Arjuna to such an extent, there were so many sights to see, that he did not know where he should look and where shouldn't he look.

Now, as a hint of things to come, Shri Krishna displays both aspects of his personality. On one hand he is decked in fine jewellery and ornaments, creating a sight that is pleasing to the eye. But on the other hand his weapons show another aspect to his personality, that he has the potential to use destructive force if necessary.

Sanjaya continues the description of Ishvara's cosmic form in this shloka. Shri Krishna, after giving a hint of Ishvara's destructive power to Arjuna, showed his soumya roopa or his pleasing form. In other words, all the five senses and the mind enjoyed taking in this pleasant form. To that end, Arjuna saw Ishvara dressed up in fine clothes and garlands, as well as anointed with divine perfumes.

Anekavaktram means what; Arjuna learns to see all the mouths of all the people as the mouth of the Lord and suppose you say No No No, it is my mouth, that is called ahaṁkāra; that is the problem; where is the question of my mouth when I myself am not there, because there is no individual separate from totality. There is no Tamil Nadu separate from India; there is no wave separate from ocean; there is no vaṣṭi separate from samaṣṭi. When I myself do not exist, where is the question of my mouth, my eyes, my land, my dress, my weapons etc. etc.

Another aspect of this form that it did not have a “centre”. Whenever we try to worship God, we always choose either an idol or an image so that we can focus our thoughts. However, many of us tend to get fixated on one deity, image or idol and consequently shun other deities. Sanjaya, in describing the cosmic form, noted that it had “infinite faces”. In other words, whenever Arjuna tried to pinpoint one face and say “this is Ishvara”, he would fail. Shri Krishna did this to remove any prior conceptions of Ishvara that Arjuna would have harboured.

Now, we always need to keep one thing in mind when we contemplate the cosmic form - there is oneness behind all the diversity. It is all one being, ultimately. Just like the millions of cells, tissues and organs in our body serve one person, all the diversity seen in the cosmic form serves one Ishvara. Our minds are used to dividing things, cutting up things. The cosmic form is meant to reverse that process and unify everything.

As somebody said, it is better to have a prayer, a heart without words rather than words without heart behind. If you have the Bhavana and you are not able to verbalise, it does not matter. Therefore, that bhāvana is important.

Sanjaya used the word “devam” which means shining to describe this form. He elaborates on this in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

एक व्यक्ति की सीमाएं उस की आकृति, चेहरा, संपत्ति, समय, स्थान और साधन सीमित है। किंतु जब यही कार्य किसी समूह में सामूहिक रूप में हो, वह एक नही हो कर, समूह का चेहरा, समय और स्थान की क्षमता में परिवर्तित हो जाता है, यही संपूर्ण ब्रह्मांड की बात हो तो वह परब्रह्म का दिव्य स्वरूप है।

जिस के संकल्प मात्र से ब्रह्मांड एवम सृष्टि की रचना हुई, जो जड़-चेतन के कण कण में जो समाया हुआ है, यदि वह निर्गुणाकार परमेश्वर अपने स्वरूप को प्रकट करता है और जो

अर्जुन को दिख रहा है, उस का वर्णन संजय द्वारा व्यास जी अपनी अद्धभुत लेखन क्षमता से करते है एवम जिसे संत ज्ञानेश्वर अपनी ज्ञानेश्वरी में संवारते हुए कहते है। जब परमात्मा अपने प्रकाश से सृष्टि को प्रकाशित करते है तो अर्जुन ने अनेक चेहरे देखे, जो एक से बढ़ कर सुंदर थे, दूसरी और ऐसे भयानक चेहरे थे मानो कालरात्रि की सेना ही उमड़ पड़ी हो, जो स्वयं मृत्यु के मुख से निकल कर आ रहे । चहुंओर सौम्य एवम विकराल चेहरों में विश्वरूप से अनेक रंगों की आंखे एवम सूर्य के समान तपती आंखे एवम मुख दिखाई दे रहा था। जैसे कल्पांत काल मे श्याम वर्ण के मेघ समूह में विद्युत की चमक दृष्टि गत होती है वैसे ही उन श्याम और टेढ़ी भौंहों के नीचे अग्नि की तरह पीत वर्ण की दृष्टि की किरणें सुशोभित हो रही थी। विराट् रुप से प्रकट हुए भगवान् के जितने मुख और नेत्र दीख रहे हैं, वे सब के सब दिव्य हैं। भगवान् के विराट् रुप में जितने रूप दीखते हैं, जितनी आकृतियाँ दीखती हैं, जितने रंग दीखते हैं, जितनी उन की विचित्र रूपसे बनावट दीखती है, उन सब का दर्शन अद्भुत दिख रहा है।

लाखों की भीड़ किसी मेले में दिखे जिस की शुरुवात और अंत नहीं दिखता हो, तो श्रद्धा, प्रेम और विश्वास से समझ लीजिए, जो लाखों चेहरे दिख रहें हैं वे परब्रह्म का ही विश्व स्वरूप है।

आपादमस्तकपर्यंत उस स्वरूप ऐश्वर्य को देखते समय अर्जुन को लगता है वह विश्वरूप अनेक प्रकार के रत्नों एवम अलंकारों से सुशोभित है। यह भी बताना कठिन है कि परब्रह्मस्वरूप देव ने जो नाना प्रकार के आभूषण धारण कर रखे थे वो कैसे और किस के सदृश्य थे। जिस तेज से चंद्र और सूर्यमंडल भी प्रकाशित होता है, विश्व के जीवनरूपी महातेज का जो जीवन सर्वस्व है, वह तेज ही इस विश्व रूप का श्रृंगार है। विराट् रूप में दीखनेवाले अनेक रूपों के हाथों में, पैरों में, कानों में, नाकों में, और गलों में जितने गहने हैं, आभूषण हैं, वे सब के सब दिव्य हैं। कारण कि भगवान् स्वयं ही गहनों के रूप में प्रकट हुए हैं। यह गहने कोई ओर नहीं विश्व में प्रत्येक जीव के धारण किए हुए का ही प्रतिबिंब है।

ऐसे तेज सम्पन्न श्रृंगार करने वाले देव से जब अर्जुन ने दृष्टि उन सरल हाथों की ओर डाली तो हाथ विभिन्न अस्त्रों एवम शास्त्रों से सुशोभित थे। विराट् रुप भगवान् ने अपने हाथों में चक्र, गदा, धनुष, बाण, परिघ आदि अनेक प्रकार के जो आयुध (अस्त्रशस्त्र) उठा रखे हैं, वे सब के सब दिव्य हैं। जिस काल एवम पृष्ठ भूमि में गीता की रचना की गई, उस काल मे पुरुष का पौरुष उस के बलवान, बुद्धिमान एवम अस्त्रों एवम शस्त्रों के धारण करने से ही

होता था। आज भी विश्व मे शक्तिशाली देश उनको की मानते है जिस के पास आधुनिक हथियार भरपूर हो।

हम युद्ध भूमि में गीता के ज्ञान को सुन रहे है तो निश्चय ही 18 कोटि सेना के हाथ में अस्त्र - शस्त्र होंगे, वही हम भी देख पा रहे है।

अर्जुन देव के हाथों में विभिन्न अस्त्र एवम शस्त्र देख रहा है जिन की क्षमता का आकलन वो उन हथियारों की चमक से महसूस करता है, मानो इन हथियारों से किरणों की भांति प्रबल अग्नि में नक्षत्र भुने चनों की भांति फुट रहे हो। मानो काल कूट विष की लहरों में बुझाए हुए शस्त्र को देव अपने असंख्य हाथों में प्रचंड विद्युत को पकड़े हुए है।

अर्जुन का ध्यान परमात्मा के अस्त्र- शस्त्रों से सज्जित हाथों से हटा तो उसे परमात्मा महाशक्ति पीठ के मूल कंठ एवम मस्तक पर अलौकिक पुष्प मालाएं शोभित नजर आने लगी। पीतांबर से ढका परमात्मा का तन ऐसे शोभा दे रहा था मानो स्वर्ग ने सूर्य के तेज का परिधान धारण कर लिया हो या मेरुगिरि स्वर्ण से आच्छादित कर दिया हो। जैसे चांदनी का तह लगा कर आकाश पर उस की खोली चढ़ा दी हो या क्षीर समुन्द्र को दुग्ध के सदृश्य धवल वस्त्र पहनाया हो वैसा चंदन का लेप भगवान के पूरे शरीर पर लगा था।

चारो ओर सुगन्ध के वातावरण आत्मस्वरुप परमात्मा का तेज और अधिक द्युतिमान हो रहा था। इस प्रकार विराट रूप भगवान् ने गले में फूलों की, सोनेकी, चाँदीकी, मोतियोंकी, रत्नोंकी, गुञ्जाओं,आदिकी अनेक प्रकार की मालाएँ धारण कर रखी हैं। उन्होंने अपने शरीरों पर लाल, पीले, हरे, सफेद, कपिश आदि अनेक रंगों के वस्त्र पहन रखे हैं । इसी प्रकार भगवान् ने ललाटपर कस्तूरी, चन्दन, कुंकुम आदि गन्धके जितने तिलक एवम लेप कर रखा है।

इस प्रकार देखते ही चकित कर देनेवाले, अनन्तरूपवाले तथा चारों तरफ मुख- ही- मुखवाले अपने परम ऐश्वर्यमय रूप को भगवान् ने अर्जुन को दिखाया। जैसे, कोई व्यक्ति दूर बैठे ही अपने मन से चिन्तन करता है कि मैं हरिद्वार में हूँ तथा गङ्गाजी में स्नान कर रहा हूँ, तो उस समय उस को गङ्गाजी, पुल, घाट पर खड़े स्त्री-पुरुष आदि दीखने लगते हैं तथा मैं गङ्गाजी में स्नान कर रहा हूँ - ऐसा भी दीखने लगता है। वास्तव में वहाँ न हरिद्वार है और न गङ्गाजी हैं; परन्तु उसका मन ही उन सब रूपों में बना हुआ उस को दीखता है। ऐसे ही एक भगवान् ही अनेक रूपों में, उन रूपों में पहने हुए गहनों के रूप में, अनेक प्रकार के आयुधों के रूप में, अनेक प्रकार की मालाओं के रूप में, अनेक प्रकार के वस्त्रों के रूप में

प्रकट हुए हैं। इसलिये भगवान् के विराट्रूप में सब कुछ दिव्य है।श्रीमद्भागवतमें आता है कि जब ब्रह्माजी बछड़ों और ग्वालबालोंको चुराकर ले गये, तब भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही बछड़े और ग्वालबाल बन गये। बछड़े और ग्वालबाल ही नहीं, प्रत्युत उनके बेंत, सींग, बाँसुरी, वस्त्र, आभूषण आदि भी भगवान् स्वयं ही बन गये।

ब्रह्मस्वरूप परमात्मा का न आदि है न अंत। वो काल से भी नही बंधा। इस विराट स्वरूप परमात्मा का अर्जुन स्वयम समझ नही पा रहा कि यह कहाँ से शुरू होता है और कहां समाप्त होता है, इस का मध्य कहाँ है। वह चारो दिशाओं में विस्तृत अनेक मुखों वाले ब्रह्म स्वरूप परमात्मा को पूर्ण स्वरूप में देख नही पा रहा क्योंकि परमात्मा का यह भव्य स्वरूप उस के चारो ओर एक समान फैला हुआ है। साहित्य के कुशल चित्रकार व्यासजी के द्वारा चित्रित इस शब्दचित्र का यह श्लोक संजय के शब्दों में भगवान् के विश्वरूप की रूपरेखा खींचता है।संजय के समक्ष जो दृश्य प्रस्तुत हुआ है, वह सामान्य बुद्धि के पुरुष के द्वारा सरलता से ग्रहण करने योग्य कदापि नहीं कहा जा सकता। इस वैभवपूर्ण एवं शक्तिशाली दृश्य को देखकर सामान्य पुरुष तो भय और विस्मय से भौचक्का ही रह जायेगा। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कोई मन के द्वारा कल्पना किया जाने योग्य विषय नहीं है और न ही बुद्धि उसको ग्रहण कर सकती है। इसलिए, जब गीतोपदेश के मध्य यह दृश्य उपस्थित हो जाता है, तब संजय भी वर्णन करते हुए कुछ हकलाने लगता है।

विश्वरूप का यह दर्शन अद्वैतवाद का दर्शन है, जिस के जीव का राग-द्वैष मिट जाने से कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव खत्म हो गया है, उसे सृष्टि की हर रचना, जड़-चेतन में परमात्मा ही दिखना शुरू हो जाता है। विभेद दृष्टि न रहने से चारो और जो भी दिख रहा है, वह परमात्मा का ही स्वरूप है, फिर अनन्त मुख, आंखे, हाथ, सौम्य एवम रौद्र स्वरूप जो भी है, वह परमात्मा ही दिखता है।

जैसा कि किसी ने कहा, प्रार्थना करना बेहतर है, शब्दों के बिना हृदय से या हृदय से बिना शब्दों के। यदि आपके पास भावना है और आप बोल नहीं सकते, तो कोई बात नहीं; लेकिन अगर आपके पास दिल के बिना शब्द हैं तो वह भी "तन मन धन सब कुछ तेरा" गा कर भी, कड़ा कड़ा ही है, फिर चाहे आप कितना भी नैवेद्यम भोग लगाए। यह महत्वपूर्ण है, सभी मुख भगवान के मुख हैं। सभी आँखें भगवान की आँखें हैं, तो प्रार्थना भी भगवान की भावना से ही होनी चाहिए।

अनेकवक्त्रम् का अर्थ क्या है; अर्जुन सभी लोगों के मुखों को भगवान के मुख के रूप में देखना सीखता है और मान लीजिए आप कहते हैं नहीं, नहीं, यह मेरा मुंह है, जिसे अहंकार कहा जाता है; यही दिक्कत है; जब मैं ही नहीं हूं तो मेरे मुंह की बात कहां है; क्योंकि समग्रता से पृथक कोई व्यक्ति नहीं है। भारत से अलग कोई तमिलनाडु नहीं है; सागर से अलग कोई लहर नहीं है; समष्टि से अलग कोई वस्तु नहीं है। जब मैं ही नहीं हूं तो मेरे मुंह, मेरी आंखों का सवाल ही कहां है।

प्रसाद और सेब की तरह, दुकान से सेब सेब है। एक बार यह मंदिर में जाकर आ गया, यह प्रसाद बन जाता है। इसलिए कोई धर्मनिरपेक्ष चीज़ तभी पवित्र होती है जब वह ईश्वर से जुड़ी हो। यदि मैं देखूं कि सब कुछ प्रभु का है, मेरे पास धर्मनिरपेक्ष कुछ भी नहीं है। एक विश्व रूप भक्त के लिए। कोई धर्मनिरपेक्ष चीज़ नहीं है; सर्वम् पवित्र मयम्; तो यह एक कारण है।

परमात्मा का अनेक नेत्रों, चेहरों, मस्तक, रूपो से अलंकृत चेहरे से लेकर हाथों तक के रूप के बाद अर्जुन देव के सौम्य एवम काल स्वरूप को देख रहा है। युद्ध भूमि में अर्जुन को अपने भव्य स्वरूप का दर्शन जो सम्पूर्ण सृष्टि, भूत, भविष्य और वर्तमान काल को ले कर गीता में व्यास जी प्रकट किया है, यह उन के अद्वितीय साहस और ज्ञान का प्रतीक है, क्योंकि अभी तक जगत के पालनहार विष्णु का सौम्य स्वरूप ही लोगो मे जाना। सृष्टि से संहार तक, ब्रह्मा- विष्णु- महेश के निर्गुणाकार स्वरूप में अर्जुन ने देव स्वरूप के श्रृंगार एवम वस्त्रों भव्यता को देखा एवम इतने विशाल स्वरूप को देख कर संजय अपना वर्णन जारी रखते हुए आगे क्या देखते हुए कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.10 - 11।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.12॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥

"divi sūrya- sahasrasya,
bhaved yugapad utthitā..।
yadi bhāḥ sadṛśī sā syād,
bhāsas tasya mahātmanaḥ"..।।

भावार्थ:

यदि आकाश में एक हजार सूर्य एक साथ उदय हो तो उनसे उत्पन्न होने वाला वह प्रकाश भी उस सर्वव्यापी परमेश्वर के प्रकाश की शायद ही समानता कर सके। (१२)

Meaning:

Should thousands of suns happen to rise in the sky simultaneously, their blaze would resemble the light of that magnificent one.

Explanation:

To better give us an idea of the level of cosmic form's brightness, Sanjaya compares to the radiance emitted by an infinite number of suns rising at the same time. Note that "sahasra" means infinite and not the literal meaning, which is thousand. Some scientists who have witnessed nuclear explosions have also used similar language to describe something that is bright beyond comparison.

So where does this radiance come from? Let us investigate. The Brihadaranyaka Upanishad is one of the primary texts that discusses topics regarding the eternal essence. In one instance, it uses the phrase "effulgent infinite being" to describe the eternal essence. This is the source of the radiance. We never get to experience it because it is covered up by the material world. In this case, Shri Krishna enabled Arjuna to see the infinite light and radiance of the eternal essence in its pristine form.

so that will be the brilliance, that will be the comparison for the brilliance of the mahātma. Mahātma means Viśva rūpa Īśvaraḥ; So mahān anathaḥ śarīram yasya mahātma; this place ātma does not mean satcitanānda ātma; here it means śarīram; mahātma means infinite body is the Lord; So that is the brilliance, it is indescribable.

We also have to remember that the comparison made by Sanjaya is helpful but compares two things that are difficult to compare. Even the brilliance of infinite suns is still a brilliance of the material world, whereas Ishvara's brilliance is divine, far superior that any material brilliance.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अव्यक्त परमात्मा जब व्यक्त स्वरूप में दर्शन दे रहा हो तो उस के आलोक एवम दर्शन का वर्णन करना मानो सूर्य को दीपक दिखाना है। किंतु व्यास जी यह सशक्त वर्णन संजय के माध्यम से किया। धृष्टराष्ट्र जन्म से अंधे थे इसलिये प्रकाश को वो नही जानते थे, उन की कल्पना में वस्तु चार ज्ञानेंद्रियों से ग्रहण करने योग्य थी। पुत्र मोह के कारण वो संजय द्वारा भगवान कृष्ण की दिव्यता को भी नही समझ पा रहे थे।

संजय भी उस दीप्तयमान प्रकाशपुंज परमात्मा के तेज को सही प्रकार से नही देख पा रहा था, उसे परमात्मा का वह प्रकाश ऐसा महसूस हो रहा था मानो हजारों सूर्य एक साथ उदय हो गए हो। उस विश्व रूप की अंग प्रभा के तेज के समक्ष शायद सहस्र सूर्य भी अल्प ही सिद्ध हो। इस प्रकर जब हजारों सूर्यों के प्रकाश को उपमेय बनाने में भी दिव्य दृष्टि वाले सञ्जय को संकोच होता है, तब वह प्रकाश विराट् रूप भगवान् के प्रकाश का उपमान हो ही कैसे सकता है कारण कि सूर्य का प्रकाश भौतिक है, जब कि विराट् भगवान् का प्रकाश दिव्य है। भौतिक प्रकाश कितना ही बड़ा क्यों न हो, दिव्य प्रकाश के सामने वह तुच्छ ही है। भौतिक प्रकाश और दिव्य प्रकाश की जाति अलग अलग होने से उनकी आपस में तुलना नहीं की जा सकती।

संजय अब भगवान के विश्वरूपी दिव्य तेज का वर्णन करता है। इसकी चकित कर देने वाली दीप्ति का आभास कराने के लिए वह मध्याह्न में एक साथ हजारों अर्थात असीमित या असंख्य चमकते हुए सूर्यों के प्रकाश से इसकी तुलना करता है। वास्तव में भगवान की प्रभा असीमित है और इसे सूर्य के तेज के साथ परिमाणित नहीं किया जा सकता। प्रायः वक्ता अप्रकट का वर्णन प्रकट के वहिर्वेशन द्वारा करते हैं। संजय ने यहाँ हजारों सूर्यों की उपमा देकर अपने अनुभव को व्यक्त किया है कि भगवान के विश्वरूप के तेजस्व के समतुल्य कोई नहीं है।

तुलसीदास जी का कथन है, "मरुत कोटि सत विपुल बल, रवि सत कोटि प्रकास" । अर्थात परमात्मा के प्रकाश से यह जगत प्रकाशित है, तो जो स्वयं प्रकाश है, उस की तुलनात्मक

उपमा नही हो सकती। वह दिव्य प्रकाश परमात्मा का कल्पनातीत है। कुछ हद्द तक यह माने की जापान में द्वितीय विश्व युद्ध के समय परमाणु बम के फटने पर जो प्रकाश का वर्णन हम पढ़ते है, यह प्रकाश उस से भी परे है। संजय भी यह देख सके, इस के लिये वह महृषि व्यास का आभार महसूस करते है।

जिस प्रकाश से विराट विश्वरूप दीप्तिमान हो रहा है, वह सच्चिदानंद आत्म स्वरूप नही हो कर अध्याय 10 ने वर्णित विभिन्न विभूतियों का स्वरूप है, जो भगवान के एक अंश में संपूर्ण ब्रह्मांड का दर्शन करवा रहा है।

उपनिषदों में भी आत्मा का वर्णन कुछ इसी प्रकार किया गया है। किन्तु मानवीय कमजोरी ही है वो भव्यता की तुलना अपने सीमित ज्ञान से हो कर सकता जिसे वो जानता है, इसलिये यह स्वीकार करना पड़ेगा कि संजय के मुख से और विशेष कर जब वह भगवान् श्रीकृष्ण के ईश्वरीय रूप का वर्णन कर रहा है, इस उपमा को विशेष ही आकर्षण और गौरव प्राप्त होता है। वह विराट स्वरूप परमात्मा के दिव्य, कांतिस्वरूप, अलौकिक और अपरिमित स्वरूप के देख रहा है और इसे अधिक विवरण देकर इस दृश्य को और अधिक सुन्दर बनाते हुए संजय आगे क्या कहता है, यह हम अगले श्लोक में पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.12।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.13॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा॥

"tatraika-sthaṁ jagat kṛtsnaṁ,
pravibhaktam anekadhā..।
apaśyad deva- devasya,
śarīre pāṇḍavas tadā"..।।

भावार्थ:

पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उस समय अनेक प्रकार से अलग-अलग सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को सभी देवताओं के भगवान श्रीकृष्ण के उस शरीर में एक स्थान में स्थित देखा। (१३)

Meaning:

Then, the Paandava saw the entire universe with many divisions located in one place in the body of that lord of lords.

Explanation:

Previously, Arjuna was overwhelmed by the sheer vastness of Ishvara's cosmic form. There was so much going on, so many shapes and forms, that he did not know where to look. He took some time to get accustomed to the radiance emitted from that form. Now that his vision became a little clearer, he saw the entire universe with the earth, the sky, the oceans, animals, plants, trees and humans in one tiny corner of that vast cosmic form.

Sant Jnyanadeva provides some illustrations to convey the how small the universe looked. It was like a few atoms on Mount Meru, a few bubbles in the vast ocean and an anthill on planet earth. Such was the vastness of the cosmic form that even our universe looked puny. In the Srimad Bhagavatam, we see a similar description.

Yashoda saw herself and her village in a tiny corner of the universe that was situated in the yawning toddler Shri Krishna's mouth.

In this shloka, Arjuna quite literally saw "the big picture". Like us, he was concerned and preoccupied with his problems, his challenges, and his worries. He now came face to face with "ananta koti brahmanda naayaka", the lord of an infinite number of universes. When Arjuna saw Ishvara's cosmic form, he realized that the universe is nothing but a small fraction of Ishvara's creation. The tiny wave realized how huge the ocean really is.

At that time, means what; at which time, at the time when divya cakṣu was given. Before that he saw the same world; but it was a persecuting world; problematic world; unfaceable world; burdensome world. Now the very same world has become totally different and therefore divya cakṣu pradhāna

anantharam; after being blessed with Divya cakṣu Arjuna saw the Viśva rūpa.

Sañjaya was given a special ESP; special power by Vyasācārya by the special power Sañjaya could remain in the palace with Dritarāṣtra and he could like closed circuit TV or satellite channel, he could have the total vision of the battlefield and not only he could see the people, but it was also a special satellite TV that Sañjaya could read even the mind of the people. And therefore, Arjuna's feelings and emotions also Sañjaya is able to recognise and therefore Sañjaya gives the description here, which we are seeing now in the 13th verse:

।। हिंदी समीक्षा ।।

संसार मे परमात्मा के प्रति मोक्ष के द्वैत एवम अद्वैत दो भाव है। भक्ति भाव मे भक्त और भगवान दो अलग अलग होते है। किंतु इन का सम्बंध सर्मपण एवम प्रेम का जुड़ा है, इस दूसरे के प्रति इतना अधिक समर्पण होता है, की दो होते हुए भी एक भाव के होता है, इस को विशिष्टाभाव अद्वैत कहते है। अर्जुन कृष्ण के भक्त है, भक्त को प्रेम वश परमात्मा अपना स्वरूप दिखा रहे है, किन्तु उस के भाव को प्रकट न करते हुए, महृषि व्यास जी ने संजय के माध्यम से अर्जुन क्या देख रहे है, इस का वर्णन पहले किया है। यही उन की विशिष्टता है कि विराट विश्वरूप के दर्शन का वर्णन अन्य व्यक्ति (संजय) के माध्यम से किया। इस के विशिष्टाभाव का वर्णन अर्जुन के माध्यम से आगे पढ़ेंगे। जब तक हम विराट स्वरूप को नही पहचान लेते, तब तक अर्जुन के व्यक्त भाव को भी नही पहचान सकते।

संजय अर्जुन को भगवान के विराट स्वरूप के दर्शन करते हुए का वर्णन करते हुए आगे कहते कि पांडु पुत्र अर्जुन ने अनेक प्रकार के विभागों में विभक्त अर्थात् ये देवता हैं, ये मनुष्य हैं, ये पशु-पक्षी हैं, यह पृथ्वी है, ये समुद्र हैं, यह आकाश है, ये नक्षत्र हैं, आदि-आदि विभागों के सहित (संकुचित नहीं, प्रत्युत विस्तार सहित) सम्पूर्ण चराचर जगत् को भगवान् के शरीर के भी एक देश में अर्जुन ने भगवान् के दिये हुए दिव्यचक्षुओं से प्रत्यक्ष देखा। तात्पर्य यह हुआ कि भगवान् श्रीकृष्ण के छोटे- से शरीर के भी एक अंश में चर- अचर, स्थावर- जङ्गमसहित सम्पूर्ण संसार है। वह संसार भी अनेक ब्रह्माण्डों के रूप में, अनेक देवताओं के लोकों के रूप में, अनेक व्यक्तियों और पदार्थों के रूप में विभक्त और विस्तृत

है। इस प्रकार अर्जुन ने स्पष्ट रूप से देखा परमात्मा के एक ही स्थान में समस्त सृष्टि को देखा। समस्त सृष्टि जो काल से परे थी, अतः जहां पूर्व जन्म, भूतकाल, वर्तमान, भविष्य एवम पुर्नजन्म एक स्थान पर हो एवम देवता- मनुष्य, पशु पक्षी, वृक्ष-पौधे आदि भोक्तवर्ग, समुन्द्र, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, पाताल, पितृ लोक, चंद्रलोक आदि आदि भोग्यस्थान आदि समस्त ब्रह्मांड को विभिन्न भाव से पृथक पृथक अनेक प्रकार विभक्त हुए समस्त जगत् को उस विश्वरूप देवाधिदेव हरि के शरीर में ही एकत्र स्थित देखा। पूरे ब्रह्मांड को अपने एक अंश में समेटे सारथी कृष्ण के विराट स्वरूप में दिव्य नेत्रों के कारण वो सब देख पा रहा था जो उस को एक मृत्यु लोक में जीव को देख पाना या समझ पाना असंभव सा है। अर्जुन को मानवीय कमजोरी एवम चिंताओं के समस्त उत्तर दिख रहे थे। यह कुछ वैसा ही था जो यशोदा ने बालक कृष्ण के मुख में संपूर्ण ब्रह्मांड देखा था।

संजय द्वारा अर्जुन को पांडु पुत्र कहना उस भारतीय संस्कृति को संबोधित करता है जिस में पुत्र यदि उच्च स्थान प्राप्त करे तो पिता का नाम ही ऊंचा होता है। समस्त ब्रह्मांड को एक स्थान पर देखना बुद्धि ग्राह्य होना चाहिए। अनेक में एक तत्व को पहचानना सरल है, किन्तु एक तत्व से अनेक वस्तु की कल्पना करना सभी के लिये संभव नही। स्वामी चिन्मयानंद जी अनुसार यह विज्ञान में परमाणु से विस्तृत 103 तत्व में बनी सम्पूर्ण पृथ्वी एवम संसार है। विज्ञान का विद्यार्थी है वस्तु को उस के तत्व या वैज्ञानिक नाम से पहचानता है। वह ही एक से अनेक की कल्पना एक तत्व देख कर सकता है।

आधुनिक विज्ञान से भी इसके समान दृष्टांत उद्धृत किया जा सकता है। रसायनशास्त्र में द्रव्यों का वर्गीकरण कर के उन का अध्ययन किया जाता है। जगत् की रसायन वस्तुओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि जगत् में लगभग एक सौ तीन तत्व है। और अधिक सूक्ष्म अध्ययन से वैज्ञानिक लोग परमाणु तक पहुंचे, अब उसका भी विभाजन करके पाया गया कि परमाणु भी इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन से बना है। परमाणु के इस स्वरूप से सुपरिचित वैज्ञानिक जब बहुविध जगत् की ओर देखता है, तब उसे यह जानना सरल होता है कि ये सभी पदार्थ परमाणुओं से बने हैं। इसी प्रकार, यहाँ जब अर्जुन को श्रीकृष्ण की अहैतु की कृपाप्रसाद से यह विशेष ज्ञान् प्राप्त हुआ, तब वह भगवान् के शरीर में ही सम्पूर्ण विश्व को देखने में समर्थ हो गया।

परमात्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म अत्यंत सूक्ष्म है जिस के एक अंश से समस्त सृष्टि की रचना हुई, यही तत्व को जानना या देखना ब्रह्मत्त्वविद होना है।

व्यवहार में अर्जुन जो देख रहा है, वह संजय के मुख से इसलिए सुन रहे है, क्योंकि संजय को भी दिव्य दृष्टि व्यास जी ने प्रदान की। किंतु जब आप हवाई यात्रा में हो तो नीचे धरती छोटी छोटी दिखती है, पर्वत की चोटी से घाटी छोटी से दिखती है और यात्रा में प्रकृति, मानव, घर, खेत, पशु पक्षी आदि सभी दिखते है किंतु उस में परमात्मा के विश्व रूप को हम नहीं देख पाते, कारण की हम सब राग - द्वेष से बंधे है। यदि आत्मशुद्धि प्राप्त हो तो यह दिव्य दृष्टि भी दिखेगी कि संसार में परब्रहम के अतिरिक्त कुछ भी नही। अतः परमात्मा के दर्शन के दृष्टिकोण में परिवर्तन आवश्यक है। जब तक दृष्टिकोण में संसार और प्रकृति के बंधन की स्वीकृति रहेगी, परमात्मा का दर्शन हो नही सकता।

इस विराट दृश्य को देखकर अर्जुन के शरीर और मन पर होने वाली प्रतिक्रियाओं को संजय ने ध्यानपूर्वक देखा, उसे दिव्य दृष्टि में किसी के मन की बात भी जान सकने की शक्ति प्राप्त थी, इसलिए अर्जुन कैसा महसूस कर रहे है, उनका विवरण सुनाते हुए वह क्या कहता है, हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.13।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.14॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥

"tataḥ sa vismayāviṣṭo,
hṛṣṭa- romā dhanañjayaḥ..।
praṇamya śirasā devaṁ,
kṛtāñjalir abhāṣata"..।।

भावार्थ:

तब आश्चर्यचकित, हर्ष से रोमांचित हुए शरीर से अर्जुन ने भगवान को सिर झुकाकर प्रणाम करके और हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए बोला। (१४)

Meaning:

Thereafter, filled with bewilderment, his hair standing on end, Dhananjaya, with folded hands, bowed his head to the lord and began to speak.

Explanation:

Arjun was struck with amazement and deep reverence on seeing that breathtaking spectacle. It struck devotional chords in his heart that evoked paroxysms of delight.

It is pictureless picture description through pen of mahrishi vyas for Arjun. Arjuna was struck by wonder, not because he is seeing a new thing, but he has a new perspective towards an ordinary thing. It is not an extraordinary sight, but it is an extra ordinary attitude towards the ordinary word available and because of this attitudinal change; vismayāviṣṭaḥ; he was wonderstruck, and this wonderment was so intense and deep that it began to express at the physical level also, because extreme emotions flow out to the physical body, because mind and body has connections.

The elation experienced through devotional sentiments occasionally finds expression in physical symptoms. The bhakti scriptures describe eight such symptoms, or the aṣhṭa sāttvic bhāv, that sometimes manifests in devotees when their heart gets thrilled in devotion: “Becoming stupefied, sweating, horripilation, choking of the voice, trembling, complexion becoming ashen, shedding tears, and fainting—these are the physical symptoms by which intense love in the heart sometimes manifests.”

That is what Arjun experienced as his hair began standing on end. So far, Arjuna was reeling under the shock of viewing the cosmic form of Ishvara. Sanjaya paints a wonderful picture of Arjuna’s reaction to this earth-shattering event. Filled with awe and astonishment, Arjuna’s body reacted with goose bumps. Once the extent of the shock receded to some extent, he gained back his faculties and mustered the energy to start speaking again.

Another aspect of this shloka is revealed by the phrase “bowed his head to the lord”. Arjuna, scion of the great Kuru dynasty was a proud warrior, one

of the finest archers in the land. There were few instances in his life where he faced a situation that would have humbled him. Seeing the entire universe in one tiny corner of the cosmic form put his accomplishments in the right perspective, taking all his pride away. He realized that he was nothing, his greatness was nothing compared to the glory of that infinite Ishvara.

So, whenever we feel we have accomplished something great, whenever our ego starts to puff up, or even when we feel our personal problems are weighing down upon us, we should do what Arjuna did: fold our hands and bow our head to Ishvara. Our feats and problems are tiny compared to the expanse and power of Ishvara's universe.

Arjuna begins to describe Ishvara's cosmic form in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन को दिव्य दृष्टि मिलने के बाद उसे परमात्मा के विराट रूप के दर्शन हो रहे थे और दूर धृष्टराष्ट्र के पास संजय अपनी दिव्य दृष्टि से वह सब देख रहे थे जो अर्जुन देख रहे थे। संजय न केवल दिव्य दृष्टि से देख सकते थे, वो समस्त बाते सुन एवम जहां देख रहे होते है उस व्यक्ति की भावनाओ को भी पढ़ सकते थे। इसलिये वह अर्जुन को देखते हुए कहते है।

यह वर्णन कलम की ताकत को दर्शाता है जो दूरदर्शन की भांति दृश्य तो नही प्रकट करती किंतु मन में दृश्य अवश्य दिखाती है।

सांसें रोक देने वाले उस दृश्य को श्रद्धा के साथ देखकर अर्जुन विस्मय के साथ आवाक् रह गया। इस दृश्य ने आनंद के आवेग से उत्पन्न उसके हृदय की भक्तिमयी तंत्रियों को झकझोर दिया। भक्तिमय मनोभावों द्वारा अनुभव किया गया उत्साह कभी-कभी शारीरिक लक्षणों हाव-भावों में प्रदर्शित होता है।

तो अर्जुन आश्चर्यचकित रह गया, इसलिए नहीं कि वह कोई नई चीज़ देख रहा है। लेकिन उस के पास एक सामान्य चीज़ के प्रति एक नया दृष्टिकोण है। यह कोई असाधारण दृश्य नहीं है; लेकिन यह उपलब्ध सामान्य शब्द के प्रति एक असाधारण रवैया है और इस

दृष्टिकोण परिवर्तन के कारण वह आश्चर्यचकित (विस्मयविष्ठः) था और यह आश्चर्य इतना तीव्र और गहरा था कि वह भौतिक स्तर पर भी व्यक्त होने लगा। क्योंकि अत्यधिक भावनाएँ भौतिक शरीर में प्रवाहित होती हैं, क्योंकि मन और शरीर का संबंध है।

भक्तिग्रंथों में ऐसे आठ लक्षणों या 'अष्ट सात्विक भाव' का वर्णन किया गया है जो कभी-कभी भक्तों में प्रकट होते हैं जब उनका हृदय भक्ति से रोमांचित हो जाता है।

स्तंभवेदो थ रोमांचः स्वरभेदो थ वेपतुः। वेवर्नयामश्रु प्रलया इत्यस्तु सात्विकः स्मृतः।।(भक्तिरसामृतसिंधु)

स्तंभवत् होना, स्वेद, स्वर भंग, कम्पन, विवर्णता, (भस्मवर्ण होना) अश्रुपात, और प्रलय (मूर्छा) ये सब शारीरिक लक्षण हैं जिनके द्वारा हृदय में कभी-कभी अगाध प्रेम प्रकट होता है। यही अर्जुन ने अनुभव किया था जिस से उसके शरीर के रोम कूप सिहरने लगे।

धनन्जय के अंतःकरण में जो कुछ भी द्वैत भाव अवशिष्ट था कि वह संसार मे अद्वितीय योद्धा है, उस का अंतःकरण अब द्रवित हो गया। उस को समझ मे आ रहा है कि परमात्मा के जिस अंश से पूरी सृष्टि व्याप्त है, वह उन का नगण्य सा अंश है। ऐसा अनन्त आश्चर्यमय दृश्यों से युक्त परम् प्रकाशमय तेजस्वी स्वरूप देखा जिसे वो बिना दिव्य दृष्टि के नहीं देख पा रहा था तो उस का हृदय आश्चर्ययुक्त और प्रफुल्लित हो कर रोमांचित हो गया। उस के रोम रोम उठ खड़े हो गए। वह पसीने से नहा गया और उस का कंठ आश्चर्य से अवरुद्ध हो गया। उस का शरीर आशंका एवम भय से कंपकंपाने लगा। उस की स्थिति उस मानव के समान हो गई जिसे प्रेम, श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप अनेपक्षित मिल गया, जिस से उस की आंखों से खुशी के आंसू झलक उठे। उस का अहम कि वह युद्ध मे अजेय है एवम स्वजन की हत्या नहीं कर सकता, टूट कर बिखर गया था। जिसे वह आजतक अपना सखा समझ रहा था वह तो साक्षात परमात्मा ही है। उस के पारस्परिक सम्बंध बदल गए एवम मित्र के न हो कर जीव एवम परमात्मा के हो गए। उस का मस्तक आनन्द एवम आश्चर्य के साथ श्रद्धा एवम विस्वास के कारण हरि के चरणों मे झुक गया एवम वह नीचे प्रणाम करता हुआ विन्रम भाव से श्रद्धा पूर्वक परमात्मा की स्तुति करने लग गया। अर्जुन के भाव को व्यक्त करने का सही शब्दो का चयन मुश्किल है, क्योंकि यह भाव प्रेम की पराकाष्ठा में प्राप्त प्रियतम के अचानक मिलने से अधिक गहन है।

जब किसी को नमन किया जाता है तो यह स्वीकरोति रहती है यह सब मेरा नही है और मै स्वीकार करता हूँ कि यह मुझे आप की अनुकंपा से प्राप्त है।

संजय द्वारा परमात्मा का दिव्य स्वरूप का वर्णन निश्चय ही प्रफुल्लित एवम हृदय में आनंद देने वाला है, यह व्यास जी है जिन की लेखनी ने अव्यक्त निर्गुणाकार को व्यक्त कर दिया एवम अर्जुन जैसे महान योद्धा के स्थान पर हम अवश्य ही यह महसूस करने लग गए होंगे कि किंचित हमारा यह भेद भाव एक मिथ्या भ्रम एवम अहम है कि यह विश्व एक अलग वस्तु है और हम इस से पृथक अन्य वस्तु है। हम सब उस परमात्मा के एक अंश से उत्पन्न सृष्टि के पात्र है जिस का कोई पृथक आस्तित्व नही। जब तक जीव का अन्तःकरण द्रवित हो कर आनंद में परिवर्तित नहीं होता, यह भेद भाव भी बना रहता है।

व्यवहार में किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व उस के चेहरे की आभा, बोलचाल, उस के पहरावे और व्यवहार से झलकती अवश्य है, किन्तु जब तक उस के पद, शिक्षा, उस के निर्णय लेने के अधिकारों को जानकारी न हो, हम उस अपना सहयोगी ही समझते है, परन्तु यदि पता चले जो हमारे साथ काम कर रहा है, वह ही हमारे उद्योग का संचालक है, तो हमारा व्यवहार, आश्चर्य, उस के प्रति अधिकार, अपनी महत्ता समाप्त हो जाती है और हम उस के प्रति समर्पित हो जाते है। फिर अर्जुन जैसे महान योद्धा के समझ परमात्मा का विराट स्वरूप आने से उस की स्थिति तो अत्यंत विकट थी।

भावावेश के कारण अर्जुन का कण्ठ अवरुद्ध हो गया था। अर्जुन विराट् रूप भगवान् की जिस विलक्षणता को देखकर चकित हुए एवम श्रद्धा के साथ नतमस्तक होकर और हाथ जोड़कर अर्जुन ने क्या कहा इस का वर्णन आगे के तीन श्लोकों में भगवान् की स्तुति में, आइए! हम सब भी उन के साथ परमात्मा की स्तुति करते हुए पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.14।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.15॥

अर्जुन उवाच
पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥

"arjuna uvāca,
paśyāmi devāṁs tava deva dehe,
sarvāṁs tathā bhūta- viśeṣa- saṅghān..।
brahmāṇam īśaṁ kamalāsana- stham,
ṛṣīṁś ca sarvān uragāṁś ca divyān"..।।

भावार्थ:

अर्जुन ने कहा - हे भगवान श्रीकृष्ण! मैं आपके शरीर में समस्त देवताओं को तथा अनेकों विशेष प्राणीयों को एक साथ देख रहा हूँ, और कमल के आसन पर स्थित ब्रह्मा जी को, शिव जी को, समस्त ऋषियों को और दिव्य सर्पों को भी देख रहा हूँ। (१५)

Meaning:

Arjuna said:

O Lord, I see deities as well as special classes of beings in your body. Brahma, the lord, seated upon a lotus, and all the sages and divine serpents.

Explanation:

Whenever our emotions are running high, we either keep quiet or speak non- stop. Arjuna now comes out of his silence and speaks at a fast pace to describe what he sees in front of him. The meter of this shloka has changed to indicate the change in pace. Traditionally, these shlokas are also chanted at a slightly faster speed to get their full flavour. So what does Arjuna see?

Arjuna says that he sees all kinds of deities and other kinds of beings, which include Lord Brahma seated upon a lotus, as well as the divine sages and divine serpents. The sages include the sapta- rishis such as Vashishtha and the serpents include Vasuki. We had come across these and other beings in the prior chapter when Ishvara himself described his divine manifestations. But Arjuna does not see all of these in different places. He sees them all situated on Ishvara's cosmic form.

What does this indicate? The sages live on earth, the deities live in a higher plane, and serpents live in yet another plane. Arjuna realizes that he is seeing worlds that beyond the earth and beyond the human capacity of

vision. He also saw Lord Brahma who, according to Srimad Bhagavatam, arose out the navel of Lord Vishnu and created all the worlds.

So, Arjuna in the cosmic form, saw the creator and his creation. More importantly, he realized that Ishvara was beyond the process creation, which he had learned in the eighth chapter.

So, when Arjuna experiences the Viśva rūpa, he goes through several emotional faces; his responses are different; and we find three stages in Arjuna's response to Viśva rūpa. The first and foremost reaction or response is vismayaḥ or ascaryam; in fact the world is an ascaryam if you learn to objectively appreciate the world; the world loses its ascaryathvam, the moment you look at the world from your own private standpoint and this private vision is in the śāstra as jīva driṣṭi; subjective coloured vision; And the jīva sriṣṭi alone expresses in the form of rāga and dvēṣa; kāma and krōdhaḥ; ahamkāra and mamakāra; And therefore world can never give you wonderment. It can never give you the sense that Arjuna is getting now; Since Krishna has removed the obstacle from Arjuna's mind, Arjuna is no more is in jīva sriṣṭi; he is in the public Īśvara's world, which is wonderful.

Let us understand the other stages of vision of Arjun in coming shloks.

Footnotes

1. "Eesham" could also mean Lord Shiva. This indicates that Arjuna saw both creation and dissolution in the cosmic form.

।। हिंदी समीक्षा ।।

परमात्मा द्वारा दिव्य दृष्टि से परमात्मा की चकचौध रोशनी में अर्जुन ने सम्पूर्ण ब्रह्मांड के दर्शन किये इसी को वह प्रार्थना करते हुए नतमस्तक हो कर कहते है। जब व्यक्ति अनन्त आश्चर्यमय दृश्यों को देखता जो उस की कल्पना से भी परे हो, वो ही उस के ह्रदय के उदगार बन कर प्रकट होते हैं। कभी आप ने ऐसी मूवी देखी जिसे देख कर आप को आश्चर्य

मिश्रित प्रसन्नता होती है तो आप मूवी की उन बातों को बताना शुरू कर देते है जिस ने आप के आश्चर्य को छुआ है। अर्जुन कहते है-

आप की कृपा दृष्टि से जो मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई उस से अर्थात भगवद कृपा के बिना कुछ भी प्राप्य नही, यह अपना आभार प्रदर्शन के साथ, मुझे आप के शरीर मे सम्पूर्ण 33 कोटि देवी देवताओं एवम अण्डज, पिण्डज आदि से विभिन्न प्रकार के 84 लाख योनियों का प्राणी समुदाय दिख रहा है। मै भगवान विष्णु की नाभि से निकले हुए कमल पर विराजित सृष्टि रचियता ब्रह्मा को देख रहा हूँ एवम शेषनाग शैया पर विराजित विष्णु रूप में आप को देख रहा हूँ। मै भगवान् शंकर को उन के कैलास पर्वत को और कैलास पर्वत पर स्थित उनके निवासस्थान वटवृक्ष को भी देख रहा हूँ। मुझे पृथ्वी पर रहनेवाले जितने भी ऋषि हैं तथा पाताल लोक में रहने वाले दिव्य सर्प सब दिख रहे है। परमात्मा काल से परे है इसलिये सब वर्तमान स्वरूप में ही दिख रहा था।

इस श्लोक में अर्जुन के कथन से यह सिद्ध होता है कि उन्हें स्वर्ग, मृत्यु और पाताल - यह त्रिलोकी अलग अलग नहीं दिख रही है किन्तु विभाग सहित एक साथ एक जगह ही दिख रही है। यह सृष्टि एवम ब्रह्मांड अर्जुन किसी एक स्थान पर नही, जहां भी उन की नजर जाती थी, दिख रहा था।

इसलिए जब अर्जुन विश्व रूप का अनुभव करता है, तो वह कई भावनात्मक चेहरों से गुजरता है। उसकी प्रतिक्रियाएँ भिन्न हैं और हम विश्व रूप के प्रति अर्जुन की प्रतिक्रिया में तीन चरण पाते हैं। पहली और सब से महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया आश्चर्य या विस्मय है। वास्तव में दुनिया एक अचरज है यदि आप दुनिया की निष्पक्ष रूप से सराहना करना सीख जाते हैं। जिस क्षण आप दुनिया को अपने निजी दृष्टिकोण से देखते हैं, दुनिया अपना अचर्यत्व खो देती है और यह निजी दृष्टि शास्त्र में जीव दृष्टि के रूप में है। व्यक्तिपरक रंगीन दृष्टि और जीव सृष्टि ही राग और द्वेष के रूप में अभिव्यक्त होती है, काम और क्रोधः, अहंकार, ममकार और इसलिए संसार तुम्हें कभी आश्चर्य नहीं दे सकता। यह तुम्हें कभी वह बोध नहीं दे सकता जो अर्जुन को अब मिल रहा है; चूँकि कृष्ण ने अर्जुन के मन से बाधा हटा दी है, अर्जुन अब जीव सृष्टि में नहीं है; वह सार्वजनिक ईश्वर की दुनिया में है, जो अद्भुत है।

अर्जुन जो विराट विश्व रूप दर्शन देख रहा है, उस के समक्ष जो शरीर जिस में वह यह सब देख रहा है, परब्रह्म का स्वरूप है। यह विराट स्वरूप का शरीर सारथी कृष्ण का मानवीय

स्वरूप नहीं है और ब्रह्मांड दर्शन में ब्रह्मा, ऋषियों या देवताओं का देख पाना, दिव्यदृष्टि है क्योंकि ब्रह्मांड में पृथ्वी का ही अस्तित्व ही आकाश में एक बिंदु से कम है। इसलिए जीव के संस्कार और दृष्टि जिस में राग और द्वेष नहीं रहे तो वह उन सब वस्तुओ को देख सकता है, जो कालातीत है।

इस विश्वरूप में ब्रह्माजी से लेकर सर्पों तक को प्रतिनिधित्व मिला है। वेदान्त का सिद्धान्त है कि जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है अथवा व्यष्टि ही समष्टि है। विश्व के महान् तत्त्वचिन्तकों ने इसी का वर्णन किया और अनुभव भी किया है। परन्तु इस के पूर्व किसी ने भी इस दार्शनिक सिद्धान्त का स्पष्ट एवं वस्तुनिष्ट प्रदर्शन नहीं किया था। इस कला के अग्रणी व्यासजी थे और अब तक इस कठिन कार्य में उन का अनुकरण करने का साहस किसी को नहीं हुआ है। अर्जुन अब ऐसे रूप का वर्णन करता है जिसके विवरण से अत्यन्त साहसी पुरुष को भी अपना साहस खोते हुए अनुभव होगा और जिसे हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.15।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.16॥
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रंपश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिंपश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥

"aneka- bāhūdara- vaktra- netraṁ,
paśyāmi tvāṁ sarvato 'nanta- rūpam..।
nāntaṁ na madhyaṁ na punas tavādiṁ,
paśyāmi viśveśvara viśva- rūpa"..।।

भावार्थ:

हे विश्वेश्वर! मैं आपके शरीर में अनेकों हाथ, पेट, मुख और आँखें तथा चारों ओर से असंख्य रूपों को देख रहा हूँ, हे विश्वरूप! न तो मैं आपका अन्त, न मध्य और न आदि को ही देख पा रहा हूँ। (१६)

Meaning:

I see you with numerous hands, bellies, mouths and eyes, with infinite forms from all sides. I see no end, middle and beginning of you, O lord of the universe, O cosmic form.

Explanation:

Arjuna, in his hasty speech, fleshes out the detailed imagery of Ishvara's cosmic form. He now sees an infinite number of forms, but his mind cannot in any way comprehend or point out what is being seen. It is only able to process parts of this image - hands, mouths, eyes and so on, but is not able to make sense of the whole picture. The fable of the blind men who could only touch parts of the elephant comes to mind here. One blind man thought that the trunk was a rope, the ear was a sieve and so on, but they did not realize that they were touching an elephant.

When Arjuna could not figure out how the various eyes, hands, bellies and mouth fit together, he tried to see whether the entire cosmic form had a shape or an outline to it. As a warrior, he was trained to look at a gigantic military formation and make sense of it based on its shapre. But his mind failed there as well. He was not able to locate where that cosmic form began, where its middle was, and where it ended. All our mental functions are useless when we cannot distinguish one thing from another.

We may be tempted to visualize the cosmic form based on some artistic rendition of this shloka that we would have seen in our childhood, especially when we were growing up in India. Most paintings of this shloka show Shri Krishna as a tall entity with many arms, legs and faces but we can still see the battlefield where he is standing on. However, Arjuna was completely engulfed and surrounded by this cosmic form in all three dimensions, “from all sides” as the shloka reads. It is impossible for a human to visualize and capture it accurately in a painting.

Another viewpoint, Viśva rūpa darśanam is not an extra ordinary vision; but doan extra ordinary attitude towards the ordinary things of the creation. So what does it mean? Do not imagine one Lord standing and eyes all over the body: mouth all over the body (how will it be) stomach all over; it is not, the idea is what: all the hands of all the people; all the stomachs of all the people; all the mouth of all the people; they are all Viśva rūpa Īśvarasya aṅgāni; it is that attitudinal change that is to be.

And therefore, only ānanda rūpam; so Oh Lord you have limitless forms. Each one is Viśva rūpa Īśvaraḥ; ānanda rūpam; eyes are different; earlobes are different. I do not the middle, end or the beginning. Because the beginning middle or end or the beginning middle and end of the cosmos. Scientists have not yet found the edge of cosmos; still they are struggling. since we have not seen outer periphery of the cosmos

Through this shloka, Shri Krishna reveals the limitations of the mind with its tendency to chop up everything into fragments. It fails to understand Ishvara's mind which is operating at the cosmic level. Our thoughts are limited to what we consider "me" and "mine", but Ishvara's thoughts take the entire universe into account. Furthermore, it also indicates that all names and forms arise from Ishvara and merge back into Ishvara.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन के द्वारा विराट विश्वरूप के 33 कोटि देवताओ के वर्णन के बाद, पुनः अर्जुन के द्वारा भी क्या क्या देखा गया, इसे अर्जुन प्रार्थना करते हुए कहते है, हे विश्वेश्वर विश्वरूप!, जिस का अर्थ है ब्रह्मांड के नियामक और सार्वभौमिक रूप होता है। आप की ओर मै जहाँ भी देखता हूँ तो मुझे अनेक भुजाएं, उदर, मुख एवम नेत्र दिखाई दे रहे है। आप चहूँ ओर इस प्रकार से अनन्त रूप में फैले हुए है कि मुझे आप के पृथक पृथक अनगिनत स्वरूप देख रहा हूँ। ब्रह्मांड में आप की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त कुछ भी नही है। मुझे आप का आदि, मध्य एवम अंत भी नही दिखाई दे रहा। अतः यह स्वरूप आप का किस सीमा तक फैला हुआ है, मै यह भी जानने में असमर्थ हूँ। मुझे लगता है मै आप के विश्वरूप का दर्शन कर

रहा हूँ। आप की इस महामूर्ति मे ही भिन्न भिन्न समस्त मूर्तिया प्रतिबिम्बत है। जैसे भूत मात्र से भरा हुआ भूमंडल दिखाई देता है अथवा नक्षत्रों से भरा हुआ आकाश होता है वैसे ही असंख्य रूपो से भरा आप का स्वरूप दिखाई देता है, जिन में मूर्तियां में से एक एक मूर्ति के अंगों से तीनों लोक उत्पन्न एवम विलीन होते हैं। आप देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, पदार्थ आदिके रूप में चारों तरफ अनन्त ही अनन्त दिखायी दे रहे हैं।

पूर्व के श्लोक में जो कुछ अर्जुन देख रहा था, उस से यह चित्रण भिन्न हो रहा है, क्योंकि विराट स्वरूप काल के परे और मायिक है, परमात्मा अनन्त है, इसलिये उस के अनन्त स्वरूप भी स्थिर चित्रण न हो कर, विभिन्न स्वरूपो में प्रकट हो रहा है।

अर्जुन की मानसिक स्थिति उस वक्त इस भव्य विराट स्वरूप का कोई क्षोर देखने की थी। वह परमात्मा से रिक्त कोई स्थान देख रहा था, परन्तु जब उसे कोई भी रिक्त या कोई ऐसा स्थान नही देखने को मिला जिस से वह परमात्मा के स्वरूप का अन्वेषण कर सके। प्रत्येक स्थान एक समान सम्पूर्ण सृष्टि को समेटे हजारो सूर्य की चमक में दमक रहा था। इस से उस की व्याकुलता भी बढ़ रही थी।

हम जिस रूप में परमात्मा की कल्पना करते है, वह सौम्य चतुर्भुज स्वरूप में विष्णु है, किन्तु अर्जुन के सामने प्रकट स्वरूप में वह दिख भी रहा है और नही भी। चारो और मुख, हाथ, पाँव, पेट, पीठ, वस्त्र, अंगरखे धारण किया हुआ शरीर नजर आता है जो विभिन्न मुद्रा धारण किये है और जिस का आदि, मध्य और अंत का पता ही नही चल रहा। वास्तव में परमात्मा के उस स्वरूप का चित्रण करना भी असंभव है। किंतु महृषि व्यास जी ने उस के स्वरूप का चित्रण कर दिया है। यह बुद्धि या नेत्र से गाह्य नही हो पा रहा, किन्तु अर्जुन दिव्य दृष्टि से युक्त होने से देख पाने में सक्षम हो रहा था।

विश्वरूप के अनन्त वैभव को एक ही दृष्टिक्षेप में देख पाने के लिए मानव की परिच्छिन्न बुद्धि उपयुक्त साधन नहीं है। इस रूप के परिमाण की विशालता और उसके गूढ़ अभिप्राय से ही मनुष्य की, बुद्धि निश्चय ही, लड़खड़ाकर रह जाती है। भगवान् ही वह एकमेव सत्य तत्त्व हैं जो सभी प्राणियों की कर्मेन्द्रियों के पीछे चैतन्य रूप से विद्यमान हैं। विराट् पुरुष का वर्णन इससे और अधिक अच्छे प्रकार से नहीं किया जा सकता था। उपर्युक्त ये श्लोक सभी परिच्छिन्न वस्तुओं के और मरणशील प्राणियों में सूत्र रूप से व्याप्त उस एकत्व का दर्शन कराते हैं, जिसने उन्हें इस विश्वरूपी माला के रूप मे धारण किया हुआ है।

अन्य वर्णन में इस को जिस भाव में व्यक्त किया गया है, उस में विश्व रूप दर्शन कोई असाधारण दर्शन नहीं है, लेकिन सृष्टि की सामान्य चीज़ों के प्रति असाधारण रवैया अपनाएँ। तो इसका क्या अर्थ है? यह कल्पना न करें कि एक ही भगवान खड़ा है और उस की आँखें पूरे शरीर पर हैं; पूरे शरीर पर मुँह (कैसे) क्या यह होगा? पूरा पेट, यह नहीं है, विचार यह है कि सभी लोगों के सभी हाथ, सभी लोगों के पेट, सब लोगों के मुख से, मिलकर सभी विश्व रूप ईश्वर स्वरूप हैं। यह वह व्यवहारिक परिवर्तन है जो होना है।

इसलिए यह केवल ईश्वर का आनंद रूपम ही तो है, प्रभु, संसार का प्रत्येक जीव ही आप के अनंत रूप हैं। हर एक जीव में विश्व रूप ईश्वर है, आनंद रूपम है, आंखें अलग हैं, मुख अलग हैं। इसी कारण मैं मध्य, अंत या आरंभ नहीं देख पा रहा हूं। क्योंकि ब्रह्माण्ड का आदि मध्य या अंत या आरंभ मध्य और अंत कैसे मिले जबकि वैज्ञानिकों को अभी तक ब्रह्मांड के घेरे का किनारा तक नहीं मिला है। फिर भी वे संघर्ष कर रहे हैं, चूंकि हमने ब्रह्मांड की बाहरी परिधि नहीं देखी है।

अनेक चित्रकार इस विराट स्वरूप को अपनी तूलिका से सचित्र करने का प्रयत्न करते है, किन्तु इस का वर्णन ही बताता है कि जिस का न आदि है, न मध्य है और न ही अंत है वो चित्रपट पट सचित्र हो ही नही सकता, उसे दिव्य नेत्रों से या बुद्धि गाह्य हो कर ह्रदय में महसूस कर सकते है। अर्जुन प्रार्थना स्वरूप जो कुछ विराट स्वरूप में देख रहे है, उसी को वर्णित करते हुए आगे क्या कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।।11.16।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.17॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥

'kirīṭinaṁ gadinaṁ cakriṇaṁ ca,
tejo-rāśiṁ sarvato dīptimantam..।
paśyāmi tvāṁ durnirīkṣyaṁ samantād,
dīptānalārka-dyutim aprameyam"..।।

भावार्थ:

मैं आपको चारों ओर से मुकुट पहने हुए, गदा धारण किये हुए और चक्र सहित अपार तेज से प्रकाशित देख रहा हूँ, और आपके रूप को सभी ओर से अग्नि के समान जलता हुआ, सूर्य के समान चकाचौंध करने वाले प्रकाश को कठिनता से देख पा रहा हूँ। (१७)

Meaning:

I see you with a crown, mace and discus, glowing with an abundance of brilliance everywhere. The blazing fire of sunlight from all sides makes you incomprehensible, difficult to perceive.

Explanation:

As he saw more aspects of the cosmic form, Arjuna realized that he could also see divinity in that form, not just the material world. The mace and discuss that he saw are weapons of Lord Vishnu. They symbolize spiritual discipline and the destructive power of time, respectively. Another symbol of Lord Vishnu is the conch, which symbolizes a call to action and a rebuke against lethargy. Arjuna also sees a crown because Ishvara is the ultimate commander and does not move under the control of any selfish desires.

Physical eyes get blinded upon seeing something very bright. The cosmic form before Arjun had a brilliance that exceeded thousands of blazing suns. As the sun dazzles the eyes, the universal form was immensely stunning to the eyes. He was able to behold it only because he had received divine eyes from the Lord.

He is standing in kurukshetra, the land in which both side several kings and army commondos are standing with weapons and wearing thrown. It is weakness of human, that he always look cosmos image of GOD according to his thoughts, circumstances and attachment, else in vishwarup has no specific site to see.

Within the universal form, Arjun also perceived the four-armed Vishnu form of the Lord, with the four famous emblems–mace, conch, disc, and lotus flower.

“The blazing fire of sunlight”, “abundance of brilliance everywhere” - these poetic phrases convey the light of the eternal essence that Arjuna saw in the cosmic form. It is the same eternal essence that resides within all of us but is covered with a layer of avidya or ignorance. As we have seen earlier, the eternal essence inside us enables our mind, intellect, senses and body to function. Ishvara, the purest embodiment of the eternal essence, shines like an infinite number of suns, without anything to obstruct its brilliance.

Now, no matter how hard he tried, Arjuna was not able to accurately capture his experience in words. This is because the eternal experience is not an object that can be perceived with the senses and described by our mind and intellect. He admits this limitation of his mind by declaring that the cosmic form is “aprameyam”, it is incomprehensible.

।। हिंदी समीक्षा ।।

विश्वरूप का और अधिक वर्णन करते हुये अर्जुन बता रहे है कि उस अचिन्त्य अग्राह्य दिव्य रूप में अद्‌वितीय प्रकाश युक्त वहाँ मुकुट धारण किए शंख चक्र गदाधारी भगवान् विष्णु को देख रहे है। परमात्मा का यह शुभ्रतम चतुर्भुज स्वरूप कृष्ण के रूप में विष्णु इस रूप से भिन्न सारथी बन कर घोड़े की लगाम थामे थे। हिन्दू शास्त्रों में देवताओं को कूछ विशेष शस्त्रास्त्रयुक्त या चिह्नयुक्त बताया गया है जिनका विशेष अर्थ भी है। ये विशेष पदक जगत् पर उनके शासकत्व एवं प्रभुत्व को दर्शाने वाले हैं। जो व्यक्ति बाह्य परिस्थितियों का स्वामी तथा मन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का शासक है, वही वास्तव में, प्रभु या ईश्वर कहलाने योग्य होता है।

विश्वरूप में किरीट, गदा, चक्र धारण किये यह स्वरूप चारो ओर अनेक किरीट, गदा और चक्र धारियों के रूप में इस प्रकार फैला था, जिस का न आदि, न अंत और न ही मध्य ज्ञात हो रहा था। वहॉ का प्रकाश इतना अधिक था कि दिव्य दृष्टि होने के बावजूद भी किसी भी दृश्य पर स्थिर भाव से देख भी नही पा रहा है।

जीव प्रकृति से बंध है, अर्जुन युद्ध भूमि में खड़े है इसलिए जब निराकार स्वरूप में परब्रह्म के विश्व रूप में देखने की बात है तो उसे अनेक राजा और सैनिक जो युद्ध में अस्त्र और शस्त्र से सुसज्जित और अपने अपने मुकुट धारण किए है, वे ही विश्वरूप में उसे दिख रहे है। जीव का भाव, संस्कार, ज्ञान और अनुभव के साथ साथ भय, आशंका और कोतुहल ही उस के लिए विश्वरूप में परिणित हो कर दिखता है क्योंकि उस को अपने अनिश्चित भविष्य के प्रति हमेशा ही अनिर्णीत शंका और भय रहता ही है। इसलिए अर्जुन अपने भावों और दृश्य को देखते हुए, अपने भाव भी व्यक्त नही कर पा रहे है।

जो व्यक्ति अपने मन का और बाह्य आकर्षणों का दास बना होता है, वह दुर्बल है यदि वह राजमुकुट भी धारण किये हुये है तब भी उसका राजत्व भी उतना ही अनित्य है जितना कि रंगमंच पर बनावटी मुकुट धारण कर राजा की भूमिका कर रहे अभिनेता का होता है।

सत्तारूढ़ पुरुष को इन्द्रिय संयम और मनसंयम के बिना वास्तविक अधिकार या प्रभावशीलता प्राप्त नहीं हो सकती। निम्न स्तर की कामुक प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त कर अपने मन रूपी राज्य पर स्वयं ही स्वयं का राजतिलक किये बिना कोई भी व्यक्ति सुखी और शक्तिशाली जीवन नहीं जी सकता। संयमी पुरुष ही विष्णु है और वही राजमुकुट का अधिकारी है। इसलिये कृष्ण ही विष्णु है।

चतुर्भुज विष्णु अपने हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म (कमल) धारण किये रहते हैं। यह एक सांकेतिक रूपक है। भारत में कमल पुष्प शान्ति, आनन्द, शुभ और सुख का प्रतीक है। शंखनाद मनुष्य को अपने कर्तव्य के लिये आह्वान करता है। यदि मनुष्यों की कोई पीढ़ी अपने हृदय के इस उच्च आह्वान को नहीं सुनती है, तब सर्वत्र अशान्ति, युद्ध, महामारी, अकाल, तूफान और साम्प्रादायिक विद्वेष तथा सामाजिक दुर्व्यवस्था फैल जाती है। यही उस पीढ़ी पर गदा का आघात है जो उसे सुव्यवस्थित और अनुशासित करने के लिए उस पर किया जाता है। यदि कोई ऐसी पीढ़ी हो, जो इतना दण्ड पाकर भी उससे कोई पाठ नहीं सीखती है, तो फिर उसके लिए आता है चक्र कालचक्र जो सुधार के अयोग्य उस पीढ़ी को नष्ट कर देता है। आज के युग मे यह प्रतीक सार्थक ही सिद्ध हो रहा है।

अर्जुन द्वारा किये गये वर्णन से ज्ञात होता है कि एक ही परम सत्य ब्रह्मादि से पिपीलिका तक के लिए अधिष्ठान है। वह सत्य सदा सर्वत्र एक ही है केवल उसकी अभिव्यक्ति ही विविध प्रकार की है। उसकी दिव्यता की अभिव्यक्ति में तारतम्य का कारण विभिन्न स्थूल और सूक्ष्म उपाधियां हैं जिनके माध्यम से वह सत्य व्यक्त होता है। यह विश्वरूप सब ओर

से अत्यंत प्रकाशमान तेज का पुञ्ज, प्रदीप्त अग्नि और सूर्य के समान ज्योतिर्मय और देखने में अति कठिन है।

इस श्लोक में किये गये वर्णन में यह पंक्ति सर्वाधिक अभिव्यंजक है जो हमें शुद्ध चैतन्यस्वरूप पुरुष का स्पष्ट बोध कराती है। इसे भौतिक प्रकाश नहीं समझना चाहिये। यद्यपि लौकिक भाषा से यह शब्द लिया गया है, तथापि उसका प्रयोग साभिप्राय है। चैतन्य ही वह प्रकाश है, जिसमें हम अपने मन की भावनाओं और बुद्धि के विचारों को स्पष्ट देखते हैं। यही चैतन्य, चक्षु और श्रोत्र के द्वारा क्रमश रूप वर्ण और शब्द को प्रकाशित करता है। इसलिए स्वाभाविक ही है कि अनन्त चैतन्यस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के विश्वरूप का वर्णन, अर्जुन को लड़खड़ाती भाषा में इसी प्रकार करना पड़ा कि वह विश्वरूप तेजपुञ्ज है, जो इन्द्रिय, मन और बुद्धि को अन्ध बना दे रहा है अर्थात् ये उपाधियां उसका ग्रहण नहीं कर पा रहीं हैं।

अप्रमेय (अज्ञेय) यद्यपि अब तक अर्जुन ने अपनी ओर से सर्वसंभव प्रयत्न करके विराट् स्वरूप का तथा उसके दर्शन से उत्पन्न हुई मन की भावनाओं का वर्णन किया है, परन्तु इन समस्त श्लोकों में निराशा की एक क्षीण धारा प्रवाहित हो रही प्रतीत होती है। अर्जुन यह अनुभव करता है कि वह विषयवस्तु की पूर्णता को भाषा की मर्यादा में व्यक्त नहीं कर पाया है। भाषा केवल उस वस्तु का वर्णन कर सकती है, जो इन्द्रियों द्वारा देखी गयी हो या मन के द्वारा अनुभूत हो अथवा बुद्धि से समझी गयी हो। यहाँ अर्जुन के समक्ष ऐसा दृश्य उपस्थित है, जिसे वह अनुभव कर रहा है, देख रहा है और स्वयं बुद्धि से समझ पा रहा है और फिर भी कैसा विचित्र अनुभव है कि जब वह उसे भाषा की बोतल में बन्द करने का प्रयत्न करता है तो वह मानो वाष्परूप में उड़ जाता है अर्जुन, इन्द्रियगोचर वस्तुओं के अनुभव की तथा भावनाओं की भाषा में वर्णन करने का प्रयत्न करता है, किन्तु उस वर्णन से स्वयं ही सन्तुष्ट नहीं होता है। यहाँ एक बड़े आश्चर्यकी बात है कि भगवान् ने अर्जुन को दिव्यदृष्टि दी थी पर वे दिव्य दृष्टि वाले अर्जुन भी विश्वरूप को देखने में पूरे समर्थ नहीं हो रहे हैं ऐसा देदीप्यमान भगवान् का स्वरूप है। आप सब तरफ से अप्रमेय (अपरिमित) हैं अर्थात् आप प्रमा(माप) के विषय नहीं है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि आदि कोई भी प्रमाण आपको बताने में काम नहीं करता क्योंकि प्रमाणों में शक्ति आप की ही है। आश्चर्यचकित मानव उस वैभव का गान अपनी बुद्धि की भाषा में करने का प्रयत्न कर रहा है। परन्तु यहाँ भी केवल निराश होकर यही कह सकता है कि, हे प्रभो आप सर्वदा अप्रमेय हैं अज्ञेय है। यद्यपि कवि ने विराट् स्वरूप का चित्रण दृश्यरूप में किया है

तथापि वे हमें समझाना चाहते हैं कि सत्स्वरूप आत्मा, वास्तव में द्रष्टा है और वह बुद्धि का भी ज्ञेय विषय नहीं बन सकता है। आत्मा द्रष्टा और प्रमाता है, और न कि दृश्य और प्रमेय वस्तु।

अब आगे के श्लोक में अर्जुन भगवान् को निर्गुणनिराकार, सगुणनिराकार और सगुणसाकाररूप में देखते हुए भगवान् की स्तुति करते हुए क्या कहते पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.17।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.18॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यंत्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥

"tvam akṣaraṁ paramaṁ veditavyaṁ,
tvam asya viśvasya paraṁ nidhānam..।
tvam avyayaḥ śāśvata- dharma- goptā,
sanātanas tvaṁ puruṣo mato me"..।।

भावार्थ:

हे भगवन! आप ही जानने योग्य परब्रह्म परमात्मा हैं, आप ही इस जगत के परम- आधार हैं, आप ही अविनाशी सनातन धर्म के पालक हैं और मेरी समझ से आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं। (१८)

Meaning:

You are the imperishable, supreme (being) to be known. You are the supreme foundation of this universe. You are indivisible, the protector of the eternal law. In my opinion, you are the indivisible person.

Explanation:

This shloka is a beautiful blend of upasaana (worship) and jnyaana (knowledge). Arjun announced that he recognized the sovereignty of Shree

Krishna's position as the Supreme Lord, who is the support of all creation, and who is to be known through all the scriptures.

Arjuna praises Ishvara's cosmic form, and also reveals his understanding of the relationship between Ishvara and the eternal essence. It is similar to the relationship between the ocean and water that we have seen several times before.

The ocean is the foundation in which several waves are created, sustained, and destroyed. Each of those waves thinks that it is separate from the ocean and is also aware of its mortality. But the water in the ocean and the water in the wave is the same. It is indivisible, eternal, infinite and imperishable. All waves are subject to the universal laws of gravity - whatever goes up, must come down.

Similarly, Ishvara is the foundation which creates, sustains, and dissolves this universe of names and forms. Each being thinks that it is separate from Ishvara and is trapped in sorrow because of its finitude. It does not realize that it is the dweller or the Purusha, made up of the very same eternal essence that Ishvara is, like the ocean and the wave are made up of water. Also, all beings are subject to the universal law of karma, of actions generating results. Ishvara is praised as the protector of this law.

The Kaṭhopaniṣhad states: sarve vedā yat padamāmananti (1.2.15)[v2]

"The aim of all the Vedic mantras is to take us in the direction of God. He is the object of the study of the Vedas." The Śhrīmad Bhāgavatam states: vāsudeva-parā vedā vāsudeva-parā makhāḥ (1.2.28)[v3]

"The goal of cultivating Vedic knowledge is to reach God. All sacrifices are also meant for pleasing him." In his tribute to Shree Krishna, Arjun expressed his realization that the personal form of the Lord, standing

before him, was the same supreme absolute truth that is the object of all Vedic knowledge.

A question may come, how does Arjuna know nirguṇam Brahmā? Nirguṇam Brahmā, is in the learning process; for that what should know Arjuna does not know nirguṇam Brahmā but the nirguṇam description found in the Scriptures, he is rattling out. This is called parōkṣa jñānam; he has just like, we do; Sachidānandāya namaḥ; sachidānanda means what? that is not known; but we Sachidānandāya namaḥ, same daily; so nirguna, nishkala, nirapāya, nitya, so nirguṇa etc. Lalitha sahasranāma we chant. Therefore, without knowing the meaning we can use the expression. Similarly, Arjuna is using the expression, even though he is in the process of learning only tvam avyayaḥ.

The Gita repeatedly urges us to discard all sectarian notions we have of Ishvara. Next time, when we prostrate in front of Ishvara in the form of a deity, we should try to think of Ishvara in the form that is described here.

।। हिंदी समीक्षा ।।

सभी बुद्धिमान् पुरुष अपने प्रत्येक अनुभव से किसी निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं जो उनका ज्ञान कहलाता है। अर्जुन को भी ऐसा ही एक अनुभव हो रहा था जो अपनी सम्पूर्णता में बुद्धि से अग्राह्य और शब्दों से अनिर्वचनीय था। परन्तु उसने जो कुछ देखा एवम अभी तक सुना, उससे वह कुछ निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करता है। इस अनुभव को समझकर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इस विराट्स्वरूप के पीछे जो शक्ति या चैतन्य है, वही अविनाशी परम सत्य है।

अर्जुन ने कहा कि वह श्रीकृष्ण की संप्रभुता की स्थिति को परमप्रभु के रूप में स्वीकार करता है जो समस्त सृष्टि के आश्रय हैं और जो सभी शास्त्रों के माध्यम से जाने जाते हैं। **कठोपनिषद् में वर्णन किया गया है "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति (कठोपनिषद्-1.2.15)"**

सभी वैदिक मंत्रों का उद्वेश्य हमें भगवान की ओर सम्मुख करना है। वे सभी वेदों के अध्ययन का विषय हैं। श्रीमद्भागवतम् में वर्णन है। वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः (श्रीमद्भागवतम्-1.2.28)

'वैदिक ज्ञान' का उद्देश्य भगवान को पाना है। सभी प्रकार के यज्ञ और तपस्याएँ उन्हें प्रसन्न करने के लिए की जाती हैं। अर्जुन अपना अनुभव व्यक्त करते हुए कहता है कि उसके समक्ष खड़े भगवान का साकार रूप उस परमसत्य के समान है जो समस्त वैदिक ज्ञान का विषय है।

समुद्र में उत्पत्ति, स्थिति और लय को प्राप्त होने वाली समस्त तरंगो का प्रभव या स्रोत समुद्र होता है। वही उन तरंगों का निधान है। निधान का अर्थ है जिसमें वस्तुएं निहित हों अर्थात् उनका आश्रय। इसी प्रकार अर्जुन भी इस बुद्धिमत्तापूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचता है कि विराट् पुरुष ही सम्पूर्ण विश्व का निधान अर्थात् अधिष्ठान है। विश्व शब्द से केवल यह दृष्ट भौतिक जगत् ही नहीं समझना चाहिये। वेदान्त के अनुसार जो वस्तु दृष्ट अनुभूत या ज्ञात है, वह विश्व शब्द की परिभाषा में आती है, इस परिभाषा के अनुसार विषय तथा उनके ग्राहक करण इन्द्रिय, मन आदि सब विश्व है और पुरुष उसका निधान है। विकारी वस्तुओं के विकारों अर्थात् परिवर्तनों के लिए एक अविकारी अधिष्ठान की आवश्यकता होती है। यह परिवर्तनशील जगत् सदैव देश और काल की धुन पर नृत्य करता रहता है। परन्तु, घटनाओं की निरंतरता का अनुभव कर उनका एक सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक नित्य अपरिवर्तनशील ज्ञाता का होना अत्यावश्यक है। वह ज्ञाता किसी भी प्रकार से स्वयं उन घटनाओं में लिप्त नहीं होता है। ऐसा यह अविकारी चेतन तत्त्व ही वह सत्य आत्मा है, जो इतने विशाल विश्वरूप को धारण कर सकता है। इन विचारों को ध्यान में रखकर अर्जुन यह प्रार्थना करता है।

वेदों, शास्त्रों, पुराणों, स्मृतियों, सन्तों की वाणियों, मुण्डकोपनिषद में वर्णित और तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुषों द्वारा जानने योग्य जो परमानन्द स्वरूप अक्षरब्रह्म है, जिसको निर्गुण निराकार कहते हैं, वह परमतत्व स्वरूप सच्चिदानंदघन निर्गुण, निराकार, परब्रह्म आप ही हैं। देखने, सुनने और समझने में जो कुछ संसार आता है, उस संसार के परम आश्रय, आधार आप ही हैं। जब महाप्रलय होता है, तब सम्पूर्ण संसार कारण सहित आप में ही लीन होता है और फिर महासर्ग के आदि में आप से ही प्रकट होता है। इस तरह आप इस संसार के परम निधान हैं।

जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब आप ही अवतार लेकर अधर्म का नाश कर के शाश्वत सनातन धर्म की रक्षा करते हैं। अव्यय अर्थात् अविनाशी, सनातन, आदिरहित, सदा रहने वाले एवम चारो वेदो में जो पुरुष सूक्त है, वह उत्तम पुरुष आप ही हैं, ऐसा मैं मानता हूँ।

मानवीय कमजोरी से उस के शक्तिशाली होने का प्रमाण है कि वह जो कुछ देखता, सुनता या मनन या चिंतन करता है उसे अपनी भाषा मे व्यक्त करता है। उस की यह अभिव्यक्ति ही उस की मानसिक स्थिति की द्योतक है, अर्जुन ने अभी तक कर्मयोग, सांख्य योग, ध्यान योग, भक्ति योग में परमात्मा के विषय मे सुना, उन की विभूतियो को जाना, वह सब साक्षात हो कर निर्गुणाकार स्वरूप मायविक रूप में सामने दिव्य दृष्टि से उसे दिख रहा था। वह उस स्वरूप को देख कर संतुष्ट तो था ही, किन्तु उसे यह भी लगता था कि प्रकट स्वरूप उस निर्गुणाकार की छाया मात्र ही है। इसलिये उस ने अपने मनोभाव को स्तुति के माध्यम से बहुत ही सुंदर तरीके से प्रस्तुत किया। व्यवहार में जब हम असन्तुष्ट न होते हुए भी संतुष्ट भी न हो, और मन मे अव्यक्त अपेक्षाएं या आकांक्षाएं हो, तो हमे अपनी बात उस व्यक्ति के समक्ष किस प्रकार रखनी चाहिये, जिस से उस की मर्यादा भी बनी रहे और हमारी अपेक्षाएं भी।

प्रश्न आ सकता है कि अर्जुन निर्गुण ब्रह्म को कैसे जानता है? वह अभी तो निर्गुणम ब्रह्म, सीखने की प्रक्रिया में है, इसके लिए हमें जानना चाहिए कि अर्जुन निर्गुणम को नहीं जानता है। लेकिन शास्त्रों में ब्रह्म का जो निर्गुण वर्णन मिलता है, वह ही अर्जुन प्रार्थना करते हुए, फटाफट बोलते जा रहा है। इसे परोक्ष ज्ञान कहा जाता है, उसके पास यह ज्ञान वैसा ही है, जैसा हमारे पास है; सच्चिदानंदाय नमः; सच्चिदानंद का मतलब क्या है? हमे ज्ञात नहीं है; लेकिन हम सच्चिदानंदाय नमः, बोलते हुए वही नित्य; सो निर्गुण, निष्कल, निरापाय, नित्य, सो निर्गुण आदि ललिता सहस्रनाम का जप करते हैं। अतः अर्थ जाने बिना भी हम इस शब्द का प्रयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार अर्जुन इस अभिव्यक्ति का उपयोग कर रहा है, भले ही वह केवल त्वम् अव्ययः सीखने की प्रक्रिया में है।

परमात्मा की अत्यंत सुंदर प्रार्थना करते हुए अब आगे के अर्जुन उस विश्वरूप की उग्रता, प्रभाव, सामर्थ्य का वर्णन करते हुए, क्या कहते है, हम पढ़ते है।

।।हरि ॐ तत सत।। 11.18।।

।। विश्वरूप दर्शन में हमारी अक्षमताएं ।। विशेष - गीता 11.18

एकादश अध्याय परमात्मा के विश्वरूप दर्शन का है, जिसे सब से पहले कृष्ण द्वारा बताया गया, दिव्य दृष्टि देने के बाद संजय ने अर्जुन जिस स्वरूप देख रहे है उसे बताया गया फिर अर्जुन के द्वारा प्रार्थना करते हुए बताया जा रहा है। इसे आगे भी अर्जुन -कृष्ण संवाद से भी पढ़ेंगे।

विश्वरूप का दर्शन युद्ध भूमि में किया गया है जिस में अर्जुन और धृतराष्ट्र दोनों ही मोह ग्रस्त है किंतु अर्जुन का मोह भंग होने की स्थिति में है जबकि धृतराष्ट्र अभी भी उसी स्थिति में है। अतः अर्जुन विश्वरूप में जो कुछ भी निराकार, अव्यक्त और सूक्ष्म ब्रह्म को देख रहा रहा है उस में युद्ध भूमि की प्रतिछाया भी है। अर्थात मानवीय कमजोरी में उस की संवेदना, भय, आश्चर्य, संदेह, भविष्य के प्रति अनिश्चितता का प्रभाव का निवारण हम ब्रह्म स्वरूप में पाना चाहते है इसलिए जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है और जिस में सौर मंडल एक बिंदु से अधिक नही, उस में मानवीय स्वरूप में किसी भी व्यक्ति को देख पाना भी संभव नहीं।

भय और आश्चर्य से जब आशंकित हो जाए तो पहला कार्य हम अपने को सुरक्षित करना चाहते है। जीव चाहे कितना भी नित्य हो, प्रकृति से उस का संबंध भी अत्यंत गहरा होता है। इसलिए जीव को अपने प्रकृति से प्राप्त देह से मोह होता ही है और इसलिए वह जिस से सुरक्षा चाहता है उस की स्तुति करने लगता है। यह स्तुति पारंपरिक और वेदों और शास्त्रों के ज्ञाता से हमे मिलती है किंतु उस का अर्थ हमे समझे या न समझे परंतु हम यही मानते है कि इस से देव प्रसन्न होते है। वास्तव में क्या ऐसा है यह किसी सामाजिक जीव को नहीं मालूम।

अपने को ज्ञानी और परमात्मा तक होने का दावा करने वाले बहुत लोग है, किंतु परमात्मा को समझ सकें और उस मूल्यों को धारण कर सकें, ऐसे लोग विरले ही किसी को मिलेंगे। इसलिए आज भी परमात्मा आप के समझ खड़े हो जाए, तो अनुसुए हो कर कौन उसे पहचान सकेगा। यही स्थिति अब अर्जुन की है कि परमात्मा को देखने की इच्छा करना और उस को देख कर समझ पाना, दोनों में बहुत अंतर है।

यह स्वरूप का वर्णन 55 श्लोक तक विभिन्न रूपो के वर्णन के साथ चलता रहेगा।

निर्गुणाकार परमात्मा का वर्णन करने की क्षमता यदि किसी मे थी वो व्यास जी ही थे। हम इस स्वरूप के अनेक चित्र भी देखते है किंतु जिस का न आदि है, न अंत है और न ही मध्य है उस स्वरूप को कौन चित्रकार अपने केनवास में उतार सकता है।

1.वाक् आदि 5 कर्मेन्द्रियाँ, 2. श्रवण आदि 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 3. प्राणादि 5 वायु, 4. आकाशादि 5 महाभूत, 5. बुद्धि आदि अन्त:करण चतुष्टय, 6. अविद्या, 7. काम और 8.कर्म-- ये आठ पुरियों (कुल 27 घटक) से सूक्ष्म शरीर बनता है। किन्तु हम इस पंच तत्व के शरीर को पहचान पाते है, इसलिये उस सूक्ष्म से सूक्ष्म परमात्मा अपने प्रकट स्वरूप में सामने आते है, तो भी हम उन्हें नही देख पाते।

परमात्मा प्राकृतिक नेत्रों से नही देखा जा सकता, उस के लिये दिव्य नेत्र हमारी ह्रदय से प्रार्थना बुद्धिग्राह्य होनी चाहिए। परमात्मा हमारे ह्रदय में बसता है।

अभी तक हम ने कर्मयोग, ज्ञान योग भक्तियोग पढ़ा। मेरा ऐसा मत है यदि आँख बंद कर के अभी तक के अध्ययन को ध्यान में रखते हुए यदि हम परमात्मा के इस विराट स्वरूप को अपने बुद्धि ग्राह्य नेत्रों से देखने की चेष्टा करे तो स्वरूप चाहे न दिखे किन्तु एक स्फुरण अवश्य ही हमे अंदर उत्पन्न होगा। यदि यह करंट है तो आप यह मान कर चलिए कि आप गीता अध्ययन में सही दिशा में जा रहे है।

यह चेष्टा इस अध्याय की समाप्ति तक निरंतर की जा सकती है। बस आप को स्वयं को अर्जुन की जगह महसूस करना है और भगवान श्री कृष्ण को सारथी की जगह। आप बस प्रार्थना करे एवम उन से उन के विराट रूप दर्शन की मंगल कामना करते जाए । परम् परमेश्वर को अपनी ताकत बनाइये।

मेरा निजी अनुभव यही है कि हिन्दू होने के नाते हमारे पास अपने शास्त्रो को पढ़ने का क्रमबद्ध कोई पाठ शाला नही है। जो कुछ भी ज्ञान हमे मिलता है, वह संस्कार, पारिवारिक मेलजोल, सत्संग, कीर्तन या प्रवचनों से मिलता है। आज के इलेक्ट्रॉनिक सोशल मीडिया ने यु ट्यूब आदि से इस कि उपलब्धि को सरल भी बना दिया है, किन्तु पहले हम जो पुस्तके का अध्ययन करते थे, उस की बजाए छोटे छोटे टुकड़ों में यह ज्ञान अधिक अपभ्रंश स्वरूप में सामने आ गया। आत्मज्ञानी एवम अहम के कारण हम ज्ञान को ग्रहण करने की अपेक्षा उस के प्रसार पर अधिक ध्यान देते है। चिंतन एवम मनन में शून्यता के अभाव ने विचारो का प्रवाह इतना अधिक होता है कि जो बात संस्कार को छू जाए, वही श्रेष्ठ लगती है। अर्जुन को

भगवान श्री कृष्ण अनुसुवये कह कर ज्ञान देते है किंतु वही ज्ञान हम अहम और राग- द्वेष से ग्रहण करते है।

हिन्दू होने के नाते यदि शास्त्रो के अध्ययन की बात की जाए तो शायद ही आज के समाज मे कोई व्यक्ति हो जिस ने किसी भी शास्त्र का गहन अध्ययन किया हो। उस सार तत्व को आत्मसात किया हो। अक्सर उस को रटने या धाराप्रवाह बोलने या मंत्र जाप मात्र को अध्ययन का नाम दिया गया है। इसलिये लाखो में कोई एक परमात्मा के दिव्यदर्शन का अधिकारी होता है।

अनुचित न लगे, फिर भी सोशल मीडिया में जिस प्रकार् धर्म या शास्त्र के क्लिप या लेख आते है, उन्हें अक्सर लोग बिना पढ़े, आगे भेज देते है। गलत होने से अपना पल्ला यह कह कर झाड़ लेते है कि मैंने सिर्फ फारवर्ड किया है, जांच नही की। जब तक दायित्व की भावना अपने अंदर न आये तो श्रद्धा, प्रेम, विश्वास भी नही आ सकता। मन एवम बुद्धि अध्याय 11 को फारवर्ड करने के अंदाज में पढ़ता जाएगा। दर्शन हो जाये, यह हम सोचेंगे ही नही, तो दर्शन होंगे भी नही। गीता जैसा शास्त्र पढ़ने के बाद भी चरित्र में, उस की भावनाओ में, उस के आचरण में परिवर्तन यदि कुछ आता भी है, यही मात्र की मैंने भी गीता का अध्ययन किया है, किन्तु मैं जो कर रहा हूँ वह व्यवहारिक है, जो गीता में लिखा है, वह आज के युग मे रह कर, समाज मे व्यवहारिक नही है। अविश्वास की यह रेखा शुरू से खिंचने से हम दर्शन की अपेक्षा भी कैसे रख सकते है।

हमारे गहन अध्ययन के लिये एकाग्रता की कमी के रहते अध्ययन भी समस्या दिखती है। प्रतिदिन की व्यवसायिक व्यस्तता में चरित्र निर्माण सांसारिक एवम व्यवसायिक होना चाहिये। सत्यवादी, दानी, धार्मिक या ज्ञानी होने की अपेक्षा उस का वैसा दिखना ज्यादा आवश्यक है। इसलिये हम ज्ञान लेते कम और बांटते ज्यादा है। कुछ भी बात जो मन को उचित लगे, तुरन्त बांटना शुरू कर देते है, चाहे वह शक्कर लगा झूठ की क्यों न हो। हमारा दायित्व उस के बांटने तक सीमित है। इसलिये भी विश्वरूप दर्शन हमे न हो कर सभी को हो जाये, हम गीता के ज्ञान को भी बांट रहे है।

मन्दिर, आश्रम एवम नियोजित यज्ञशाला एवम प्रवचन आज भी धर्म के संस्कार एवम रीतियों को जीवित किये हुए। इस मे चितंन एवम मनन की आहुति देनी भर है, यही गीता का अध्ययन है। यही विश्वरूप दर्शन है। यही कर्मयोग, सांख्य योग, ध्यान योग और भक्ति

योग। हम सब का कर्तव्य यही है कि हम सही दिशा में गीता का अध्ययन करें, इस का प्रसार करे।

Dr. सर्वपल्ली राधाकिशन मेनन जी ने अपनी पुस्तक गीता की मीमांसा में लिखा है कि हिन्दू धर्म मे ब्रह्मचर्य आदि धार्मिक मान्यताओं की इतनी अधिक अनिवार्यता कर दी है कि उस का पालन सदाहरण मनुष्य के लिये संभव नही। इसी प्रकार वर्ण व्यवस्था को कुरीतियों के रूप में उपयोग होने से हिन्दू धर्म रीति- रिवाजो, कर्म कांड एवम दिखावे के ज्यादा धर्म हो गया जिस से इसी में स्वार्थ में अंधे इसी धर्म के लोगो ने इसी धर्म को अधिक नुकसान पहुचाया है। सनातन धर्म हिन्दू धर्म मे परिवर्तित हो जाति, वर्ण व्यवस्था, ऊंच-नीच, छुआ छूत और सामाजिक कुरीतियों का शिकार होता चला गया। व्यवहार में गीता ही एक मात्र ग्रन्थ है जिस का वास्तविक अध्ययन स्पष्ट रूप से चिंतन की वास्तविकता को बताता भी है और गलत मान्यताओं का खंडन भी करता है। इस के इस का अध्ययन गहन चिंतन और मनन से होना चाहिए, किन्तु कितने लोग इसे उस रूप में अध्ययन करते है। उन के लिये गीता भी मंत्र पाठ का ही ग्रन्थ है।

इस विषय को अधिक आगे बढ़ाना, गीता के अध्ययन से बाहर ले जाना है। किन्तु यह अवश्य कहना चाहूंगा कि अत्यंत सहज भाव से अधिकतम लोग कह देते है कि मुझे यह पढ़ने में समझ मे नही आता। हमारी संस्कृति तो कमजोर हो रही है किंतु हमारी भाषा भी उतनी कमजोर हो रही है। सही शब्दो का चयन, उस का अर्थ एवम व्याख्या तक हम न तो पढ़ सकते है और न ही समझने के लिये तैयार है। हमारी संस्कृत भाषा को कितने लोग जानते है, जो विश्व की सर्वश्रेष्ठ भाषा है। फिर हिंदी तक का भी पूर्ण ज्ञान नही। जब पठन नही होगा तो चिंतन भी नही होगा। जब चिंतन नही होगा तो मनन भी नही होगा। जब चिंतन-मनन नही होगा तो विश्वरुप दर्शन भी मात्र पुस्तक में लिखी लकीरो सा रह जायेगा। अतः जो सहज में अज्ञान भाषा का है, वह सहज नही, हमारी सभ्यता और संस्कृति के विनाश की ओर ले जाने वाला मार्ग है। जिसे हम सब खीच कर ले जा रहे है, फिर भी ज्ञान की बाते पर बाते किये जाते है। विश्वरूप दर्शन की अभिलाषा का अर्थ ही यही है कि हमे आत्मज्ञानी होना। आचरण में, व्यवहार में, संस्कृति में, सभ्यता में और पठन के ज्ञान में। इसलिये सर्व प्रथम अपना विकास करे। अपने को विश्वरूप के दर्शन के योग्य बनाये। फिर समाजक दिशा निर्देश करे।

ईश्वर ने हमे अवसर दिया है, हमारे सामने साक्षात परब्रह्म निर्गुणाकार परमात्मा सगुण स्वरूप में हमे अपना वास्तविक स्वरूप से परिचित करवा रहा है। यही समय है हम एकाग्र चित्त हो कर उस परमात्मा का चिंतन करे। इस अध्याय में उसे ही देखे, उसे ही सुने और उस से ही प्रार्थना करे।

इस के लिये हमें सारथी स्वरूप परमात्मा की आवश्यकता है, जो हमे विजय दिला सकता है, जो हमारी आत्मा को शुद्ध-बुद्ध कर सकता है। आवश्यकता आत्मावलोकन की है। अध्याय प्रथम का विषाद में पड़ा अर्जुन अब तक परमात्मा के दर्शन कर के अपने विषाद से मुक्त हो कर परमात्मा की स्तुति कर रहा है। अध्याय 11 का पठन ही वह सारथी है। उस के अध्ययन से ही वह स्वरूप का दर्शन हो पायेगा। शर्त यही है कि अध्ययन को उसी भाव से पढ़ा जाए, जिस की अभिव्यक्ति महृषि व्यास जी ने अर्जुन के माध्यम से की है।

अतः हमें अपनी क्षमताओं का आकलन अष्टवक्र जी गीता में निम्न शब्दो मे करना है।

अष्टावक्र जी राजा जनक से कहते हैं कि

1. शंकारहित और मुक्त मनवाला पुरुष, मुक्ति की साधनारूप क्रियाओं- यम, नियम आदि को आग्रह के साथ ग्रहण नहीं करता है; वह देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ और खाता हुआ सुखपूर्वक रहता है। यम, नियम आदि उससे स्वभावतः होते रहते हैं।।

2. यथार्थ ज्ञान के श्रवण मात्र से अंतःकरण से पूर्ण शुद्ध पुरुष; न सत्य आचरण को, अनाचार को और न उदासीनता को देखता है। उसके लिए किसी जप, तप, योग, ध्यान, समाधि, कर्मकाण्ड, हठयोग आदि की कोई आवश्यकता नहीं है।।

3. धीर ज्ञानी पुरुष, जबकुछ शुभ-अशुभ कार्य करने को आ पडता है, तो वह सरलता, सहजता के साथ करता है, क्योंकि उसका स्वभाव बालकों की तरह होता है।।

4. आत्मज्ञानी सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। सभी बन्धनों से मुक्त होकर परमानन्द में स्थित हो जाना ही स्वतंत्रता है, यही मुक्त मुक्ति है। स्वतंत्रता से नित्य परमसुख परमपद को प्राप्त होता है।।

5. जब कोई व्यक्ति अपने को शरीर, मन व अहंकार से अलग केवल आत्मरूप निश्चित कर लेता है, उसी पल वह न करनेवाला रहता है और न भोगनेवाला ही। उसका अहंकार नष्ट हो जाता है, अहंभाव समाप्त हो जाता है, उसकी सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों का नाश हो जाता है।।

6. ज्ञान स्पृहामुक्त हो जाने से वास्तविक शान्ति को प्राप्त होता है; उसकी शान्ति बनावटी नहीं, स्वाभाविक होती है। यदि ऐसा ज्ञानी कभी उच्छृखलता भी दिखाता है, तो भी वह शोभा पाता है; क्योंकि उसमें कोई दोष नहीं होता, उसके पीछे स्पृहा, वासना नहीं होती ।।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।।

।। हरि ॐ तत सत।। विशेष 11.18 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.19॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रंस्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥

"anādi-madhyāntam ananta-vīryam,
ananta-bāhuṁ śaśi- sūrya- netram..
paśyāmi tvāṁ dīpta- hutāśa- vaktraṁ,
sva-tejasā viśvam idaṁ tapantam"..।।

भावार्थ:

आप अनादि है, अनन्त है और मध्य-रहित हैं, आपकी महिमा अनन्त है, आप की असंख्य भुजाएँ है, चन्द्र और सूर्य आप की आँखें है, मैं आप के मुख से जलती हुई अग्नि के निकलने वाले तेज के कारण इस संसार को तपते हुए देख रहा हूँ। (१९)

Meaning:

I see you without beginning, middle and end, with infinite prowess and infinite arms, with the moon and sun as your eyes, with blazing fire out of your mouth. Your radiance burns this universe.

Explanation:

In the sixteenth verse, Arjun had said that the form of the Lord is without beginning, middle, or end. He repeats this after just three verses, out of his excitement over what he is seeing. If a statement is uttered repeatedly in amazement, it is taken as an expression of wonder and not considered a literary flaw. For example, on seeing a snake, one may scream, “Look, a snake! A snake! A snake!” Similarly, Arjun repeats his words in amazement. In another view he is seeing lord everywhere in all directions, means all directions are part of the lord statue in vishva roop darshan.

He does find something for his mind to hold onto. He is seeing every deity in Lord. So, he starts from eyes and compare the same with, the moon and the sun. He says Sun and moon are seen as the eyes of the cosmic form. This is useful because it lets us, to the best of our mind’s ability, as a pointer to remembering Ishvara’s cosmic form when we see the moon or the sun that he is seeing world in day and night. Further, the sun, moon, and stars receive their energy from the Lord. Thus, it is he who provides warmth to the universe through these entities.

Next, Arjuna describes Ishvara’s powerful prana shakti. Our prana powers all of our physiological functions. It enables us to digest food, move our hands and legs, circulate the blood and so on. Similarly, the cosmic prana of Ishvara also powers the universe, but is infinitely more powerful than our prana. This is revealed through the infinite arms seen by Arjuna, which represent the infinite prowess and power to perform actions.

Now, Arjuna begins to see a transformation in the cosmic form. It shifts from a pleasant picture to something a little different. Ishvara’s mouth begins to emit fire, representing the prana in him that consumes food. The food here, however, refers to the offerings we make in the form of sacrifices. The offering, or “hutam”, is consumed by Ishvara resulting in the fire from his mouth heating or powering the universe.

Ultimate seeing deities like all directions, sun and moon in shape of eyes, Varun in shape of tongue and fire in shape of mouth shows that vishavrupa darshan contains all deities being part of his body.

This image reinforces the sacrificial wheel of the universe that was described in the third chapter.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन दिव्य नेत्रों से परमात्मा के स्वरूप को देख रहा है किंतु वह ज्ञानवान एवम प्रवीण योद्धा है, कोई ब्रह्मविद योगी नही। इसलिये वो भय, शंका, आकांक्षा एवम जिज्ञासा से परे नही है। जब भी हम कोई आश्चर्य मिश्रित वस्तु को देखते है तो हमारे अंदर तरह तरह के भाव उमड़ने लगते है और हम दिखने वाले वस्तु की तुलना अपने ज्ञान से करने लगते है।

श्लोक 16 में अर्जुन आदि, अंत एवम मध्य नही देख पा रहे थे, इसलिये अब स्तुति करते हुए कहते है। आप आदि, मध्य और अन्त से रहित हैं अर्थात् आपकी कोई सीमा नहीं है। आप उत्पत्ति, वृद्धि, क्षय, परिणाम एवम विनाश से परे अनादिमध्यान्त है। आप में अपार पराक्रम, सामर्थ्य, बल और तेज है। आप अनन्त, असीम, शक्तिशाली अर्थात अनन्तवीर्य हैं।

यदि किसी कथन को विस्मय के कारण दोहराया जाता है तो उसे चमत्कार की अभिव्यक्ति के रूप में लेना चाहिए और उसे साहित्यिक दोष नहीं समझना चाहिए। उदाहरणार्थ किसी सांप को देखने के पश्चात कोई चिल्ला कर कहता है-'देखो सांप! सांप! सांप!' इसी प्रकार अर्जुन भी आश्चर्यचकित होकर अपने कथनों को दोहराता है। भगवान वास्तव में आदि और अंत से रहित हैं क्योंकि स्थान, काल, कारण-कार्य-संबंध उन्हीं के प्रभुत्त्व में हैं। इसलिए वे उनके परिणाम से परे हैं।

साहित्यिक आधार पर एक छोटी सी कथा है, कि एक महान संस्कृत कवि, महान विद्वान, वह अत्यंत गरीब था, सामान्यतः जहाँ सरस्वती होती है, वहाँ लक्ष्मी उस के साथ नहीं जाती। ऐसा लगता है कि उनके बीच कुछ झगड़ा है! तो यह व्यक्ति बहुत बड़ा विद्वान है और इस के पास भी सरस्वती है, किंतु लक्ष्मी नहीं है। इसलिए वह केवल चीथड़े पहने हुए था; फटा हुआ कपड़े और कवि होने के नाते वह हर चीज़ को पद्य के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। वह देख रहा था। फटे हुए चिथड़े और यह श्लोक जप रहा था।

"आदिमध्यन्त रहितम्, दश हीनम् पुराणम्, अद्वितीयम् अहम वंदे, मदवस्त्र सदृशं हरीम्।"

मैं आदि, मध्य और अंत रहित प्रभु को साष्टांग प्रणाम करता हूं। जो मेरे वस्त्रों से तुलनीय है। उसका कपड़ा कैसा है और प्रभु की तुलना की जाए। वह कहते हैं आदिमध्ययंता रहितम्; फटे हुए चिथड़े होना; आप यह पता नहीं चल पाता कि आरंभ, मध्य या अंत क्या है। दश हीनम्, दश शब्द है दो अर्थ; एक कपड़े का अंत है, जिसे दशा कहा जाता है; और विभिन्न स्थितियाँ जैसे बुढ़ापा, रोग आदि को भी दशा कहा जाता है; या यहां तक कि ज्योतिषीय शनि दशा; राह दशा, वह दशा है। तो यह कवि कहता है। मेरा कपड़ा भी दश हीनम् है। सब कुछ फटा हुआ है और भगवान दश हीनम् हैं। उसके पास कोई दशा नहीं है। शनि, राहु दशा; आप भी इसके साथ ही दश हीन है। हे प्रभु! और मेरी पोशाक भी दश हीनम् है। पुराणम्; मेरी पोशाक भी है सब से प्राचीन; और हे भगवान्! आप पुराणनः हैं; फिर अद्वितीयम्; अतुलनीय, तुम भी अतुलनीय हो और मेरे जैसा वस्त्र तुम्हें कभी नहीं मिलेगा अद्वितीयम् अहम् वन्दे, मदवस्त्र सदृशं हारिम, वह भगवान जो मेरे वस्त्रम के समान है, उस भगवान को, मैं साष्टांग प्रणाम; नमस्कार करता हूं। ज्ञान के मध्य साहित्यिक हास्य होना वैसे वह अलग बात है और अर्जुन यहां कोई हास्य नही कर रहा इसलिए उस का बार बार यह कहना कि आप अनादिमाध्यन्तमनन्तवीर्यम्; यह बताता है कि परमात्मा का ऐश्वर्या कितना बड़ा है। अर्जुन कहते है आप अनंत शक्ति के स्वामी हैं और अनंतवीर्य अनंत शक्तिमान, सर्वशक्तिमान है जिस से आप ब्रह्मांड ही इसे बना पाते हैं।

मैं आपको अनन्त भुजाओं से युक्त, चन्द्रमा और सूर्यरूप के समान तेजस्वी एवम शीतलता प्रदान करने वाले नेत्रोंवाला, प्रज्वलित अग्निरूप अनेक मुखोंवाला और अपने तेजसे इस जगत् को तपायमान करते हुए देखता हूँ अर्थात् जिस रूपके अनन्त हाथ हों, चन्द्रमा और सूर्य ही जिसके नेत्र हों, प्रज्वलित अग्नि ही जिसका मुख हो और जो अपने तेज से इस सारे विश्व को तपायमान करता हो, ऐसा रूप धारण किये आपको देख रहा हूँ।

पंचभूत में जितने भी देवता है उस में सूर्य - चंद्र की तुलना नेत्रों से कर के दिन और रात दोनो को उन के स्वरूप में सम्मलित कर लिया और वरुण को जिव्हा में, मुख में अग्नि तत्व और तेज को चेहरे पर धारण कर के बताया गया। विश्वरूप में जो भी है वह परमात्मा की विभूति है तो उस के वर्णन को दर्शन में अर्जुन के मुख से स्तुति द्वारा वर्णित करने का साहित्यिक ज्ञान व्यास से अधिक किसी का हो, मुझे नहीं लगता।

व्यास के प्रभावशाली काव्य द्वारा चित्रित यह शब्दचित्र ऐसा आभास निर्माण करता है कि मानों इस कविता की विषयवस्तु बाह्यजगत् की कोई दृश्य वस्तु हैं। इसे केवल गम्भीर

अध्ययनकर्ता सूक्ष्मदर्शी विद्यार्थी ही समझ, सकते हैं। कोई भी चित्रकार कितना बड़ा केनवास ले ले किन्तु इस अनदिमध्यान्त स्वरूप का जिस से अनन्त हाथ एवम मुख हो, जिन के मुख से अग्नि से सामान ज्वाला निकल रही हो। जिन की आंखे सूर्य के समान प्रकाशवान एवम चंद्रमा जैसी शीतल हो, तो तेजस्वी, बलवान असीम शक्तिशाली हो, चित्रित कर सके। यद्यपि हमे इस स्वरूप के चित्र मिलते है किंतु कोई भी इस परिभाषा को पूर्ण नही कर सका।

मनोविज्ञान के अनुसार अर्जुन द्वारा विराट स्वरूप देखने के बाद स्तुति करना, स्वयं को अप्रत्याशित दृश्य के अनुरूप अपने आत्मविश्वास को पैदा करना ही है। मन मे भविष्य जानने की कामना और विराट स्वरूप में सम्पूर्ण सृष्टि का दर्शन को देख कर अर्जुन अपने धैर्य एवम आत्मविश्वास को भी बनाये रखना चाहते है, इसलिये जो पहले देखा है, उसे स्तुति के माध्यम से दोहरा भी रहे है। अर्जुन ऐसा विराट रूप में वो सब देख रहा था जो उस की जिज्ञासा में भविष्य जानने में था। किंतु सत्य जब विराट स्वरूप में हमारे समक्ष हो तो निश्चय ही वह हमारी उन समस्त आकांक्षाओं के अनुरूप नही होता, इसलिये अर्जुन अब भय भी महसूस करने लग गया है।

श्लोक 2 में अर्जुन ने कहा था कि मैंने आप को भूतो की उत्पत्ति एवम प्रलय का विस्तार से श्रवण किया और आप के अविनाशी महात्म्य को भी सुना। यह सब मे आप के स्वरूप को देखना चाहता हूँ। सृजन जितना आनंद एवम सुख दायक होता है, उस से अधिक संहार और विसृजन होता है। परमात्मा का स्वरूप सौम्य सृजन से विनाश के भयानक रूप में काल द्वारा जीव का संहार चहुंओर बिना किसी क्षोर के देखने से अर्जुन की मानसिक स्थिति अप्रत्यशित भय एवम आशंका में घिरने लगी थी। अतः वह अपनी स्थिति को स्तुति में वर्णित करते हुए आगे क्या देखते हुए कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.19।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.20॥

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदंलोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥

"dyāv ā-pṛthivyor idam antaraṁ hi,
vyāptaṁ tvayaikena diśaś ca sarvāḥ..

dṛṣṭvādbhutaṁ rūpam ugraṁ tavedaṁ,
loka- trayaṁ pravyathitaṁ mahātman"..

भावार्थ:

हे महापुरूष! सम्पूर्ण आकाश से लेकर पृथ्वी तक के बीच केवल आप ही अकेले सभी दिशाओं में व्याप्त हैं और आप के इस भयंकर आश्चर्यजनक रूप को देखकर तीनों लोक भयभीत हो रहे हैं। (२०)

Meaning:

This distance between heaven, earth is, and all directions is pervaded only by you alone. Having seen this, you're fascinating and terrible form, the three worlds are afraid, O great one.

Explanation:

Arjun says, "O Omnipresent Lord, you are pervading in all ten directions, the whole earth, the sky above, and the space in- between. All living beings are shuddering in fear of you." Why should the three worlds shudder before the universal form when they have not even seen it? Arjun implies that everyone is functioning in fear of God's laws. His edicts are in place, and everyone is obliged to submit to them.

Nowadays, computers can be trained to recognize objects and faces. They do this by first taking a snapshot of a scene, and then differentiating between what is space is what is not. If they can do this differentiation correctly, they can compare the outlines of the "not- space" with outlines of familiar objects to arrive at a conclusion such as "this is a box" and so on.

Our eyes work in pretty much the same way. Whenever they see space, they do three things. First, they separate whatever they see as not-space and call those things "objects". Next, they send those objects to the mind which uses its memory to say, "this is a box and a key". But in addition to recognizing objects, the mind also automatically adds another thought. Since

the box and key are separated by space, they are far away from me and therefore not a part of me.

Our minds are conditioned to believe that Ishvara is sitting somewhere far away. He is separated from us by space, by distance. But when Arjuna saw the cosmic form, he realized that space is not different from Ishvara. In fact, Shri Krishna himself said that space is part of his nature in the seventh chapter. Ishvara is not separate and far away from us, he is with us all the time. In fact, he only exists, “ekena”, all alone, by himself. We are not different from him. This is the main point of this shloka. Only by constantly remembering the cosmic form will we truly understand this message.

Now, Ishvara’s ugra roopa, his terrible form, slowly replaces his saumya roopa, his pleasant for. For every pleasant experience in the world, there has to be a corresponding unpleasant experience as well. Once you label something as “good”, there will be something “bad” by default. Seeing this frightful form of Ishvara, with fire coming out of all his mouths, all the three worlds were beginning to worry.

Lord as the creative principle, we all enjoy; Lord as the sustaining principle we all admire; but there is a third facet of Lord; not only sṛṣṭi kāraṇam, not only stithi kāraṇam; but the very same Lord is the laya kāraṇam; which is represented by the fiery mouth. When Arjuna saw the Lord as the death principle, the destroyer principle, Arjuna has got fear also. Therefore, now Arjuna has got a mixed feeling, one side is wonder; another side is fear also. And therefore, he adds both words; adbhudham and ugraṃ; it is wonderful and also frightening.

So one thing we do not want anything around is death, either for me or for a few people around; this is the fundamental insecurity and everybody has got this running sense of insecurity constantly throughout and therefore Arjuna says; lōkatrayaṃ; all the lōkās; even the animals have got instinctive

fear of death; therefore all the three lōkās including dēvās, asurās; manuṣyās, paśus, pakṣis, insects, even an ant; they are all frightened of You; the death principle, represented by the fiery mouth. Hey Mahātman means Viśva rūpa; mahān; ātma śarīram yasya mahātma; sambodhana is hey mahātman.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन कहता है कि हे सर्वव्यापी महापुरुष! आप सारी पृथ्वी और उसके ऊपर आकाश और उस के बीच के स्थान में सभी दस दिशाओं में व्याप्त हैं। सभी जीव आप के भय से कांपते दिखाई दे रहे हैं। तीनों लोक भगवान के विश्वरूप के समक्ष क्यों थरथरा रहे हैं? जबकि उन्होंने भगवान का विश्वरूप देखा ही नहीं हैं। सभी उसका पालन करने के लिए बाध्य हो रहे हैं। अर्जुन कहता है कि सभी भगवान के नियम के भय से कार्य कर रहे हैं। उनकी आज्ञाएँ अटल हैं और सभी उनका पालन करने के लिए बाध्य होते हैं।

अर्जुन विराट रूप परमेश्वर का दर्शन कर रहे थे उस मे उस ने अनेक आश्चर्यजनक स्वरूप देखे। काल से परे वो भूत, वर्तमान, भविष्य सब देख रहा था किंतु इस विराट स्वरूप से उस के अंदर भय मिश्रित जिज्ञासा बढ़ रही कि भविष्य क्या है, क्योंकि वो जिस भूमि में खड़ा था वो युद्ध भूमि थी।

विसर्ग एवम प्रलय सृष्टि के दो ही स्वरूप है। एक ओर 33 कोटि देवगण एवम मरुत गण का विश्वरूप है तो दूसरी ओर प्रलय को ले कर काल सब को निगल रहा है। यह दृश्य का आदि, मध्य या अंत भी नही और कालातीत होने से सम्पूर्ण भूत-वर्तमान- भविष्य को भी दिखा रहा था। अर्जुन ने पूर्व अध्याय विभूतियोग में जिस ऐष्वर्य रूप की कल्पना की थी, उस के विपरीत अर्जुन भविष्य में युद्ध की वीभत्सता को भी देख पा रहा था। अतः अपने को संयत करने की कोशिश में स्तुति करते जा रहा था।

अर्जुन कहते है "स्वर्ग और पाताल, पृथ्वी और अंतराल, दसो दिशाए और चतुर्दिक छाए हुए क्षितिज के वर्तुल - इन सब को एकमात्र आप से ही भरा हुआ कुतूहल से देख रहा हूँ। आकाश सहित समस्त त्रिभुवन को आप के स्वरूप ने मानो निगल लिया हो। यह असदाहरण व्यापकता अमर्यादित सी लग रही है और फिर हजारो सूर्य के समान तेज के कारण आंखे चोउंधियाँ से गई है। इस के कारण यह दृश्य देख कर विराम की जगह भय महसूस होने लग रहा है।"

कर्म प्रधान बिश्वकरी राखा ।जो जस करइ सो तस फल चाखा ।।(रामचरितमानस)

"संसार का कार्य कर्म के नियमों के अधीन होता है। हम जो भी कर्म करते हैं उससे हमारे कर्मफल संचित होते हैं।" कर्म के नियमों के समान असंख्य नियम अस्तित्व में हैं। कई वैज्ञानिक जीवन निर्वाह के लिए खोज और अविष्कार करते हुए भौतिक सिद्धान्त बनाते हैं किन्तु वह नियम नहीं बना सकते। भगवान सर्वोच्च विधि निर्माता है और सभी उस के नियमों के प्रभुत्त्व के अधीन हैं।

परमेश्वर का अनन्त विराट स्वरूप ऊपर स्वर्ग से ले कर पाताल तक विस्तृत था। अर्जुन उस मे परिवर्तन देख रहा था। उसे लग रहा था वो विराट स्वरूप में वो सभीकुछ देख रहा था, जो आने वाली घटनाओं को बता रही है। अनेक हाथ, पैर, मुख, नेत्र दांत कुछ भी एक जैसा नहीं जिस के कारण स्वरूप सौम्य न हो कर भयानक स्वरूप में परिवर्तित होता दिख रहा था।

भगवान के रचनात्मक सिद्धांत के रूप में, हम सभी आनंद लेते हैं। भगवान एक सतत सिद्धांत पालक के रूप में हम सभी की प्रशंसा करते हैं। लेकिन भगवान का एक तीसरा पहलू भी है, न केवल सृष्टि कारणम्, न केवल स्थिति कारणम्; लेकिन वही भगवान लय कारणम भी है, जिस का प्रतिनिधित्व उग्र मुख द्वारा किया जाता है। जब अर्जुन ने भगवान को मृत्यु तत्त्व, संहारक तत्त्व के रूप में देखा, तो अर्जुन को भय भी हो गया। इसलिए अब अर्जुन को एक मिश्रित अनुभूति हुई है, एक तरफ आश्चर्य है, दूसरा पक्ष डर का भी है और इसलिए वह दोनों शब्द जोड़ता है,अदभुधम् और उगुग्रं; यह अद्भुत भी है और भयावह भी है।

एक चीज़ जो हम अपने आसपास कुछ भी नहीं चाहते या तो अपने लिए या आसपास के कुछ लोगों के लिए, वह है मृत्यु । यह मूलभूत असुरक्षा है और हर किसी में असुरक्षा की यह भावना लगातार चलती रहती है और इसलिए अर्जुन कहते हैं, "लोकत्रयं;" सभी लोक, यहाँ तक कि जानवरों को भी मृत्यु का सहज भय हो गया है, इसलिए देवों, असुरों सहित सभी तीन लोक, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े, यहाँ तक कि एक चींटी भी, वे सब तुझ से डर गए हैं। मृत्यु सिद्धांत, उग्र मुँह द्वारा दर्शाया गया।

युद्ध, महामारी, अकाल एवम हिंसा किसी भी रूप में प्रकट हो, भयानक होती है। ईश्वर की कल्पना मनोरम, शीतल और सौम्य स्वरूप की जाती है, किन्तु जो स्वरूप सृष्टि के कण कण में बस गया है, उस का वास्तविक स्वरूप जन्म से मृत्यु तक संसार के प्रत्येक सत्य को प्रदर्शित करता है, वह कालातीत स्वरूप में सुख- दुख, रोग, हिंसा, मृत्यु और युद्ध जैसी

भयानक स्थिति को भी विराट विराट स्वरूप में प्रकट कर दिया। मानो जिस ने समुन्दर का शांत लहरों के स्वरूप की कल्पना कर रखी हो, उस मे काल के समान समुन्दर ही व्यक्त ऊंची ऊंची तूफानी लहरों के साथ प्रकट हो गया हो।

आप के इस अद्‌भुत, विलक्षण, अलौकिक, आश्चर्यजनक, महान्‌ देदीप्यमान और भयंकर उग्ररूपको देखकर स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोक में रहनेवाले सभी प्राणी व्यथित हो रहे हैं, भयभीत हो रहे हैं। भय एवम संदेह में हमे अपना जैसा ही संसार दिखता है क्योंकि हमारा आत्मविस्वास समाप्त प्रायः हो चुका होता है, इस लिए भय से ग्रसित अर्जुन को भी पूरी सृष्टि व्यथित दिख रही है।

विश्वरूप की विराट छवि को सरलता से ग्रहण नहीं किया जा सकता। जो जितना ही अधिक उसे समझता है, उसका वर्णन करने में उतना ही अधिक वह लड़खड़ाता है। इतने विशाल और भव्य सत्य को देखकर परिच्छिन्न बुद्‌धि का कम्पित हो जाना स्वाभाविक ही है।अर्जुन का यह कहना कि इस अद्‌भुत और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक भय कम्पित हो रहे हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य जगत्‌ को उसी रूप में देखता है जैसा कि वह स्वयं होता है। यथा दृष्टि तथा सृष्टि। विराट्‌ का दर्शन करके अर्जुन भयभीत हुआ और उस मनस्थिति में जब वह जगत्‌ को देखता है, तो तीनों लोक भी विस्मित और भय कम्पित दिखाई देते हैं। उसे लग रहा है इस विराट स्वरूप को देवी देवता, पितर, एवम युद्‌ध मे खड़े सभी मनुष्य देख रहे है, इसलिये विराट स्वरूप में उसे वह सब व्यथित ही दिख रहे है।

आगे दस श्लोकों में अर्जुन विराट स्वरूप का काल रूप देख कर, उन की मनःस्थिति को महृषि व्यास जी जिस अदभुत तरीके से पिरोया है, उस मे वे अर्जुन के माध्यम से क्या कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.20।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 11.21॥

अमी हि त्वां सुरसङ्‌घा विशन्ति केचिद्‌भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्‌धसङ्‌घाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥

"amī hi tvāṁ sura- saṅghā viśanti,
kecid bhītāḥ prāñjalayo gṛṇanti..।
svastīty uktvā maharṣi- siddha- saṅghāḥ,

stuvanti tvāṁ stutibhiḥ puṣkalābhiḥ"..।।

भावार्थ:

सभी देवों के समूह आप में प्रवेश कर रहे हैं उनमें से कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़कर आपका गुणगान कर रहे हैं, और महर्षिगण और सिद्धों के समूह 'कल्याण हो' इस प्रकार कहकर उत्तम वैदिक स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति कर रहे हैं। (२१)

Meaning:

Certainly, this host of deities enters into you. Many are scared, singing praises with folded hands, “may all be well”, saying this. Hosts of great rishis and siddhas are praising you, through sublime hymns.

Explanation:

Arjuna’s was beginning to see the cosmic form in more detail. Previously, he had mentioned that all the three worlds were quite afraid of Ishvara’s fearful form. In one of those worlds, the heavenly world, which was populated by the deities, he saw something quite amazing. The deities were arising out of Ishvara’s cosmic form and dissolving back into it, just like waves in the ocean. He indicates this by using the word “vishanti”, entering.

Arjun is seeing here the kāla rūp of Shree Krishna, i.e. his form as all-devouring time. The marching onslaught of time consumes even the greatest of personalities, including the celestial gods. Arjun sees them entering the universal form, with folded hands, in subservience to the kāla rūp of God.

How do different people respond to the Viśva rūpa Īśvaraḥ? So that is described here; all the dēvās who are all informed people, relatively enlightened people, they appreciate the Viśva rūpa Īśvara and they approach you with prayers. They approach you; even though You have got a frightening form, they have understood Bhagavān's destruction is dharmic destruction and it is constructive destruction and once that is understood

properly; it is not frightening. Maturity is required to face death; to face destruction; and the dēvās being mature; they approach you with prayers.

And there are some other people groups of ṛṣīs who are enlightened, who know the Lord very well; and nature of the Lord; so maharṣīs and siddhaḥ; siddhaḥ means again great ṛṣīs; who have got great miraculous powers; those born with natural siddis are called siddhaḥ; and all such people also declare aloud; they chant; let there be auspiciousness to the world; mangalam asthu; especially such a prayer is required because the huge war is going to take place.

So, in the first line, mature ones approach with wisdom-based appreciation; the second-line we are talking about immature people approaching because of fear.

Fear is required to keep a person in dhārmic path until maturity comes. So mother has to use sometimes; even government has to use fear; if you do not follow the law, you will be imprisoned; but it is used until a person becomes discriminative; but later, the fear should be replaced by wisdom - based appreciation.

Arjuna saw all three types of people, the ignorant, the seekers, and the realized masters in this scene. The ignorant individuals and the seekers were dissolving into Ishvara, but only the seekers were singing praises of Ishvara since they knew that he was their ultimate goal. The realized masters, the sages and siddhas, stood apart from this process of creation and dissolution, singing hymns to glorify Ishvara.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन ने यहाँ श्रीकृष्ण के कालरूप को देखा अर्थात उन्हें सब कालों के भक्षण के रूप में देखा। कालचक्र का विकराल रूप देवताओं सहित शक्तिशाली योद्धाओं का भी संहार कर देता है। अर्जुन ने विश्वरूप के समक्ष हाथ जोड़ते हुए उन्हें भगवान के कालरूप में प्रवेश करते हुए

देखा। उसी समय उसने ऋषियों और पुण्यात्माओं को भगवान का चिंतन, गान के साथ स्तुति करते हुए देखा।

परमात्मा से मुख से अर्जुन ने सुना था कि अपने अपने कर्मो का फल सभी भोगते है अतः देव, पितर, गंधर्व आदि सभी जो अच्छे कर्मों के कारण स्वर्ग एवम अन्य लोक का सुख भोग रहे थे, वो सब को अर्जुन विराट स्वरूप में अपने कर्मो के बीज जला कर अपनी उत्तम भावना के साथ आप मे परिवेश कर रहे है। **प्रकृति के त्रिगुण सत-रज-तम से कोई भी मुक्त नहीं, इसलिये कभी कभी हम लोगो ने भी इन देवताओ के नीच कार्यो को भी सुना है। तुलसीदास जी ने भी कहा है "जिन्ह के रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।।"**

ऐसे डरे हुए राजसी गुणों से युक्त देव गण आप के सम्मुख प्रार्थना कर रहे है कि हे देव! हम लोग अविद्या सिंधु में पड़े है, विषयो के जाल में उलझे है और स्वर्ग एवम संसार यानि मृत्यु लोक के बीच की विषम अवस्था मे फसे है, अब आप के अतिरिक्त इस संसार से हम को कौन उबार सकता है, हम विशुद्ध हृदय से आप की शरण है, हमारा उद्धार करो।

अर्जुन कहते है सात्विक गुणों से युक्त सप्तर्षियों देवर्षियों, महर्षियों सनकादिकों और देवताओं के द्वारा स्वस्तिवाचन (कल्याण हो मङ्गल हो) हो रहा है और बड़े उत्तम उत्तम स्तोत्रों के द्वारा आप की स्तुतियाँ कर रहे है। अर्जुन को ज्ञान है कि ब्रह्मऋषि, महृषि आदि ज्ञानी, तत्वविद एवम ब्रह्मसन्ध है वे परमात्मा के इस तत्व को जानते है इसलिये वे भयभीत नही है एवम सब जगत कल्याण के लिये परमात्मा का स्तवन कर रहे है।

अब तक अर्जुन ने विश्व रूप का जो वर्णन किया वह स्थिर था और एक साथ अद्भुत और उग्र भी था। यहाँ अर्जुन विश्वरूप में दिखाई दे रही गति और क्रिया का वर्णन करता है। ये सुरसंघ विराट् पुरुष में प्रवेश करके तिरोभूत हो रहे हैं।यदि सुधार के अयोग्य हुए कई लोग बलात् विश्वरूप की ओर खिंचे चले जाकर उसमें लुप्त हो जा रहे हों और अन्य लोग प्रतीक्षा करते हुऐ इस प्रक्रिया को देख रहे हों, तो अवश्य ही वे भय से आतंकित हो जायेंगे। किसी निश्चित आपत्ति से आशंकित पुरुष, जब सुरक्षा का कोई उपाय नहीं देखता है, तब निराशा के उन क्षणों में वह सदा प्रार्थना की ओर प्रवृत्त होता है। इस मनोवैज्ञानिक सत्य को बड़ी ही सुन्दरता से यहाँ इन शब्दों में व्यक्त किया गया है कि कई एक भयभीत होकर हाथ जोड़कर आपकी स्तुति करते हैं।

इस श्लोक में जगत् के प्राणियों का वर्गीकरण तीन भागों में किया गया है उत्तम, मध्यम और अधम। अधम प्राणी ऐसे ही नष्ट हो जाते हैं। वे मृत्यु की प्रक्रिया के सर्वप्रथम शिकार

होते हैं और दुर्भाग्य से उन्हें इस क्रिया का भान तक नहीं होता कि वे उसका किसी प्रकार से विरोध कर सकें। **मध्यम** प्रकार के लोग विचारपूर्वक इस क्षय और नाश की प्रक्रिया को देखते हैं और उसके प्रति जागरूक भी होते हैं। वे अपने भाग्य के विषय में सोचकर आशंकित हो जाते हैं। वे यह नहीं जानते कि विनाश से वस्तुत कोई हानि नहीं होती और समस्त प्राणियों के अपरिहार्य अन्त से भयकम्पित हो जाते हैं। परन्तु इनसे भिन्न **उत्तम** पुरुषों का एक वर्ग और भी है, जिन्हें समष्टि के स्वरूप एवं व्यवहार अर्थात् कार्यप्रणाली का पूर्ण ज्ञान होता है। जब सिद्ध पुरुष उस महान विनाश को देखते हैं, जो एक मरणासन्न संस्कृति के पुनर्निमाण के पूर्व होता है, तब वे सत्य की इस महान शक्ति को पहचान कर ईश्वर निर्मित भावी जगत् के लिए शान्ति और कल्याण की कामना करते हैं।

व्यवहार में हमारे संस्कार, मनोभाव, ज्ञान, कर्म एवम मानसिक स्थिति में श्रद्धा, विश्वास और समर्पण ही वह वस्तु स्थिति है जो हमे किसी भी दृश्य को देखने से उस के प्रति हमारी अभिव्यक्ति को व्यक्त करती है। अर्जुन ने आज तक शास्त्रो का अध्ययन एवम ज्ञान को गुरुजनों एवम श्रेष्ठ जनो से ग्रहण किया था। वह आत्मसात ज्ञान नही था किंतु परमात्मा द्वारा दिया गया ज्ञान उसे पहली बार मिल रहा था। वह स्वयं भी राजसी गुण युक्त सात्विक व्यक्ति था, इसलिये वह भी विराट विश्वरूप देख कर घबरा कर स्तुति कर रहा था। किंतु उसे भी यही दिख रहा था कि जो यथार्त परमात्मा के स्वरूप को जानते है एवम कामना रहित हो कर परब्रह्म के उपासक है, वह ही इस विराट स्वरूप को देख कर हर्ष के साथ वंदना करते हुए, जगत के कल्याण की कामना कर रहे है। किंतु जो कामना करते हुए अन्यंत्र देवताओ को पूजते है, उन के लिये यह विराट स्वरूप असहनीय होने से रक्षा एवम कल्याण की गुहार लगाने का एवम जोर जोर से स्तुति करने का कारक है। हम जीवन मे जब कुछ करते है उस समय चाहे कितना भी न्यायोचित लगे किन्तु उस के कर्म का फल अवश्य मिलता है, वही हमारे पुनः जन्म का आधार है, इसलिये विराट स्वरूप परमात्मा को देख कर कर्मो का भय ही रक्षा ही गुहार लगाता है। जिन्होंने निष्काम हो कर समस्त कर्म परमात्मा के कर्म किये है, वह वंदना करते हुए, परमात्मा में विलीन हो जाते है।

विश्व रूप ईश्वर के प्रति विभिन्न लोग कैसे प्रतिक्रिया देते हैं? तो उसका वर्णन यहाँ किया गया है। तो पहली पंक्ति में, परिपक्व लोग ज्ञान-आधारित प्रशंसा के साथ आते हैं, दूसरी पंक्ति में हम डर के कारण अपरिपक्व लोगों के पास आने की बात कर रहे हैं।

किसी व्यक्ति को परिपक्वता आने तक धार्मिक मार्ग पर बनाए रखने के लिए भय की आवश्यकता होती है। इसलिए मां को कभी-कभी उपयोग करना पड़ता है; सरकार को भी भय का प्रयोग करना पड़ता है; यदि तुम कानून का पालन नहीं करोगे, तो तुम्हें जेल में डाल दिया जाएगा। लेकिन इसका प्रयोग तब तक किया जाता है जब तक व्यक्ति विवेकशील न हो जाये; लेकिन बाद में, डर को ज्ञान-आधारित प्रशंसा से बदल दिया जाना चाहिए।

इस दर्शनीय दृश्य को देखकर स्वर्ग के देवताओं की क्या प्रतिक्रया हुई, उसे अगले श्लोक में अर्जुन क्या कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.21।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.22॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्याविश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गंधर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घावीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥

"rudrādityā vasavo ye ca sādhyā,
viśve 'śvinau marutaś coṣmapāś ca..।
gandharva- yakṣāsura- siddha- saṅghā,
vīkṣante tvāṁ vismitāś caiva sarve"..।।

भावार्थ:

शिव के सभी रूप, सभी आदित्यगण, सभी वसु, सभी साध्यगण, सम्पूर्ण विश्व के देवता, दोनों अश्विनी कुमार तथा समस्त मरुतगण और पितरों का समूह, सभी गंधर्व, सभी यक्ष, समस्त राक्षस और सिद्धों के समूह वह सभी आश्चर्यचकित होकर आपको देख रहे हैं। (२२)

Meaning:

The hosts of Rudraas and Adityaas, the Vasus, the Saadhyaas, the Vishwadevaas, the Ashwini Kumaaraas, the Maruts, the Ushmapaas, the Gandharvas, the Yakshas, the Asuras and the Siddhas, all of them are amazed, observing you.

Explanation:

Previously, Arjuna had heard about Ishvara manifesting as deities in the universe. Now, in the cosmic form, he is able to see them clearly enough to recognize who they are. For most people during Arjuna's time, deities were worshipped but were inaccessible, they were invisible. Arjuna was clearly delighted to see those deities that were only invoked and worshipped in rituals. Even though these deities may have had meaning to Arjuna, they may not have meant to many of us. So, let's look more closely at these deities from our standpoint.

All these personalities receive their positions by the power of God and they discharge their respective duties in reverence to the Laws of Creation. Thus, they are all mentioned as beholding the cosmic form of God with wonder.

We may not worship the Vedic and Puraanic deities mentioned in this shloka, but we do worship material deities. If we want a telephone connection, we approach the telephone company. If we want an internet connection, we approach the internet service provider. If we want to admit a child into school, we approach the principal of that school. Broadly speaking, when we want to access something that is beyond our reach, we approach a deity and convince them to give us access to what we desire.

In all these cases, there are three aspects - the individual, the object of desire, and the deity that connects the individual to the object of desire. In many ancient texts, it is said that the universe split into 3 parts during the process of creation. The individual is known as the "adhyaatma", the world of objects known as the "adhibhoota" and the presiding deity that connects the two, the "adhidaiva".

It is said that we should worship a deity if we are seeking to acquire certain traits. If one wants to acquire strength and power, he should appease that adhidaiva who presides over a storehouse of strength. So we see that

seekers of power worship Lord Hanumaan. Seekers of dispassion worship Lord Shiva. Seekers of knowledge worship Sarasvati and so on.

So, when we begin practicing meditation, we can choose a deity that we have a particular attraction to. Some people love to worship Shri Krishna in his childhood for, whereas some people worship Lord Shiva in his serene form. It does not matter which deity we choose as long as we use the deity to ultimately take our meditation all the way up to Ishvara.

।। हिंदी समीक्षा ।।

ये सभी महान विभूतियाँ भगवान की शक्ति से ही अपनी पदवियाँ पाती हैं और भगवान द्वारा सौंपे गये कर्त्तव्यों का सृष्टि के नियमों के अंतर्गत कृतज्ञता से पालन करती हैं। अतः इनके लिए उल्लेख किया गया है कि ये सब भगवान के ब्रह्माण्डीय रूप को आश्चर्यचकित होकर देख रहे हैं।

यह अटल सत्य है जब अपेक्षा से ज्यादा देखने को मिल जाये, तो मनुष्य वह सब भी देखने की चेष्टा करता है जो उस ने पहले कभी सुना या पढ़ा है। वह अपनी तसल्ली से संपूर्णता की शायद पुष्टि करता हो। अर्जुन विराट स्वरूप में परिवर्तन को देख कर आश्चर्य मिश्रित भय एवम आनंद का अनुभव कर रहा था। परमात्मा काल से परे है इसलिये उसे वो भी सब दिख रहा है, जो सृष्टि के नियमो का पालन भी कराते है एवम सृष्टि का नियमन भी कराते है। इसलिये वह कहते है कि उसे ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, दो अश्विनीकुमार और उनचास मरुद्गण - सब दिख रहे है। यह सब वह देवता है जिन्हें हम ने पूर्व श्लोक 6 में पढा है।

अर्जुन उन बारह साध्यों अर्थात मन, अनुमन्ता, प्राण, नर, यान, चित्ति, हय, नय, हंस, नारायण, प्रभव और विभु को भी परमात्मा का स्तवन करते देख रहा है।

अर्जुन ने दस विश्वदेव क्रतु, दक्ष, श्रव, सत्य, काल, काम, धुनि, कुरुवान्, प्रभवान् और रोचमान को भी देखा।

इस के अतिरिक्त अर्जुन कव्यवाह, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त और बर्हिषत् - सात पितर जिन्हें भोग में ऊष्म अर्थात् गरम अन्न खाने के कारण ऊष्मपा भी कहते है। श्राद्ध में पितरों को कभी भी ठंडी रसोई नही दी जाती क्योंकि ठंडी रसोई वह ग्रहण ही नहीं करते।

कश्यपजी की पत्नी मुनि और प्राधा से तथा अरिष्टा से गन्धर्वों की उत्पत्ति हुई है। गन्धर्वलोग रागरागिनियों की विद्या में बड़े चतुर हैं। ये स्वर्गलोक के गायक हैं। कश्यपजी की पत्नी खसा से यक्षों की उत्पत्ति हुई है। यक्षों में कुबेर धन के स्वामी है।

देवताओं के विरोधी दैत्यों, दानवों और राक्षसों को असुर कहते हैं। कपिल आदि को सिद्ध कहते हैं। उपर्युक्त सभी देवता, पितर, गन्धर्व, यक्ष आप के बदलते स्वरूप को देख कर, चकित होकर आप को देख रहे हैं।

यह समस्त वैदिककाल पूजे जाने वाले देवी देवता है जिन की पूजा और उपासना की जाती थी। विभिन्न शक्तियों एवम कार्यो के सभी अधिदेव है, जिन्हें अर्जुन परमात्मा के कथन अनुसार अब दिव्य नेत्रों से देख पा रहा है। अर्जुन ज्ञानी एवम शास्त्र संगत बाते करता था एवम उस ने विभिन्न पुराणों में इस सब के बारे पढ़ा है। इसलिये उसे यह सब परमात्मा के विराट स्वरूप में दिख रहे है एवम परमात्मा की आराधना में लगे हुए भी देख रहा है।

वस्तुतः परब्रह्म के संकल्प से सृष्टि की रचना हुई, इन्ह लोक से ब्रह्मलोक तक सभी देवी-देवता, पितर, मनुष्य, असुर, यक्ष आदि समस्त परमात्मा का ही स्वरूप है। जो सांसारिक या पारलौकिक सुखों की आशा से स्वर्ग आदि के देवताओ की पूजा करते है, वह वास्तव में परब्रह्म को ही पूजते है, यह दृश्य द्वारा अर्जुन को भगवान श्री कृष्ण ने परमात्मा की विभूति के रूप में बताया था, वही अर्जुन अपने सामने दृश्य रूप में देख कर प्रमाणित भी कर रहे है। विराट रूप दर्शन परब्रह्म के सम्पूर्ण दर्शन है, इसलिये अर्जुन उस मे एक एक कर के समस्त दृश्य को देखते हुए, परमात्मा के सम्पूर्ण स्वरूप का ही वर्णन कर रहे है, इसलिये वे वह सब देख रहे है जो उन के स्वरूप से उत्पन्न भी है और उन में विलीन भी हो रहे है।

अर्जुन इन सब को देख कर क्या कहता है, यह हम आगे पढ़ते है।

।।हरि ॐ तत सत।। 11.22।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.23॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रंमहाबाहो बहुबाहूरूपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालंदृष्टवा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥

"rūpaṁ mahat te bahu- vaktra- netraṁ,
mahā-bāho bahu- bāhūru- pādam..।

bahūdaraṁ bahu- daṁṣṭrā- karālaṁ,
dṛṣṭvā lokāḥ pravyathitās tathāham"..।।

भावार्थ:

हे महाबाहु! आपके अनेकों मुख, आँखें, अनेको हाथ, जंघा, पैरों, अनेकों पेट और अनेक दाँतों के कारण विराट रूप को देखकर सभी लोक व्याकुल हो रहे हैं और उन्ही की तरह मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ। (२३)

Meaning:

Seeing your grand form with several mouths and eyes, O mighty armed, with several arms, thighs, feet and bellies, with fearful fangs, all beings are disturbed, and (so too am) I.

Explanation:

Blessed by Lord Krishna with divya cakṣuḥ, that means an appropriate mind by which a person can appreciate the whole universe as the body of the Lord; Arjuna is having Viśva rūpa darśanam of the Lord. And Arjuna goes through three phases and in each phase, Arjuna response is different; and of these three phases, the first stage is one of wonder; because anything you appreciate in totality, in mass scale, it produces wonderment.

Arjuna’s amazement turned into fear as he witnessed the transformation of Ishvara’s cosmic form. The “soumya roopa” or the pleasant form morphed into into the “ugra roopa”, the fear-inducing form. Shri Krishna’s kind, shining face was no more visible. It now was the face of a monster, with long sharp teeth that were “kaarala”, ready to take a bite.

Hence, considering several mouths etc. as kaal "time" which has three phases birth, live and death. In name of God Brahma, Vishnu and Mahesh. Now seeing the death is fearful.

When we see someone who has power but is benevolent and kind, we feel at peace. But when someone with power is clearly intent on causing destruction, we are afraid. When a general of a country army is disciplined and respects civilian authority, people are happy, otherwise he becomes a dictator and scares people. So therefore, seeing this terrible form of Ishvara, Arjuna saw that all beings in all of the worlds were cowering in fear of this form.

He describes the Vishva roopa as numerous hands, legs, faces, and stomach of God are everywhere. The Śhwetāśhvatar Upaniṣhad states:

"sahasraśhīrṣhā puruṣhaḥ sahasrākṣhaḥ sahasrapāt

sa bhūmiṁ viśhwato vṛitvātyatiṣhṭhaddaśhāṅgulam (3.14)[v5]"

“The Supreme Entity has thousands of heads, thousands of eyes, and thousands of feet. He envelopes the universe but is transcendental to it. He resides in all humans, about ten fingers above the navel, in the lotus of the heart.” Those who are beholding and those who are being beheld, the terrified and the terrifying, are all within the universal form of the Lord. Again, the Kaṭhopaniṣhad states:

"bhayādasyāgnistapati bhayāt tapati sūryaḥ

bhayādindraśhcha vāyuśhcha mṛityurdhāvati pañchamaḥ (2.3.3)[v6]"

“It is from the fear of God that the fire burns and the sun shines. It is out of fear of him that the wind blows, and Indra causes the rain to fall. Even Yamraj, the god of death, trembles before him.”

Why did Ishvara show this form to Arjuna? Didn’t Shri Krishna want everyone to remember his pleasant form only? There is a reason to this. Earlier, we learned about the tendency of our mind to demarcate certain aspect of the world as “good” or “bad”. But if we use the cosmic form as a

means to meditate upon Ishvara, we need think like Ishvara. Ishvara comprises the entire creation where everything is necessary, and everything has its place. We cannot demarcate anything good or bad. Only by discarding our prior conceptions of good and bad can we truly understand this terrible form of Ishvara.

What else about the form scared Arjuna? He continues in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

सांतवे श्लोक में परमात्मा में कहा था कि अर्जुन तू इस मे चर-अचर समस्त प्राणियों - ब्रह्मांड को इस शरीर मे देख और जो भी तू देखना चाहता है वह भी देख।

भगवान कृष्ण द्वारा दिव्य चक्षुः का आशीर्वाद प्राप्त, इसका अर्थ है एक उपयुक्त दिमाग जिसके द्वारा एक व्यक्ति पूरे ब्रह्मांड को भगवान के शरीर के रूप में सराह सकता है; अर्जुन को भगवान के विश्व रूप दर्शन हो रहे हैं। अर्जुन तीन चरणों से गुजरता है और प्रत्येक चरण में, अर्जुन की प्रतिक्रिया अलग-अलग होती है; और इन तीन चरणों में से पहला चरण आश्चर्य का है; क्योंकि आप किसी भी चीज़ की समग्रता में, बड़े पैमाने पर सराहना करते हैं, वह आश्चर्य पैदा करती है, यह हम ने श्लोक 22 तक पढ़ा। अब आगे भय का वातावरण श्लोक 25 तक पढ़ते है।

अर्जुन परमात्मा से विभूतियो को सुनने के बाद मात्र चतुर्भुज विश्वरूप ही देखने की प्रार्थना करता है किंतु उसे परमात्मा विराट रूप में समस्त ब्रह्मांड पूर्ण विभूतियो, चर-अचर के साथ, पूर्ण ग्रह, नक्षत्र एवम अधिआत्म, अधिभूत एवम अधिदेव के साथ दिखा रहे है। विराट स्वरूप में परमात्मा अर्जुन को वह सब दिखा रहे जो अर्जुन देखना चाहता है, इसलिये विराट स्वरूप काल का रूप ले रहा है। अर्जुन ने पूर्व में 33 कोटि देवगण एवम मरुतगण, ऋषि-मुनि आदि देखने के बाद परमात्मा के पल पल बदलते स्वरूप में आगे देखते हुए कहते है।

यह स्वरूप यद्यपि एक है किंतु अनेक प्रकार के विचित्र और भयानक मुखों, अनेक नेत्रों, सशस्त्र अगिनत हाथों, अगिनत जांघों, अगिनत भुजदंडों तथा चरणों, अनेक उदरों तथा वर्णो से युक्त है। आप के मुख एक दूसरे से नहीं मिलते। कई मुख सौम्य हैं और कई विकराल हैं। कई मुख छोटे हैं और कई मुख बड़े हैं। ऐसे ही आप के जो नेत्र हैं, वे भी सभी एक समान नहीं दीख रहे हैं। कई नेत्र सौम्य हैं और कई विकराल हैं। कई नेत्र छोटे हैं, कई बड़े हैं, कई

लम्बे हैं, कई चौड़े हैं, कई गोल हैं, कई टेढ़े हैं, आदिआदि। हाथोंकी बनावट, वर्ण, आकृति और उनके कार्य विलक्षण विलक्षण हैं। जंघाएँ विचित्र विचित्र हैं और चरण भी तरह तरह के हैं।पेट भी एक समान नहीं हैं। कोई बड़ा, कोई छोटा, कोई भयंकर आदि कई तरहके पेट हैं। मुखों में बहुत प्रकार की विकराल दाढ़ें हैं। ऐसा लग रहा है कि आप महामृत्यु के समुद्र है। मुख से अग्नि के समान ज्वाला निकल रही है। भयंकर दांतो में प्रलय के नाश के रक्त से लथपथ दाढ़े दिख रही है। ऐसे महान् भयंकर, विकराल रूप को देखकर सब प्राणी व्याकुल हो रहे हैं और मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ।

सभी ओर प्रभु के असंख्य हाथ, टांगें, मुख और उदर दिखाई दे रहे थे जिसका श्वेताश्वतरोपनिषद् में इस प्रकार से वर्णन किया गया है

"सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्, स भूमिम् विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् (श्वेताश्वतरोपनिषद्-3.14)"

"परम सत्ता के हजारों सिर, हजारों आंखें और हजारों पाँव हैं। उन्होंने समस्त ब्रह्माण्ड को अपने आवरण में समेट रखा है किन्तु फिर भी वे इससे परे हैं। वह सब मनुष्यों में लगभग नाभि से दस अंगुल ऊपर हृदय कमल में रहते हैं।" वे जो उन्हें देख रहे हैं और जो उन्हें देख चुके हैं, भयभीत हो चुके और भयतीत हो रहे ये सभी भगवान के विश्वरूप के भीतर हैं। *कठोपनिषद् में पुनः वर्णन किया गया है

"भयादस्याग्निस्तपति भयातत्पति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः।।(कठोपनिषद्-2.3.3)"

"भगवान के भय से अग्नि जलती है और सूर्य चमकता है। उन्हीं के भय के कारण वायु प्रवाहित होती है और इन्द्र धरती पर वर्षा करता है। यहाँ तक कि मृत्यु का देवता यमराज भी भगवान के समक्ष भय से कांपता है।"

अर्जुन अभी तक सब के भय भीत होने की बात कर रहे थे, किन्तु अब यह स्वीकार करने लगे कि वह स्वयं भय भीत। वह कहते है कि मुझ से प्रलयकारी रुद्र भी भय खाता है तथा यम भी मुझ से भय भीत है, किन्तु यह विश्वरूप भले ही हो किन्तु यह रूप तो एक महामारी जैसा भयानक है, जिस की भयंकरता से मुझे भी भय लग रहा है। मै तो बस अब तक आप को अन्य का डर बता कर रोक रहा था।

मनुष्य को भविष्य का कौतूहल भले ही हो किन्तु उस को देख पाने का साहस नही हो सकता। अपनी खुद की ज़िंदगी के कितने उतार चढ़ाव आते है और समय से प्रवाह में बह जाते है किंतु कभी सोचो कि यह सब तुम्हारे सामने खड़े हो जाये तो क्या उन को स्वीकार कर सकोगे। कल्पना करें कि जंगल मे सुंदर सौम्य वातावरण की कल्पना में अचानक गहरे जंगल मे हिंसक जानवर से आप अपने को घिरा हुआ पाए तो कितना भी सुरक्षित होने की गारंटी हो, किन्तु भय अपना स्थान आप के मन के बना ही लेगा।

जब कोई व्यक्ति विनाशकारी सिद्धांत को देखता है, तो वह इससे खुश नहीं होगा। तो स्वाभाविक रूप से भावना डर में से एक है। तो भगवान सृष्टि कर्ता के रूप में, हर कोई प्यार करता है; भगवान स्थिति कर्ता के रूप में, हर कोई अधिक प्यार करता है; लेकिन भगवान लय कर्ता के रूप में, हर कोई भयभीत है और अर्जुन उस लय, संहारक को देखता है और इसलिए वह भयभीत हो जाता है; और यह इस सिद्धांत का प्रतिनिधित्व करता है कि विश्व रूप में विपरीत युग्मों का समावेश है।

परमात्मा का सौम्य स्वरूप सृष्टि के विसर्ग से प्रलय की ओर बढ़ कर भयानक हो रहा था। जन्म के साथ मृत्यु भी अटल है, सृजन के साथ विनाश भी अटल है। काल अनंत एवम सब को भक्षण करने वाला है। उसी काल स्वरूप में विराट विश्वरूप को देख कर कौन है, जो भयभीत न हो। अर्जुन भी मनुष्य है, उस डर स्वाभाविक है। परमात्मा के इस स्वरूप की कल्पना सनातन धर्म मे महृषि व्यास जी ने विराट स्वरूप दर्शन में ही कर के दिखाने के साहस किया है, जो अपने आप मे अद्वितीय है। जीवन मे बड़े से बड़ा सुख और बड़े से बड़ा दुख, दुर्घटना, मृत्यु, बीमारी या कष्ट जो भी सामने भोगने को मिले उसे यदि विराट स्वरूप दर्शन की भांति स्वीकार कर के परमात्मा को प्रणाम करने से ही आनन्द की प्राप्ति ही सकती है। दैनिक जीवन मे जो प्रत्यक्ष है, वही परमात्मा का विराट स्वरूप का दर्शन है, फिर चाहे वह युद्ध हो या शांति।

इस दृश्य से स्वयं में डरा अर्जुन समस्त सृष्टि को भयभीत बता रहा है। यह व्यक्ति का अहम होता है कि वह अपनी कमजोरी को स्वीकृत करने की अपेक्षा उसे पूरे विश्व पर थोपना चाहता है। व्यवहार में भी हारने पर अपनी कमजोरी को स्वीकार करने की बजाए हम दूसरो को उस का कारण बताते है।

भयानक स्वरूप को देख कर बदहवास अर्जुन आगे क्या देखते हुए कहते है, अगले श्लोक में पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.23।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.24॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णंव्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्टवा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥

"nabhaḥ- spṛśaṁ dīptam aneka- varṇaṁ,
vyāttānanaṁ dīpta- viśāla- netram..।
dṛṣṭvā hi tvāṁ pravyathitāntar-ātmā,
dhṛtiṁ na vindāmi śamaṁ ca viṣṇo"..।।

भावार्थ:

हे विष्णो! आकाश को स्पर्श करता हुआ, अनेको प्रकाशमान रंगो से युक्त मुख को फैलाये हुए और आपकी चमकती हुई बड़ी-बड़ी आँखों को देखकर मेरा मन भयभीत हो रहा है, मैं न तो धैर्य धारण कर पा रहा हूँ और न ही शान्ति को प्राप्त कर पा रहा हूँ। (२४)

Meaning:

Seeing you touching the sky, glowing with several colours, with gaping mouths and large blazing eyes, my mind is scared. I have neither courage nor serenity, O Vishnu.

Explanation:

Arjuna describes just how gigantic the cosmic form looked. He says that it “touched the sky”. Its size, combined with the horrible imagery that he saw, created a sight that was scarier than anything we can imagine. Arjuna says that it had an infinite number of colours, indicating the potential to create all kinds of names and forms. Furthermore, it had an infinite number of mouths wide open with fangs, as well as gigantic fiery eyes.

This “raudra roopa” or angry form of Ishvara had quite an impact on Arjuna. He admitted to Shri Krishna that he had lost his courage. For one of the

world's foremost warriors that considers courage paramount to say such a thing indicates that this cosmic form must really have been something beyond the realm of our imagination.

Arjuna also admitted that he had lost all his serenity. In the second chapter, Shri Krishna mentioned that a "sthita-prajnya" or one who is established in the eternal essence has three key qualities: holistic vision, serenity of mind, and unattached living. Arjuna was a tranquil person by nature, but this manifestation of the cosmic form has the effect of destabilizing him.

From our perspective, even if we never see this terrible form, there are several instances in our life when we experience situations that make us lose our will to fight, and also take our serenity away. This shloka urges to recognize Ishvara's handiwork behind even those situations that make us lose faith in him, and to constantly remind ourselves that every unfortunate circumstance is a means for our self-purification.

Arjun was also a devotee of Shree Krishna in sakhya bhāv. He was used to relating to Shree Krishna as his friend. That is why he had agreed to having Shree Krishna as his chariot driver. If his devotion had been motivated by the fact that Shree Krishna was the Supreme Lord of all creation, Arjun would never have allowed him to do such a demeaning service. But now, seeing his infinite splendour and inconceivable opulence, his fraternal sentiment toward Shree Krishna was replaced by fear.

For example, a wife loves her husband deeply. Though he may be the governor of the state, the wife only looks upon him as her husband, and that is how she is able to interact intimately with him. If she keeps this knowledge in her head that her husband is the governor, then each time he comes by, she will be inclined to stand on her feet and pay a more ceremonial respect for him. So, the knowledge of the official position of the

beloved gets immersed in the loving sentiments. The same phenomenon takes place in devotion to God.

Even though Arjuna wanted Shri Krishna to end displaying this cosmic form, there was more to come as we shall see next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

जीवन में किसी व्यक्ति के प्रति जो हम धारणा एवम भावना रखते है, उस के अनुकूल ही हमारा व्यवहार और आचरण उस के प्रति होता है। किंतु जब किसी विशेष परिस्थितियों में वह व्यक्ति हमारी धारणा और भावना के अनुकूल नहीं निकलता, तो हमारी आस्था को एक सदमा लगता है और यदि हमारा विश्वास उस के प्रति सरंक्षण का हो, तो टूटता विश्वास हमारे अंदर भय उत्पन्न कर देता है। सौम्य स्वरूप में परमात्मा को जानने वाला अर्जुन जब संहारक स्वरूप परमात्मा को देखता है तो उस की परिस्थिति भी भय की हो जाती है।

अर्जुन द्वारा अनुभव किया गया यह आसाधारण अद्भुत और उग्र दृश्य किसी एक स्थान पर केन्द्रित नहीं किया जा सकता था। वस्तुतः वह सर्वव्यापकता की सीमा तक फैला हुआ था। परन्तु अर्जुन ने अपनी आन्तरिक दृष्टि में उसे एक परिच्छिन्न रूप और निश्चित आकार में देखा। अरूप गुणों (जैसे स्वतन्त्रता, प्रेम, राष्ट्रीयता इत्यादि) को जब भी हम बौद्धिक दृष्टि से समझते हैं, तब हम उसे एक निश्चित आकार प्रदान करते हैं। जो स्वयं के ज्ञान के लिए ही होता है। परन्तु कदापि इन्द्रियगोचर नहीं होता। इसी प्रकार, यद्यपि विराट् रूप तो विश्वव्यापी है। परन्तु अर्जुन को ऐसा अनुभव होता है, मानो उसका कोई आकार विशेष है। किन्तु पुन जब वह इस अनुभूत दृश्य का वर्णन करने का प्रयत्न करता है, तो उसके वचन उस की ही भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पाते और उसका अपना प्रयोजन ही सिद्ध नहीं हो पाता है।

वह उस भयंकर रूप को अनन्तरूप अर्थात् रूपविहीन बताते हुए कहता है कि विश्वरूप अपने में सबको समेटे हुए है। यह विराट् रूप आकाश को स्पर्श कर रहा है। नभ स्पर्श उस की विशालता को बता रहा है, नभ स्वयं में अनन्त है। असंख्य वर्णों से वह दीप्तमान हो रहा है। उसके विशाल आग्नेय नेत्र चमक रहे हैं। उसका मुख सबका भक्षण कर रहा है। यह सब सम्मिलित रूप में देवताओं के साहस को भी डगमगा देने वाला है। वह कहता है कि जिस स्वरूप के शरीर की तेजस्विता इतनी प्रबल है कि उस के समक्ष तीनो लोक जल कर राख हो सकते है, उसी स्वरूप में ये समस्त मुख है और उन मुखों में विशाल, भयंकर तथा दृढ़ दांत

और दाढ़े है, भयंकर जिव्हा है और यह सारा जगत इन का एक निवाला भी नही है। ऐसा लगता है महामृत्यु दल घनघोर अंधकार में छिपे बैठे है।

निराकार स्वरूप का परिवर्तित रूप अर्जुन को इतना अधिक भयभीत मात्र इसलिये कर रहा है वह उस स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा है जिस का ज्ञान उस को नही था। यह दृश्य संजय भी देख रहा था किंतु महृषि व्यास से दिव्य दृष्टि के साथ उसे ज्ञान भी मिला अतः चलचित्र में सामने पटल में आने वाले किसी भी चित्र से वह भयभीत नही है। ज्ञान एवम अज्ञान का यह सुंदर अंतर अर्जुन एवम संजय के एक ही दृश्य देखने कर अति सुंदर प्रस्तुत किया है।

वस्तुतः अर्जुन स्वयं युद्ध क्षेत्र में एक योद्धा की भांति खड़ा है, वह युद्ध मे भविष्य को देखना चाहता था। इसलिये युद्ध की विभित्सा क्रूरतम स्वरूप में उसे दिखाई पड़ रही थी और उसे भयभीत कर रही थी। संजय के लिये उस का महत्व एक समाचार वाहक मात्र का था, इसलिये वह सहज था। स्वजनों के खोने का भय और वेदना वही भोगता है, जिस का वह निकटतम होता है, अन्य के लिये कोई ज्यादा ह्रदय विदारक नही होता। घर मे मृत्यु और समाचार पत्र में मृत्यु की खबर का अंतर हम सब जानते है कि वह हमारे अंतर्मन को कितना निचोड़ती है।

भय से अर्जुन अपना धैर्य एवम शांति खो चुका है, अतः विष्णु स्वरूप को संबोधित करते हुए अपनी व्यथा को स्वीकार करता है। धैर्य एवम शांति भंग होने से अर्जुन बार बार इस को दोहरा रहे है।

अर्जुन एक ही बात बार-बार क्यों कह रहे हैं , इसका कारण है कि

(1) विराट् रुप में अर्जुन की दृष्टिके सामने जो-जो रूप आता है, उस-उसमें उनको नयी-नयी विलक्षणता और दिव्यता दीख रही है।

(2) विराट् रूप को देखकर अर्जुन इतने घबरा गये, चकित हो गये, चकरा गये, व्यथित हो गये कि उनको यह खयाल ही नहीं रहा कि मैंने क्या कहा है और मैं क्या कह रहा हूँ।

(3) पहले तो अर्जुन ने तीनों लोकोंके व्यथित होनेकी बात कही थी, पर यहाँ सब प्राणियोंके साथ-साथ स्वयंके भी व्यथित होनेकी बात कहते हैं।

(4) एक बात को बार-बार कहना अर्जुनके भयभीत और आश्चर्यचकित होने का चिह्न है। संसारमें देखा भी जाता है कि जिस को भय, हर्ष, शोक, आश्चर्य आदि होते हैं, उस के मुख

से स्वाभाविक ही किसी शब्द या वाक्यका बार-बार उच्चारण हो जाता है; जैसे -- कोई साँप को देखकर भयभीत होता है तो वह बार-बार 'साँप! साँप! साँप! 'ऐसा कहता है। कोई सज्जन पुरुष आता है तो हर्ष में भरकर कहते हैं -- 'आइये! आइये! आइये!' कोई प्रिय व्यक्ति मर जाता है तो शोकाकुल होकर कहते हैं - 'मैं मारा गया! मारा! गया! घरमें अँधेरा हो गया, अँधेरा हो गया अचानक कोई आफत आ जाती है तो मुखसे निकलता है - मैं मरा मरा मरा ऐसे ही यहाँ विश्वरूप- दर्शन में अर्जुन के द्वारा भय और हर्ष के कारण कुछ शब्दों और वाक्यों का बार-बार उच्चारण हुआ है। अर्जुनने भय और हर्षको स्वीकार भी किया है।

तात्पर्य है कि भय, हर्ष, शोक आदिमें एक बातको बार-बार कहना पुनरुक्ति-दोष नहीं माना जाता।

अर्जुन भी श्री कृष्ण के सखा भाव के भक्त थे। वे श्री कृष्ण को अपना मित्र मानने के आदी थे। इसीलिए उन्होंने श्री कृष्ण को अपना सारथी बनाने के लिए सहमति दी थी। यदि उनकी भक्ति इस तथ्य से प्रेरित होती कि श्री कृष्ण समस्त सृष्टि के सर्वोच्च भगवान हैं, तो अर्जुन उन्हें ऐसी अपमानजनक सेवा करने की अनुमति कभी नहीं देते। लेकिन अब, उनके असीम वैभव और अकल्पनीय ऐश्वर्य को देखकर, श्री कृष्ण के प्रति उनके भ्रातृ भाव की जगह भय ने ले ली।

उदाहरण के लिए, एक पत्नी अपने पति से बहुत प्यार करती है। भले ही वह राज्य का राज्यपाल हो, लेकिन पत्नी उसे केवल अपना पति ही मानती है, और इसी कारण वह उसके साथ आत्मीयता से पेश आती है। अगर वह अपने मन में यह बात रखे कि उसका पति राज्यपाल है, तो जब भी वह आएगा, वह अपने पैरों पर खड़ी होकर उसका और अधिक सम्मान करेगी। इस प्रकार, प्रेमी के आधिकारिक पद का ज्ञान प्रेम भावना में डूब जाता है। यही घटना भगवान की भक्ति में भी घटित होती है।

अब वह आगे यहां से 30वे श्लोक तक क्या क्या कहता है और दोहराता है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.24।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.25॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानिदृष्टैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

"daṁṣṭrā-karālāni ca te mukhāni,
dṛṣṭvaiva kālānala- sannibhāni..।
diśo na jāne na labhe ca śarma,
prasīda deveśa jagan- nivāsa"..।।

भावार्थ:

इस प्रकार दाँतों के कारण विकराल और प्रलयंकारी की अग्नि के समान आप के मुखों को देख कर मैं आप की न तो कोई दिशा को जान पा रहा हूँ और न ही सुख पा रहा हूँ, इसलिए हे देवेश! हे जगन्निवास! आप मुझ पर प्रसन्न हों। (२५)

Meaning:

Seeing you with dreadful tusks and your mouths blazing like fires of destruction, I neither know the directions nor do I have peace. Be pleased, O lord whose abode is the universe.

Explanation:

When we go beyond the imagery of this shloka and try to extract the meaning, we find that Arjuna comes face to face with a point of no return. The universal form that Arjun beholds is just another aspect of Shree Krishna's personality and is non-different from him. And yet, the vision of it has dried up the camaraderie that Arjun was previously experiencing toward Shree Krishna, and he is overcome with fear. Seeing the many wondrous and amazingly frightful manifestations of the Lord. He is unable to "know the directions", unable to decide where to run away from here. All the plans he has made to do this or that thing are suddenly no more. Many people who come face to face with their mortality may have thoughts similar to what Arjuna is echoing here.

Because according to the scriptures at the time of pralaya, the whole creation is gradually dissolved; and there are five elements; ākāśa; vāyu; agni; jalam; pṛithvi. These five elements are created in a particular order;

ākāśa; vāyu; agni; jalam; pṛthvi; at the time of pralayam; the resolution takes place in a reverse order.

So vipraryayaḥ athaḥ; That means what everything is supposed to be in pṛthvi tatvam; pṛthvi the earth principle is dissolved in jala tatvam; that is the pralaya; and jalam is supposed to be resolved in agni tatvam; and that agni and that agni is called pralaya kāla agni which absorbs everything including the fourteen lōkās. Hence, when destruction starts, there is no direction for the same.

I came across a website of a terminal cancer patient who wrote his obituary just before he passed away. Here's an excerpt from that website:

...It turns out that no one can imagine what's really coming in our lives. We can plan, and do what we enjoy, but we can't expect our plans to work out. Some of them might, while most probably won't. Inventions and ideas will appear, and events will occur, that we could never foresee. That's neither bad nor good, but it is real.

I think and hope that's what my daughters can take from my disease and death. And that my wonderful, amazing wife can see too. Not that they could die any day, but that they should pursue what they enjoy, and what stimulates their minds, as much as possible—so they can be ready for opportunities, as well as not disappointed when things go sideways, as they inevitably do...

So when we realize that ultimately, we are powerless in front of the grand scheme of the cosmos, our ego drops all its pretences and surrenders itself in prayer to Ishvara. Prayer is only possible when there is utter surrender of individuality. Arjun is now scared and thinks that Shree Krishna is angry with him. So, he asks for mercy. So, Arjuna prays to Shri Krishna, urging him to return to his pleasing form. But Shri Krishna is not done yet.

।। हिंदी समीक्षा ।।

काल या नियति को सब से क्रूर बोला गया है क्योंकि जब यह काम करती है तो मानो सब कुछ निगल जाना चाहती है। सुनामी हो, भूकंप हो, बाढ़ हो, अग्नि हो या महामारी। काल का रूप विकराल ही होगा। अर्जुन अब काल से समस्त विकराल रूपो को देख रहा है।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण के जिस विश्वरूप को देखा वह केवल श्रीकृष्ण के व्यक्तित्त्व के अन्य स्वरूप हैं और उनसे भिन्न नहीं हैं। अनेक अद्भुत और आश्चर्यजनक भगवान की अभिव्यक्तियों को देखकर अर्जुन अब भयभीत हो जाता है। वह कहता है,

महाप्रलयके समय सम्पूर्ण त्रिलोकी को भस्म करनेवाली जो अग्नि प्रकट होती है? उसे संवर्तक अथवा कालाग्नि कहते हैं। उस कालाग्निके समान आपके मुख है, जो भयंकर-भयंकर दाढ़ोंके कारण बहुत विकराल हो रहे हैं। उनको देखनेमात्र से ही बड़ा भय लग रहा है। अगर उनका कार्य देखा जाय तो उसके सामने किसी का टिकना ही मुश्किल है।

हे देवेश, इन भयंकर अलग अलग विकराल मुखों से अग्नि, जल आदि की धाराएं नाना प्रकार के विष से भरे प्रलय काल के शस्त्रों की बाढ़ से आ गयी है, ऐसा लगता है कि आवेश के रूप में हम सब पर मृत्यु की लहर ही आ रही है। जब सारे संसार का नाश करने वाली प्रचंड वायु एवम कल्पांत समय की प्रलय अग्नि का मिलन हो, तब भला ऐसी कौन सी चीज हो सकती है जो उन दोनों के सामने टिक सके।

क्योंकि शास्त्रों के अनुसार प्रलय के समय पूरी सृष्टि धीरे-धीरे विलीन हो जाती है और पाँच तत्व होते हैं आकाश, वायु, अग्नि, जलम, पृथ्वी। ये पाँच तत्व एक विशेष क्रम में निर्मित होते हैं आकाश, वायु, अग्नि, जलम, पृथ्वी; प्रलय के समय संकल्प विपरीत क्रम में होता है। अतः विप्रर्ययः अथः अर्थात् जो सब कुछ पृथ्वी तत्व में माना जाता है वह जल तत्व में विलीन हो जाता है वही प्रलय है और जलम का संकल्प अग्नि तत्व में माना जाता है और वह अग्नि और वह अग्नि प्रलय काल अग्नि कहलाती है जो चौदह लोकों सहित सब कुछ को अपने में समाहित कर लेती है।

मेरा मानसिक संतुलन बिगड़ रहा है,मेरा धैर्य नष्ट हो गया है। आप के चारो ओर आदि, मध्य एवम अंतहीन विकराल स्वरूप को देख कर मै सुध बुध खो कर दिशा हीन हो गया हूँ। चारो ओर सूर्य समान नेत्रों के प्रकाश के कारण मेरी आँखें चोंधिया सी गयी है। मै जिस विश्व रूप को देख कर अपने कल्याण की कामना की थी, लगता से वह सब यहाँ पहुँच कर

नष्ट हो गयी है। हे देव, अब आप इस विस्तृत रूप को समेट ले, यदि आप का यह रूप देखने को मिलता तो मै भूल कर भी आप को विश्वरूप दिखाने को नही कहता। जगत कल्याण की जगह यह सर्वनाश की ओर बढ़ता हुआ स्वरूप मुझे स्पष्ट रूप में आप अपने अनगिनत मुख फैला कर यहाँ चतुर्दिक सेना को निगलते से दिखाई दे रहे है। क्या आप पूरे विश्व को निगल रहे है।

आत्यन्तिक विस्मय की इस स्थिति में आश्चर्यचकित मानव यह अनुभव करता है कि उसकी शारीरिक शक्ति, मानसिक क्षमतायें और बुद्धि की सूक्ष्मदर्शिता अपने भिन्न भिन्न रूप में तथा सामूहिक रूप में भी वस्तुत महत्त्वशून्य साधन हैं। छोटा सा अहंकार अपने मिथ्या अभिमान के आवरण और मिथ्या शक्ति के कवच को त्यागकर पूर्ण विवस्त्र हुआ स्वयं को नम्र भाव से समष्टि की शक्ति के समक्ष समर्पित कर देता है। परम दिव्य, समष्टि शक्ति के सम्मुख जिस व्यक्ति ने पूर्णरूप से अपने खोखले अभिमानों की अर्थशून्यता समझ ली है, उसके लिए केवल एक आश्रय रह जाता है, और वह है प्रार्थना।

व्यवहार में अपनी क्षमताओं और शक्ति पर गर्व करने वाला मनुष्य जब प्रकृति या काल का भयानक स्वरूप देखता है, तभी उसे अपनी तुच्छता का आभास होता है, यह वह जगह है जहाँ उस की कोई चतुराई नही चल सकती। ऐसी अवस्था मे वह समर्पित हो कर प्रार्थना के अतिरिक्त कुछ नही कर सकता।

जीवन में अच्छा ही रहे, यही कामना रहती है। किंतु जहां जीवन है, वहां मृत्यु भी है। जहां सुख और आराम है वहां दुख और कष्ट भी है। इसलिए जब विपरीत परिस्थितियां उत्पन्न होती है तो परमात्मा के प्रति या तो दृढ़ विश्वास उत्पन्न होगा या व्यक्ति निराश हो कर नास्तिक हो जाएगा। यही प्रकृति का नियम है।

अर्जुन की व्यथा उस शब्दो एवम धैर्य के बाहर हो गयी एवम अब उसे वह सब दिखना शुरू हो गया जो उसे जानने की जिज्ञासा थी। अर्जुन क्या देखते है, यह आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.25।।

।। गीता अध्ययन- हम और वेद, उपनिषद, पुराण ।। विशेष गीता अध्ययन 11.25 ।।

पूर्व में गीता अध्ययन में हम ने अपनी अपेक्षाओं को पढ़ा, किंतु सीखा कितना, मुझे नही मालूम। हमारे ग्रन्थ वेद, उपनिषद और पुराण के साक्ष्य कितने प्रामाणिक है, इसे हम नही जानते। शुरू से हमे श्रद्धा और विश्वास का पाठ पढ़ाया गया। यह श्रद्धा और विश्वास का पाठ व्यस्त जीवन मे और कम बुद्धि के लोगो के लिए सात्विक मार्ग पर चलते रहने का ब्रह्म समाज का मार्गदर्शन था। किंतु समय के अंतराल में कब यह ब्रह्म समाज ब्रह्मसन्ध से पदच्युक्त हो कर स्वार्थ और लोभ में डूबता चला गया कि चंद लोगो मे सनातन धर्म की वसुधैव कुटुम्बकम की परिभाषा को अहम में बदल दिया। कब श्रद्धा और विश्वास अंधश्रद्धा और अज्ञानता में बदल गए पता नही चला। औसतन कोई भी हिन्दू ऐसा नही मिलता जिस ने वेद,उपनिषद या पुराणों का विवेक जन्य अध्ययन किया हो। जो भी मिलता है, वह उस का रट्टू तोता होता है या आलोचक या समालोचक। विज्ञान की दृष्टि से जनसामान्य हिन्दू अपने धार्मिक गन्थों का अध्ययन नही करता किन्तु श्रद्धा और विश्वास के साथ कर्म कांड पूर्ण अवश्य करता है।

गीता के ज्ञान में "तत त्वम असि" के 18 अध्याय के 6-6 अध्याय की बात पहले भी की गई है। अतः यह विशेष लिखने का औचित्य भी यही है, गीता श्लोक लिखने या पढ़ने की विषय वस्तु न हो कर, निष्काम कर्मयोग में जीवन को जीने की पद्धिति है। अतः इस के अध्ययन के प्रत्येक श्लोक में मानव के व्यक्तिगत, व्यापारिक, समाजिक एवं राजनैतिक और धार्मिक जीवन के उन पहलू को विवेक से समझने का मंत्र दिया है, जिस को समझने के बाद कुछ और समझना शेष नही रहता।

ईश्वर की खोज मनुष्य ने की है, उस ने ही विचारो और चिंतन से परब्रह्म को जानना चाहा है, किन्तु जो अनन्त, अजन्मा, अक्षय और नित्य है, उस को जितना खोजो, उतना ही कम पड़ता है परन्तु इसी खोज ने उन मतों को तैयार कर दिया, जिस के आगे कुछ लोग तैयार नही हुए। यही मतान्धनता की शुरुवात हुई और सनातन संस्कृति में हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई जैसे विचारधाराएं जन्म लेने लगी। एक दूसरे को नीचा और अपने को ऊंचा दिखाने की चक्कर मे अनेक रूढ़िवादिता ने भी जन्म लिया। मानव सभ्यता के विकास में जितना योग दान धर्म ने किया होगा, उतना ही अधिक नुकसान विभिन्न मतों और संप्रदाय के लोगो द्वारा भी किया गया। संपूर्ण सृष्टि में मानव जाति का विभाजन धर्म के आधार पर अधिक होने से युद्ध और वैमनस्य भी अधिक हुआ । गीता अध्ययन ही विश्व का एक मात्र ग्रन्थ है जो इन सब से परे परब्रह्म के चिंतन को स्पष्ट रूप से कहते हुए, उन तमाम कर्मकांडो का खंडन करता है, जो किसी भी कामना को सामने रख कर किये गए हो।

अतः प्रस्तुत लेख धर्मांतरण एवम हिन्दू संस्कृति का विवेक जन्य ज्ञान के लिये लिखा गया है क्योंकि सनातन धर्म मे धर्मांतरण जैसा शब्द नही है, वह तो प्रत्येक विचार धारा को अपने धर्म का ही एक स्वतंत्र भाग मानता है।

अग्निवीर का यह लेख - फुरसत के साथ पढ़े।

इस से हिन्दू धर्म की कई भ्रांतियां समाप्त हो जाएगी।

भारतवर्ष आज धर्मांतरण के रोग की प्रमुख आश्रय स्थली बन चुका है | चीन और उसके पार वाले देश इस विषाणु के लिए अप्रवेश्य हैं | और बाकी दुनिया में, भारतवर्ष के पश्चिम में जितना धर्मांतरण हो सकता था - हो चुका है - अब तो बस वहां एक शाखा (ईसाईयत) से दूसरी शाखा (इस्लाम) को लपकना और उन की छोटी-छोटी उपशाखाओं को पकड़ कर झूलने का ही खेल बचा है | लोभ और स्वार्थ में हिंदू बिना कुछ समझे और जाने अपने ही घर में गड्ढा खोद रहा है।

परंतु भारत में हिन्दू और गैर हिन्दू जनसंख्या का अच्छा खासा मिश्रण मौजूद है जो अल्लाह या यीशु के मिशन को आगे ले जाने के लिये बड़ी संख्या में संभावित अनुयायी, बड़ी संख्या में दलाल और समर्थक आधार को पेश करता है | जैसे भारतवर्ष इतिहास के महापुरुषों को जन्म देने के लिए प्रसिद्ध है वैसे यहां की भूमि दगाबाजों को पैदा करने और पालने में भी उतनी ही उर्वरक है - जो आत्मघात में ही गौरव समझते हैं | इस बात का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि एक राष्ट्रीय शर्म के प्रतीक (बाबरी मस्जिद) - जिसे एक समलैंगिक, बच्चों के यौन शोषण की विकृति से ग्रस्त, कत्ले आम में माहिर और नशे की लत के आदी बाबर ने खड़ा किया था - के विध्वंस की घटना को देश में गौरव का प्रसंग मानने की बजाए उसे एक बड़ी समस्या बना दिया गया है ! देखें - Babri Masjid demolition . जिसके पास किसी प्रकार का नियंत्रण ही नहीं ऐसे अत्यंत निर्बल नेतृत्व ने यह बिलकुल सरल कर दिया है कि अन्य कोई अज़मल कसाब या अफ़ज़ल आराम से अपनी इच्छा और ज़रुरत अनुसार अपने लोग, पैसे, आर डी एक्स ला कर हिन्दुओं की संख्या को आसानी से कम कर सकें|

अनेक कारण दिए जा सकते हैं लेकिन यह इस लेख का प्रयोजन नहीं है| संक्षेप में, भारतवर्ष किसी भी विदेशी मत के फ़लने-फूलने के लिए पोषक वातावरण मुहैया कराता है| धर्मांतरण ने अब एक चतुर खेल की शक्ल अख्तियार कर ली है | एक ही मतप्रसार के लिए अनेक प्रकार के उपायों का प्रचुर दाव - पेचों के साथ उपयोग किया जा रहा है | व्यापक स्तर पर धर्मांतरण करने के लिए जो हिन्दुओं को सिर्फ इस्लाम में शामिल करना चाहते हैं या जो

चाहते हैं कि हिन्दू बाइबल को ही गले लगायें, उनकी प्रमुख कूट चाल है - हिन्दुत्व को दुनिया के समक्ष सर्वाधिक अश्लील धर्म के रूप में प्रस्तुत करना | वैसे यह इनके मत प्रसार का कोई नवीनतम उपाय भी नहीं है परंतु आज के संदर्भ में यह हथकंडा कई कारणों से महत्वपूर्ण हो जाता है जिसकी चर्चा यहां स्थानाभाव की वजह से करना प्रासंगिक नहीं होगा |

यह बहुत ही हास्यास्पद है कि बाइबल या कुरान और हदीसों के आशिक, हिंदुत्व पर अश्लीलता से भरे होने का आरोप लगाते हैं | क्योंकि अंतिम अक्षर तक सर्वाधिक अश्लील किताबों की फ़हरिस्त में इन किताबों (बाइबल, कुरान+ हदीस) ने चरम स्थान हासिल कर रखा है| jesusallah.wordpress.com और बहुत सी अन्य साइट्स पर आप इससे संबंधित अनगिनत लेख पाएंगे| किन्तु ये धर्मांतरण के विषाणु इतने बेशर्म हैं कि आम जनता का छलावा करके पतित करने की प्रवृत्ति से उनकी आंखें तनिक भी झपकती नहीं हैं - तभी तो वे लोग अधिक से अधिक जनता को किसी भी तरीके से खींचते हैं ताकि उनको जन्नत में ज्यादा से ज्यादा ऐशो- आराम और हूरें मिलें।

पर आज यह बेहद गंभीर मसला बन चुका है| भारी संख्या में अपने सत्य धर्म से अनजान हिन्दू, आतंरिक और बाहरी चालबाजियों का शिकार बन रहें हैं और अंततः इस अपप्रचार में फंस कर भ्रान्तिवश अपने धर्म से नफ़रत करना शुरू कर देते हैं | उनके लिए हिंदुत्व का मतलब - राधा-कृष्ण के अश्लील प्रणय दृश्य, शिवलिंग के रूप में पुरुष जननेंद्रिय की पूजा, शिव का मोहिनी पर रीझना, विष्णु और शिव द्वारा स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करना, ब्रह्मा का अपनी पुत्री सरस्वती पर आसक्त होना इत्यादि, इत्यादि से ज्यादा और कुछ नहीं रह जाता | हमारी जानकारी में ऐसे कई पत्रक (pamphlets) भारतभर में वितरित किए जा रहे हैं और उन में हिन्दुओं से अपील की जा रही है कि वे सच्चे ईश्वर और सच्ची मुक्ति को पाने के लिए विदेशी मज़हबों को अपनाएं | बहुत से हिन्दू अपनी बुनियाद से घृणा भी करने लगे हैं और जो हिंदुत्व के चाहनेवाले हैं, वे निश्चित नहीं कर पाते हैं कि कैसे इन कहानियों का स्पष्टीकरण दिया जाए और अपने धर्म को बचाया जाए| छद्म धर्मनिरपेक्षतावादी कम्युनिस्ट इस को हवा देने में लगे हुए हैं|

इस लेख का प्रयोजन इन सभी आरोपों को सही परिपेक्ष्य में रखना और सभी धर्मप्रेमियों के हाथ में ऐसी कसौटी प्रदान करना है, जिससे वे न केवल सत्य का रक्षण ही कर सकें बल्कि इस मिथ्या प्रचार पर तमाचा भी जड़ सकें।

१. अश्लीलता के प्रत्येक आरोप पर विचार करने से पहले यह तय किया जाना जरूरी है कि क्या ये धर्म की परिधि में आता भी है ? हिंदुत्व में धर्म की अवधारणा, कुरान और बाइबल की अंध विश्वासों की व्यवस्था से पूर्णतः भिन्न है। हिंदुत्व के सभी वर्गों में स्वीकृत की गई, धर्म की सार्वभौमिक व्याख्या, मनुस्मृति (६। ९२) में प्रतिपादित धर्म के ११ लक्षण हैं - अहिंसा, धृति (धैर्य), क्षमा, इन्द्रिय- निग्रह, अस्तेय (चोरी न करना), शौच (शुद्धि), आत्म-संयम, धी: (बुद्धि), अक्रोध, सत्य, और विद्या प्राप्ति | Vedic Religion in Brief में इन्हें विस्तार से समझाया गया है |

कुछ भी और सब कुछ जो इन ११ लक्षणों का उल्लंघन करे या इन को दूषित करे वह हिंदुत्व या हिन्दू धर्म नहीं है |

२. धर्म की दूसरी कसौटी हैं वेद। सभी हिन्दू ग्रंथ सुस्पष्ट और असंदिग्धता से वेदों को अंतिम प्रमाण मानते हैं ।

अतः कुछ भी और सबकुछ जो वेदों के विपरीत है, धर्म नहीं है।

मूलतः ऊपर बताई गई दोनों कसौटियां, अपने आप में एक ही हैं किन्तु थोड़े से अलग अभिगम से |

३. योगदर्शन में यही कसौटी थोड़ी सी भिन्नता से यम और नियमों के रूप में प्रस्तुत की गई है - यम - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य (आत्म-संयम और शालीनता), अपरिग्रह (अनावश्यक संग्रह न करना)। नियम - शौच (शुद्धि), संतोष, तप (उत्तम कर्तव्य के लिए तीव्र और कठोर प्रयत्न), स्वाध्याय या आत्म- निरिक्षण,ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर के प्रति समर्पण)|

४. हिंदुत्व के प्रत्येक वर्ग द्वारा अपनाई गई, इन आधारभूत कसौटियों को स्पष्ट करने के बाद, हम इन आक्षेपों का जवाब बड़ी ही आसानी से दे सकते हैं क्योंकि अब हमारा दृष्टिकोण बिलकुल साफ़ है - हम उनका प्रतिवाद नहीं करते बल्कि उन्हें सिरे से नकारते हैं|

प्रश्न. सिक्युलर (seckular) या धर्मांतरण के लिए सक्रिय लोगों द्वारा हमारे ग्रंथों में असभ्य कथाओं का जो आरोप लगाया जाता है - इस पर आप क्या कहेंगे ?

उ. १. हिन्दू धर्म के मूलाधार वेदों में - इन में से एक भी कथा नहीं दिखायी देती |

२. अधिकांश कथाएं पुराणों, रामायण या महाभारत में पाई जाती हैं और वेदों के अलावा हिन्दू धर्म में दूसरा कोई भी ग्रंथ ईश्वर कृत नहीं माना जाता है। इसके अतिरिक्त, यह सभी

ग्रंथ (पुराण,रामायण और महाभारत) प्रक्षेपण से अछूते भी नहीं रहे| पिछले हज़ार वर्षों की विदेशी दासता में भ्रष्ट मर्गियों द्वारा, जिनका एक मात्र उद्देश्य इस देश की सांस्कृतिक बुनियाद को ध्वस्त करना ही था - इन ग्रंथों में मिलावट की गई है। अतः इन ग्रंथों के वेदानुकूल अंश को ही प्रमाणित माना जा सकता है। शेष भाग प्रक्षेपण मात्र है, जो अस्वीकार किया जाना चाहिए और जो यथार्थ में हिन्दुओं के आचरण में नकारा जा चुका है |

प्रश्न. क्या आप स्पष्ट करेंगे कि आप कैसे इन ग्रंथों को प्रक्षिप्त मानते हैं ?

उ. इसके बहुत से प्रमाण हैं |

१. भविष्य पुराण में अकबर,विक्टोरिया, मुहम्मद, ईसा आदि की कहानियां पाई जाती हैं | इसके श्लोकों में सन्डे, मंडे आदि का प्रयोग भी किया गया है | हालाँकि, मुद्रण कला (छपाई) के प्रचलित होने पर १९ वें सदी के आखिर में यह कहानियां लिखी जानी थम सकी। इस से साफ़ ज़ाहिर है कि १९ वें सदी के अंत तक इस में श्लोक जोड़े जाते रहे |

२. गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित रामायण और महाभारत में जो श्लोक स्पष्टत: प्रकरण से बाहर (संदर्भहीन) हैं, उन्हें प्रक्षिप्त के तौर पर चिन्हित किया गया है |

३. आश्चर्यजनक रूप से महाभारत २६५। ९४ के शांतिपर्व में भी यह दावा आता है कि कपटी लोगों द्वारा वैदिक धर्म को कलंकित करने के लिए मदिरा, मांस- भक्षण,अश्लीलता इत्यादि के श्लोक मिलाये गये हैं |

४. गरुड़ पुराण ब्रह्म कांड १। ५९ कहता है कि वैदिक धर्म को असभ्य दिखाने के लिए महाभारत दूषित किया गया है | इत्यादि ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं |

५. इन ग्रंथों के सतही अवलोकन से भी यह पता लग जाता है कि किस भारी मात्रा में मिलावट की गई है और इन कहानियों का मतलब गलत अनुवादों से बदल दिया गया है ताकि यह छलावे से धर्मांतरण के विषाणुओं और उनके वाहकों के अनुकूल हो सके |

प्रश्न. आप यह दावा कैसे करते हैं कि ये पुस्तकें हमारे धर्म का अंग नहीं हैं ?

उ.मैंने ऐसा नहीं कहा कि यह पुस्तकें हमारे धर्म का हिस्सा नहीं हैं, मेरा कहना है कि वे हमारे धर्म का भाग वहीं तक हैं जहां तक वे वेदों से एकमत हैं।

इसका प्रमाण समाज में देखा जा सकता है-

१. कोई भी नए असंपादित पुराणों को महत्त्व नहीं देता (सिवाय कुछ लोगों के जिन्हें हिन्दू धर्म से कोई सरोकार नहीं है वरन् वे सिर्फ अपना अधिपत्य जमाना चाहते हैं - झूठी जन्मगत जाति व्यवस्था के बल पर. वास्तव में यह लोग धर्मांतरण के वायरस के सबसे बड़े मिले हुए साझीदार हैं - जो धर्म को अन्दर से ख़त्म करते हैं |) हिन्दू जनसाधारण या उनके नेता भी सारे पुराणों का तो नाम तक नहीं जानते | पुराण आदि के सम्पूर्ण संस्करण भी आसानी से प्राप्य नहीं हैं।

२. इन पुस्तकों के संक्षिप्त या कुछ चुने हुए अंश ही जनसाधारण में उपलब्ध हैं। इसलिए बहुत से हिन्दू रामायण मांगने पर रामचरितमानस ला कर देंगे, महाभारत के लिए पूछने पर गीता मिलेगी और पुराणों की बजाए इन की नैतिक कथाओं का संकलन मिल सकता है। यह दर्शाता है कि हिन्दू इन पुस्तकों को वहीं तक ही स्वीकार करते हैं जहां तक वे उन्हें वेदानुकूल पाते हैं |

वे लोग अज्ञानता में गलतियाँ कर सकते हैं लेकिन लक्ष्य हमेशा वैदिक धर्म के दायरे में रहकर उपदेश देना और अनुसरण करना ही है। वास्तव में नालंदा विश्व विद्यालय को जला देना या अनेक ग्रंथो को मुगल द्वारा नष्ट कर देने से, बचे हुए ग्रंथ में अपनी सुविधा से परिवर्तन करने से वास्तविकता का पता ही नहीं लगता।

प्रश्न. अगर हिन्दू इन असभ्य कथाओं को अस्वीकार करते हैं, तो फ़िर राधा - कृष्ण और शिव लिंग को पूजते क्यों हैं ?

उ. नहीं, हिन्दू इन प्रतीकों को उस रूप में नहीं पूजते जैसे अर्थ यह धर्मांतरण के वायरस फ़ैला रहे हैं|

१. हिन्दू मूलतः ही इतने सीधे हैं कि वे आसानी से अन्यों पर भरोसा कर लेते हैं और इसीलिए विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा सदियों तक छले जाते रहे। उनकी सहज वृत्ति ही किसी पर भी विश्वास करने की है | ठेठ जाकिर की किस्म के मुस्लिमों के विपरीत जो कुरान और रसूल और अरब की आदिम परम्पराओं का पालन कोई जब तक न करे, उस पर अविश्वास ही करने के लिए प्रशिक्षित हैं। मुगलेआजम में जोधा-अकबर की कहानी या ताजमहल मुमताज के प्रेम की निशानी को आजतक सच मानने वाला हिन्दू है। एक भोला हिन्दू अन्य व्यक्ति पर महज़ इसलिए विश्वास रखता है क्योंकि वह मनुष्य है। यह विश्वसनीयता का भाव होना एक महान सामर्थ्य तो है पर साथ ही में यह एक बहुत बड़ी कमजोरी भी है खासकर, जब आप ऐसे इलाकों में रहते हों जहां डेंगू और मलेरिया फैलानेवाले बहुत अधिक

मच्छर मंडरा रहें हों| तो जैसे अग्निवीर की साईट को हैकिंग और वायरस के हमले झेलने पड़ रहें हैं - हिन्दुत्व भी ऐसा ही हो गया है। अब ऐसा समय आ गया है की इसी साईट को बनाए रखने की बजाए मौजूदा वायरस को मिटाकर, उसी विषय वस्तु को रखते हुए भविष्य में वायरस के हमलों से बचाव के लिए हम अपने सुरक्षा प्रबंध को अधिक कड़ा और मजबूत करके साईट को फ़िर से बनाकर शुरू करें|

२. हिन्दुत्व की सीधी प्रकृति के कारण हिन्दू परंपरागत रूप से कोई बहुत समालोचक नहीं हैं। एक अवधि के दौरान हर कहीं से अच्छाई की तलाश में वे विभिन्न पूजा पद्धतियों को अपनाते गये और उन्हें अपने अनुसार ढ़ालते गये| लेकिन इस प्रक्रिया में उन्हें इस बात का आभास भी नहीं हुआ कि वे अपने मूल स्रोत से विमुख होकर बहुत दूर भटक गये हैं जहां धर्मांतरण का वायरस उनको निगलने के लिए तत्पर है।

३. राधा का अर्थ है सफ़लता। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय का पांचवा मंत्र, ईश्वर से सत्य को स्वीकारने तथा असत्य को त्यागने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ रहने में सफ़लता की कामना करता है। कृष्ण अपनी जिंदगी में इन दृढ़ संकल्पों और संयम का मूर्तिमान आदर्श थे | पश्चात किसी ने किसी समय में इस राधा (सफ़लता) को मूर्ति में ढाल लिया | उसका आशय ठीक होगा परंतु उसी प्रक्रिया में ईश्वर पूजा के मूलभूत आधार से हम भटक गये, तुरंत बाद में अतिरंजित कल्पनाओं को छूट दे गई और राधा को स्त्री के रूप में गढ़ लिया, यह प्रवृत्ति निरंतर जारी रही तो कृष्ण के बारे में अपनी पत्नी के अलावा अन्य स्त्री के साथ व्यभिचार चित्रित करनेवाली कहानियां गढ़ ली गयीं और यह खेल चालू रहा। इस कालक्रम में आई विकृति से पूर्णत गाफ़िल सरल हिन्दू राधा-कृष्ण की पूजा आज भी उसी पवित्र भावना से ज़ारी रखे हुए हैं। यदि, आप किसी हिन्दू से राधा के उल्लेखवाला धर्म ग्रंथ पूछेंगे तो उसके पास कोई जवाब नहीं होगा, शायद ही कोई हिन्दू जानता भी हो। महाभारत या हरिवंश या भागवत या किसी भी अन्य प्रमाणिक ग्रंथ में राधा की कोई चर्चा नहीं है| अतः सभी व्यवहारिक मामलों में हिन्दुओं द्वारा राधा पर झूठी कहानियों और झूठी पुस्तकों को मान्यता नहीं दी गई है|

एक हिन्दू के लिए राधा पवित्रता का प्रतिक है, भले ही वह नहीं जानता क्यों और कैसे ? यदि हिन्दुओं के मन में राधा - कृष्ण के संबंधों के प्रति कोई अशालीन भाव होता वह राधा के भक्तों के जीवन में झलकना चाहिए था परंतु कृष्ण के उपासक तो एक पत्नीव्रती, बहुधा

ब्रह्मचारी रहनेवाले होते हैं जो सहसा अपने से विपरीत लिंग के लोगों में घुलते-मिलते भी नहीं हैं।

अतः सभी व्यावहारिक मामलों में हिन्दू राधा - कृष्ण पर सभी झूठी कथाओं और झूठी पुस्तकों को नामंजूर करते हैं|

४. शिवलिंग का मतलब है पवित्रता का प्रतीक | दीपक की प्रतिमा बनाये जाने से इस की शुरुआत हुई, बहुत से हठ योगी दीपशिखा पर ध्यान लगाते हैं। हवा में दीपक की ज्योति टिमटिमा जाती है और स्थिर ध्यान लगाने की प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न करती है इसलिए दीपक की प्रतिमा का निर्माण किया गया ताकि एकाग्र ध्यान लग सके। लेकिन कुछ विकृत दिमागों ने इस में जननागों की कल्पना कर ली और झूठी कुत्सित कहानियां बना ली और इस पीछे के रहस्य से अनभिज्ञ भोले हिन्दुओं द्वारा इस प्रतिमा का पूजन पवित्रता के प्रतिक के रूप में करना शुरू कर दिया गया। संस्कृत में लिंग शब्द का अर्थ चिन्ह ही होता है, जननांग को शिशन शब्द दिया है। फिर शिवलिंग शब्द में भ्रांति क्यों?

एक हिन्दू को क्यों और कैसे यह जानने में कोई रूचि नहीं है। वह सिर्फ चीज़ों को ऊपर से देख कर स्वीकारता है और हर कहीं से अच्छाई को पाने का प्रयास करता रहता है। किसी हिन्दू ने शिव पुराण या शिव लिंग से संबंधित अन्य पुस्तकें पढ़ी भी नहीं हैं। वे शिवालय में सिर्फ अपनी पवित्र भावनाएं ईश चरणों में अर्पित करने जाते हैं। अतः सभी व्यावहारिक मामलों में हिन्दुओं द्वारा शिव लिंग के बारे में सभी झूठी कथाओं और झूठी पुस्तकों को अस्वीकार किया गया है। हिन्दू इतना भोला और धर्मभीरु है कि वह मन्दिर के साथ साथ मजार और दरगाह को भी उसी भाव से पूजने लगता है जिस भाव से वह मंदिर जाता है।

५. हिन्दू लोग अपने धर्म का मर्म यही मानते हैं कि एक ही सत्य का साक्षात्कार अलग-अलग तरीकों से किया जा सकता है। अतः वे हर किसी को विद्वान समझ बैठते हैं, उसके पीछे चलने लगते हैं और भ्रम में रहते हैं कि वे भलाई के मार्ग पर हैं। लिहाज़ा कुछ हिन्दू अजमेर शरीफ़ की दरगाह पर चादर चढ़ाने के लिए दौड़े जाते हैं - जो पृथ्वीराज चौहान के खिलाफ़ -मुहम्मद गौरी का साथ देनेवाले गद्दार की मज़ार है। शिवाजी के हाथों मारे गये - कुख्यात लुटेरे और बलात्कारी अफ़ज़ल खान की कब्र पर भी हिन्दू माथा टेकते नज़र आएंगे। हिन्दुओं की हर किसी में अच्छाई ही देखने की मूलभूत प्रवृति जो उनको उपासना की हर एक पद्धति को अपनाने के लिए प्रेरित करती है - आज उसके विनाश का कारण बन गयी है।

जिस तरह आप यदि स्वास्थ के नियमों का पालन, पथ्यापथ्य, औषध इत्यादि का ध्यान नहीं रखेंगे तो आप नयी दिल्ली जैसी जगह पर डेंगू से नही बच सकते। उसी तरह, हमारे वेदों के मूलभूत विचारों को अगर हम ने पकड़ कर नहीं रखा, कोई सशक्त उपाय नहीं किया एवं चौकन्ने नहीं हुए तो बहुत आसानी से हिन्दू समाज भी संक्रमित हो जाएगा।

संक्षेप में, हिन्दू सिर्फ अच्छाई को ही पूजते हैं। वे इस अच्छाई को पूजा के हर स्वरुप में तलाशते हैं। वे इसके पीछे की कहानियों की परवाह नहीं करते इस प्रकार की पूजाओं की उत्पत्ति कैसे हुई और उनके पीछे क्या षड्यंत्र है , इस बारे में भी नहीं विचारते और अच्छाई ढूंढते रहते हैं।

इसलिए यद्यपि हिन्दुओं को बहुत सावधानी बरतनी चाहिए किन्तु यह भी सच्ची बात है कि हिन्दू धर्म के सिद्धांतों या व्यवहारों में ऐसी कथाएं और पुस्तकें समाहित नहीं हैं।

प्रश्न. ब्रह्मा का अपनी कन्या पर आसक्त होना और शिव का मोहिनी के पीछे भागना इत्यादि कथाओं के बारे में आप क्या कहेंगे ?

उ. इसका उत्तर भी वही है जो पहले था कि ये कथाएं हिन्दुत्व का हिस्सा नहीं हैं | ये वेदों में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती और वस्तुतः वेदों में इस स्वरुप की कोई भी कथा नहीं है | इस्लाम और ईसाईयत के विपरीत हिन्दू धर्म में इन कथाओं के लिए कोई स्थान है ही नहीं | हिन्दू धर्म पूर्णतः सिद्धांतों और आदर्श संकल्पनाओं पर आधारित है।

कथाएँ समय -समय बदलती रहती हैं, वो परिवर्तित की जा सकती हैं, उन में जोड़-तोड़ की जा सकती है, उन्हें दूषित किया जा सकता है, वे विस्मृत हो सकती हैं या उनमें कुछ भी किया जा सकता है | परंतु धर्म सनातन है अर्थात् शाश्वत है -जो पहले भी एक ही था और आगे भी वही होगा।

प्र. तो क्या आप का मतलब है कि राम, कृष्ण, विष्णु इत्यादि से हिन्दू धर्म नहीं बनता ?

उ. राम, कृष्ण विष्णु, शंकर, ब्रह्मा इत्यादि हिन्दू धर्म नहीं हैं बल्कि वे तो वैदिक धर्म के अनुयायी थे। वे हमारे आदर्श और अनुकरणीय हैं | हम उन्हें चाहते हैं क्योंकि उन्होंने महान उदाहरण प्रस्तुत किए जिनका अनुशीलन किया जाना चाहिए। उन्होंने वेदों को अपने आचरण में उतारा था और जनसमुदाय को प्रेरित करने के लिए और सही दिशा में चलाने के लिए ऐसे महा पुरुषों की आवश्यकता रहती है। परंतु, जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि धर्म शाश्वत है - अब से अरबों वर्ष बाद हो सकता है कि किन्ही दूसरे आदर्शों का अनुसरण किया

जा रहा होगा। राम या कृष्ण के जन्म से पूर्व के आदर्श कोई और होंगे और राम या कृष्ण को कोई जानता भी न होगा, पर धर्म तब भी था । यह शाश्वत वैदिक धर्म ही हिंदुत्व है और क्योंकि राम, कृष्ण और विष्णु ने इसका पालन पूर्णता से किया - वे हमारी संस्कृति, प्रेरणा, विचारों और संकल्पों का अनिवार्य अंग हैं।

प्रश्न. आप चतुर हैं, मैं समझ रहा था कि आप अश्लील कथाओं का विश्लेषण करेंगे और उनके अश्लील नहीं होने की सफाई पेश करेंगे | लेकिन आप तो इसे हिंदुत्व का हिस्सा मानने से ही इंकार कर रहें हैं |

उ. मैं केवल सत्यनिष्ठ हूं | और हिंदुत्व इस्लाम की तरह नहीं है कि जहां कुरान में मुहम्मद के जीवन की व्यक्तिगत घटनाओं का वर्णन किया गया है और उसे न्यायसंगत भी ठहराया गया है। कुरान और हदीसों में इन पर कहानियां भरी हुई हैं कि आयशा जब बच्ची थी तभी मुहम्मद ने उससे शादी क्यों की, क्यों उस ने अपनी पुत्र-वधू से शादी की इच्छा ज़ाहिर की और वास्तव में बिना शादी किए ही सम्बन्ध रखे (दावा किया कि शादी आसमान में हो गई है !) क्यों पैगम्बरों के लिए सामान्य मुस्लिमों से ज्यादा शादियां कर सकने का ख़ास प्रावधान है, वगैरा, वगैरा –| यह कहानियां संसार के अंत तक यह बताने के लिए प्रस्तुत नहीं रहेंगी कि किसने अल्लाह की आखिरी किताब उतारी और न ही वे कोई बहुत उम्दा उदाहरण ही पेश करती हैं लेकिन (किन्तु) इन आयतों को मुहम्मद का चरित्र बचाने के वास्ते गलत करार देकर नकारने के बजाए धर्मांध मुसलमानों ने इन भद्दी आयतों को मुहम्मद के चरित्र को बेहतर और उम्दा बनाने की प्रक्रिया का भाग बताकर सही दिखाने की कोशिश की है।

इसी प्रकार ईसाई हैं, जो ये मानने के बजाए कि बाइबल में मनघडंत कहानियां भरी हुई हैं - ईसा मसीह को संसार का एकमात्र तारणहार बताते हैं।

हिंदुत्व की आधारशिला बहुत दृढ़ है और ऐसी क्षुद्र कहानियों से वह लडखडाई नहीं जा सकती। जिन बनावटी कथाओं को हम पहले ही नकार चुके हैं, उन्हें प्रस्तुत करना आपके कपट को प्रकट कर रहा है। दिखाएँ कि, Vedic Religion in brief और What is Vedic Religion में क्या गलती है ?

आप कुछ भी गलत नहीं दिखा सकते और इसीलिए हमारा दावा है कि वैदिक धर्म या हिंदुत्व ही एकमात्र स्वीकार किए जाने योग्य धर्म है |

इस सब के बावजूद, झूठी कुरान और छद्म बाइबल के असभ्य पाठों के प्रत्येक अक्षर का समर्थन करनेवालों द्वारा शाश्वत सनातन वैदिक हिन्दू धर्म पर उंगली उठाने की धृष्टता किए जाना घोर खेद का विषय है।

प्रश्न. वेदों में अभद्र वर्णन होने के बारे में आप क्या कहेंगे ?

उ.एक भी वेद मंत्र ऐसा दिखाएँ जिसमें भद्दापन हो या चारों वेदों में से एक भी अश्लील प्रसंग निकल कर दिखा दें। ग्रिफिथ या मैक्स मूलर के अनुवादों पर मत जाइए - वे मूलतः धर्मांतरण के विषाणु ही थे। शब्दों के अर्थ सहित किसी भी वेद मंत्र को अशिष्ट क्यों माना जाए ? - इसका कारण बताएं | अब तक एक भी ऐसा मंत्र कोई नहीं दिखा सका। ज्यादा से ज्यादा, लोग सिर्फ़ कुछ नष्ट बुद्धियों के उलजुलूल अनुवादों की नक़ल उतार कर रख देते हैं, यह जाने बिना ही कि वे इस तरह के बेतुके अर्थों पर पहुंचे कैसे ? सभी की स्पष्टता के लिए - चारों वेदों में किसी प्रकार की अभद्रता, अवैज्ञानिकता या अतार्किकता का लवलेश भी नहीं है|

प्रश्न. हिन्दू पुराणों में से उत्सवों का पालन करते हैं और पुराणों में यह अशालीन कथाएं हैं, फ़िर हिंदुत्व को इन कथाओं से अलग कैसे मानेंगे ?

उ. यह तर्क व्यर्थ है क्योंकि उत्सव धर्म से प्रेरित सामाजिक क्रिया कलाप है - अपने आप में धर्म नहीं है | उत्सव और उनकी विधियाँ भारत में दो-दो किलोमीटर के फ़ासले पर बदलती जाती हैं - इस वैविध्य को जहां तक वेदानुकूल है - उत्साहित किया गया है | हिन्दू लोग त्यौहारों को सामाजिक प्रसंग की तरह लेते हैं ताकि अपने आदर्शों के प्रति सम्मान प्रकट कर सकें और अच्छाई के प्रति कृतसंकल्प हो सकें | त्यौहारों को मनाने का स्वरुप हमेशा समय, स्थान और समाज के अनुसार बदलता रहता है। समय-समय पर स्वरुप बिगड़ भी जाता है पर इसका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं, जो हमेशा शाश्वत बना रहता है। किसी भी उत्सव में इन अश्लील कहानियों का पाठ नहीं किया जाता बल्कि अपनी श्रद्धा और वचन बद्धता को प्रदर्शित करने के लिए इन दिनों संयम का पालन किया जाता है।

प्रश्न. तब फ़िर ये कथाएं आपकी संस्कृति का हिस्सा क्यों हैं ?

उ. किसने कहा कि यह कहानियां हमारी संस्कृति का हिस्सा हैं ? जन्मना ब्राह्मण धार्मिक ग्रंथों के सबसे नजदीक हैं। अगर ये हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग होती,तो यह कैसे कहा जा सकता है कि -

१. ब्राह्मण समाज (इस लेख में ब्राह्मण से मेरा आशय जन्मना ब्राह्मण से है।) मात्र भारत में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में सर्वाधिक एक पत्नीव्रती समाज है।

२. कई ब्राह्मण ब्रह्मचर्य और आत्म- संयम का पालन उस स्तर तक करते हैं जिसे अरबी मानसिकता वाले शायद अस्वाभाविक मानें |

३. किसी ब्राह्मण ने कभी काशी या मथुरा में ऐसा कोई यज्ञ संयोजित नहीं किया - जिसमें हिंसा, असभ्यता या अश्लीलता समाविष्ट हो |

४. जैसा कि इन गलत कथाओं में प्रचलित किया गया है, कोई भी ब्राह्मण इस तरह रखैल नहीं रखता या व्यभिचारी नहीं है |

इन कथाओं को संस्कृति का हिस्सा बनाने के बदले इन से उपेक्षा बरती गई है, इन्हें अस्वीकार किया गया है या वैदिक धर्म की परिधि (जो लेख के पहले तीन बिन्दुओं में वर्णित हैं |) में इनका अलंकारिक अर्थ लिया गया है।

प्रश्न. बहुत से नकली गुरुओं के सेक्स - स्कैंडल (अनैतिक आचरण) में फंसे होने की खबरें आती रहती हैं ?

उ. अगर इस तरह की अनर्गल बातें हिन्दू धर्म का हिस्सा होती, तो इसे "स्कैंडल" (कलंकपूर्ण कृत्य) कहा ही नहीं जाता। किसी पाखंडी गुरु की ऐसी करतूतें सामने आते ही, अन्य किसी भी अपराधी की तरह ही समाज में उसका कड़ा निषेध किया जाता है। और यदि हिन्दू धर्म में किसी भी तरह की लम्पटता का कोई स्थान होता तो यह खबर सुर्ख़ियों में आती ही नहीं बल्कि यह तो समाज में व्याप्त एक सामान्य बात होती ! मिसाल के तौर पर इरान जैसे देश में किसी इमाम के मुता या अस्थायी विवाह कर लेने को कोई चर्चा का विषय नहीं बनाता क्योंकि वहां मुता अनिवार्यतः समाज का हिस्सा है। जिस तरह यह नहीं कहा जा सकता कि इस्लाम औरतों के बिकिनी शो को जायज़ ठहराता है चूँकि एक अरब महिला ने मिस अमेरिका का ख़िताब हासिल कर लिया है, उसी तरह किसी झूठे गुरु के कारनामों से हिन्दू धर्म का कोई वास्ता नहीं है। इसके विपरीत, उसके दुष्कृत्यों के लिए उसे निन्दित किए जाने की वास्तविकता से यह प्रकट होता है कि इस तरह के विकारों का हिन्दू धर्म में कोई स्थान नहीं है।

प्रश्न. मुस्लिम भी उन सब का अनुसरण नहीं करते, जिनको आप अपनी साइट पर नाम धरते रहते हैं, फ़िर यह दोहरा मापदंड क्यों ?

उ. कृपया हमारे लेखों को ज़रा ध्यानपूर्वक पढ़िए। सामान्यतः हमने कभी भी सम्पूर्ण मुस्लिम समाज या मुहम्मद को निन्दित नहीं किया। हम तो सिर्फ़ नई कुरान और हदीसों को दोषी मानते हैं और उन कठमुल्लाओं या उन्मादियों को निंदनीय मानता हैं, जो इन किताबों (नई कुरान और हदीसों) के प्रत्येक शब्द को बिलकुल सही और अंतिम मानते हैं। अगर ये धर्म जुनूनी यह मान लें कि कुरान या हदीस की वह सभी आयतें जो आपत्तिजनक हैं (अश्लील, मुहम्मद को कलंकित करने वाली, कामुकता के लिए गुलामी को ज़ायज ठहरानेवाली, जिस लड़की से शारीरिक सम्बन्ध रहा हो उस की माँ से भी शादी की इजाजत, गैर - मुस्लिमों के लिए दोज़ख की व्यवस्था, महिलाओं की बुद्धि को आधा ही आंकना, स्त्रियों को बांदी रख लेने पर कोई पाबन्दी न होना, इत्यादि, इत्यादि -) इस्लाम का हिस्सा नहीं हैं और उन्हें ख़ारिज कर देना चाहिए, तो हमें इस्लाम पर बिलकुल कोई आपत्ति नहीं होगी बल्कि हदीसों और कुरान की अनुचित आयतों को निकल देने पर इस्लाम वैदिक धर्म की ही शाखा बन जाएगा |

प्रश्न. आपका सिद्धांत विचित्र है, हिन्दू जो भी करें आप उसका समर्थन कर रहे हैं और फ़िर भी उन सभी कथाओं को अस्वीकार कर रहें हैं जो हिन्दुओं के आचरण का आधार हैं ?

उ. १.हिन्दुओं के द्वारा कुछ भी किए जाने को मैंने कभी उचित नहीं ठहराया। हिन्दुओं की कार्य प्रणाली में भी छिद्र हैं अन्यथा कैसे ये बर्बर विदेशी पंथ भारतवर्ष में सेंध लगा पाते? वास्तविक हिन्दू धर्म जो वेदों पर आधारित है (वैदिक धर्म) और जिसे हम आज अज्ञानतावश अपनाये बैठे हैं - इन दोनों में निश्चित तौर पर अंतर है।

२.पर यह फर्क हिन्दू धर्म के नहीं बल्कि उसके अनुगामियों के दोष इंगित करता है | मैं जाकिर नाइक से एक बिंदु पर सहमत हूं कि ' कार की परख उसके चालक से नहीं, उसके इंजिन से की जानी चाहिए | इसी तरह, हिन्दुत्व का मूल्यांकन वेदों से और उसके मूलभूत सिद्धांतों से किया जाना चाहिए ना कि गलत अनुगामियों से या मिथ्या कथाओं से - जो बाद में गढ़ ली गईं |

३.यह सही है कि आज के प्रचलित स्वरुप में हिन्दू प्रथाओं में (सामान्यतः) कई खामियां हैं, जैसे- जन्मगत जाति व्यवस्था का होना जो समाज को खंडित कर रही है |

- अपने मूलाधार वेदों और वैदिक धर्म की अवहेलना करना |

- ऊपरी दिखावे पर भरोसा करना और हर किसी पर आसानी से विश्वास करने की प्रवृत्ति |

- झूठ और अधर्म से सख्ती से निपटने में बचते रहने की आदत |

- लव जिहाद के बढ़ते खतरे, धर्मांतरण के वायरस, छद्म धर्मनिरपेक्षता की मनोवृत्ति, इत्यादि की तरफ़ निष्क्रिय रवैया रखना |

- अपने धर्म के मूल और उसके तत्वों को जानने में कम रुझान रखना, इत्यादि हिन्दुओं की दुर्दशा के कई कारण हैं |

निश्चित तौर पर हम इन सभी से छूटने का प्रयास कर रहे हैं ताकि धर्मांतरण के वायरस से हम अपने धर्म का रक्षण कर सकें और वैदिक आदर्शों के समीप पहुँच सकें।

४.परंतु इन सब के बावजूद यह साफ़ है कि हिन्दू धर्म में कहीं या हिन्दुओं के दृष्टिकोण में - जिस किसी रूप में भी वे अपने धर्म का अनुपालन करते हैं, कहीं कोई अभद्रता का स्थान नहीं है | हो सकता है वे गुमराह हों, अनभिज्ञ हों, आसानी से ठगे जा सकते हों, विरुद्ध समीक्षा न कर पाते हों, हद से ज्यादा सरल हों पर वे धर्म के प्रसंग में अश्लील या अशिष्ट नहीं हैं। कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं जो निर्लज्जता और फूहड़ता में ही लिप्त रहते हों जैसे फ़िल्मी सितारे और उनके भक्तगण, लेकिन इस में उनके हिन्दू होने से कोई ताल्लुक नहीं है।

५.यह अग्निवीर की चुनौती है - उन सभी को जो हिन्दुत्व में अश्लीलता दिखाने का प्रयास कर रहे हैं - प्रमाणित करें कि वेद अश्लील हैं अथवा लेख के पहले तीन बिन्दुओं में वर्णित धर्म के लक्षणों को अश्लील प्रमाणित कर के दिखाएँ | ऐसी भूली- बिसरी पुस्तकें जिन्हें हिन्दू संजीदगी से नहीं लेते, उनकी रट लगाने से काम नहीं चलेगा क्योंकि हिन्दुत्व स्वतः ही किसी भी ऐसी बेहूदगी को निकाल फेंकता है - चाहे उसका स्रोत या कारण कोई भी रहा हो | तो इन फर्जी प्रचार के आयोजकों को उनकी आधारहीन कोशिशें बंद कर देनी चाहिए| इसके स्थान पर उनकी अपनी मज़हबी किताबों (आखिरी शब्द तक जिसे वे पूर्ण और अंतिम मानते हैं|) के उन अंशों की एक सूची बना कर तैयार करनी चाहिए जिनकी मौजूदगी में उनका मज़हब अश्लीलता से सराबोर हो रहा है और इस कलंक से बचने के लिए जिन्हें तुरंत निरस्त किए जाने की आवश्यकता है|

प्रश्न. वेद. लगता है कि आप पर वेदों का भूत सवार है। पर उन मतों के बारे में क्या कहेंगे जो वेदों को ईश्वरीय नहीं मानते और गीता तथा उपनिषदों के बारे में क्या कहना चाहेंगे ?

उ. १. कृपया Vedic Religion in Brief और what is Vedic Religion को ध्यान से पढ़ें साथ ही लेख की शुरुआत में दिए गये धर्म के ११ लक्षणों का भी पुनरावलोकन करें |जो मत या पंथ वेदों के ईश्वरीय होने में संदेह करते हैं वे भी इन्हें अपनाये हुए हैं।

२.जिन मतों के बारे में आप का दावा है कि वे वेद विरोधी हैं दरअसल वेदों के नाम पर थोपी गई दुष्प्रथाओं का विरोध कर के अपरोक्षतया वे भी वेदों का ही अनुसरण कर रहे हैं।

३.कुरान और बाइबल की तरह वेद किसी काल्पनिक जन्नत को हासिल करने के लिए स्वयं को ईश्वरीय या दैवी घोषित नहीं करते| वेदों के अनुसार निरंतर सत्य का स्वीकार करने से और झूठ को त्यागते रहने से सत्य अपने आप स्पष्ट होता चला जाता है। मेरे लिए वेदों को ईश्वरीय मानने के तर्क और प्रमाण उपस्थित हैं | पर यदि कोई वेदों के ईश्वरीय होने में विश्वास नहीं करता है लेकिन वह पूर्वाग्रहों से रहित होकर अपनी समझ और मंशा का सही उपयोग करे तो वह वेदों का ही अनुकरण कर रहा है।

४.गीता और उपनिषद अद्भुत ग्रंथ हैं, देखा जाए तो गीता के उपदेशों का आधार यजुर्वेद का ४० वां अध्याय ही है | सभी प्रमुख उपनिषदें बौद्धिक खुराक का काम करती हैं, छः दर्शन और अन्य धर्म ग्रंथ भी इसी तरह हैं | हमारी उन पर श्रद्धा है और वहीं तक है जहां तक वे वेदों के अनुसार हैं। मसलन, अल्लोपनिषद किसी धर्मांतरण के विषाणु का बनाया हुआ एक ज़ाली उपनिषद है |

५.आप को गीता और उपनिषद में क्या अश्लील नज़र आया ? हिन्दुत्व पर जैसे- तैसे अश्लीलता थोपने की कुचेष्टा की बजाए अगर आप गीता के दूसरे और तीसरे अध्याय या इशोपनिषद के १७ मंत्रों का स्वाध्याय कर लें तो खरे अर्थों में यहीं पर आप ज़न्नत हासिल कर लेंगे | वैदिक बनें क्योंकि वेदों के अलावा अन्य कहीं धर्म नहीं है और हिन्दुओं के लिए मैं हिन्दुत्व के आधार को दुहराना चाहूंगा - कुछ भी और सब कुछ जो वेदों के ख़िलाफ़ है, धर्म नहीं है | अतः हिन्दुत्व सिर्फ़ नैतिकता,शुद्धता और चरित्र पर ही आधारित है |

सभी निष्ठावान और देशभक्त हिन्दुओं को हिन्दुत्व के इस मूलाधार का चहुँ ओर विस्तार करना चाहिए ताकि हम सफलतापूर्वक धर्मांतरण के वायरस के खतरे से उबार सकें।

अत मे इस देश की आजादी के बाद की सब से दुर्भाग्यपूर्ण राजनीति के कारण देश आज भी वर्ण व्यवस्था, ऊंच-नीच, जातिवाद, अगड़े-पिछड़े, धर्म सम्प्रदाय और मुफ्तखोरी के चंगुल में फसा पड़ा है। शिक्षा, स्वास्थ्य, विकास, ज्ञान-विज्ञान कुछ भी विषय हो, सब से पहले इन्ही

धार्मिक और जातिगत चश्मे में पहले देखा जाता है। कैसे देश को टुकड़े टुकड़े कर के बाँटा जाए, यह ज्यादा विचार वोटबैंक की नीति में किया जाता है।

जरूरत विवेक को जाग्रत करने की है। यही इस गीता अध्ययन का विषय भी है।

।।हरि ॐ तत सत ।। विशेष गीता 11.25 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.26-27॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥26।।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गै ॥27।।

"amī ca tvāṁ dhṛtarāṣṭrasya putrāḥ,
sarve sahaivāvani- pāla-saṅghaiḥ..।
bhīṣmo droṇaḥ sūta-putras tathāsau,
sahāsmadīyair api yodha-mukhyaiḥ"..।।26।।

"vaktrāṇi te tvaramāṇā viśanti,
daṁṣṭrā-karālāni bhayānakāni..।
kecid vilagnā daśanāntareṣu,
sandṛśyante cūrṇitair uttamāṅgaiḥ"..।।27।।

भावार्थ:

धृतराष्ट्र के सभी पुत्र अपने समस्त सहायक वीर राजाओं के सहित तथा पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, सूत पुत्र कर्ण और हमारे पक्ष के भी प्रधान योद्धा भी आपके भयानक दाँतों वाले विकराल मुख में तेजी से प्रवेश कर रहे हैं, और उनमें से कुछ तो दाँतों के दोनों शिरों के बीच में फ़ंसकर चूर्ण होते हुए दिखाई दे रहे हैं। (२६-२७)

Meaning:

And all the sons of Dhritaraashtra, with bands of warrior kings, and also Bheeshma, Drona, and also that son of Soota, along with our prime

warriors. They are rushing to enter into your mouths, with fearful fangs, wide open. Some appear with their skulls crushed, stuck between your teeth.

Explanation:

Shri Krishna had a surprise in store for Arjuna, even though Arjuna wanted him to stop showing his terrible form. Among all the scenes shown on the canvas of the cosmic form, Arjuna began to see the Mahabharata war. However, he saw things that had not happened so far. In other words, Shri Krishna was showing him the future.

So, this is the irony of the situation. When you try to avoid certain thoughts, what you very intensely try to avoid; that alone keeps coming. Similarly what Arjuna does not want to see Bhagavān's mouth; But what is happening is? the mouth becomes more and more prominent. And now he is getting a zoom vision; you know what is zoom vision; previously he saw only from distance; now he is getting a close up darśanam of Lord's mouth. Again remember, here Lord's mouth is what; symbolic of Kālam; And if you look upon kālam as the mouth of the Lord; what is the job of kālam? the mouth; keep on swallowing things; kālo jagat bhakṣakāḥ; lakṣmi sthōya taraṅga baṅga chapala vidhyut chalam jīvitham; kālaḥ is jagat bhakṣakāḥ. Maaya, Ishvara's great power, creates space and time. Space and time create the sense of separateness between us and the universe. Both space and time are interrelated. The larger the space, the more time it takes to go from one corner to another. A fish can traverse a bowl much faster than it can traverse a giant aquarium tank. Only Ishvara, who is beyond the notion of space and time, could show a scene that was to occur in the future, like a movie director who solely knows the outcome of a script.

Earlier, Shri Krishna had destroyed all notion of space, since it appeared that everyone and everything had congealed together in his cosmic form. Now, he began eliminating the notion of time. Arjuna could see the past,

present and future all at once in the cosmic form. He now saw the Paandava and the Kaurava armies in that scene. He had a special place of dislike for Karna, calling him “that son of a Suta”. Suta refers to one whose mother is a brahmin and father is a kshatriya.

So then, what was happening to all these warriors? This shloka continues further.

Arjuna continued to narrate the horrifying scene from the future state of the Mahabharata war. He now saw several warriors from both armies rushing to enter the numerous mouths of Ishvara’s cosmic form. He also saw Ishvara devouring these warriors, with the remnants of his meal stuck between the gaps of his teeth. Arjuna uses the word “choornit” meaning powder to highlight the force of Ishvara’s jaws and their impact on the warriors.

This gruesome scene serves to remind us of the ephemerality of the material world comprised solely of names and forms. If Ishvara can create the variety of names and forms in his pleasant form, he can also dissolve that variety in his terrible form. Arjuna saw this vision quite clearly, as did many people in the northeastern United States that were impacted recently by the most powerful hurricane in history. Ishvara’s power can level entire towns within minutes.

Another intriguing aspect of this shloka is that Ishvara’s cosmic form isn’t going after all the warriors, in fact, they themselves are rushing into his mouths. It reinforces the message given by Shri Krishna earlier. Ishvara does not favour or hate anyone. Every individual creates his own destiny by the fruit of his choices and actions. The Kauravas and Paandavas decided to engage in a war, so it was natural that many of them would end up dead when the war ended.

The Śhrīmad Bhāgavatam describes Bheeshma’s prayer to the Lord, when he lay on the bed of arrows at the end of his life:

sapadi sakhi-vacho niśhamya madhye nija-parayor balayo rathaṁ niveśhya

sthitavati para-sainikāyur akṣhṇā hṛitavati pārtha-sakhe ratir mamāstu (1.9.35)[v10]

“Let my mind meditate upon Arjun’s dear pal, Shree Krishna, who obeyed his friend’s command to drive the chariot to the center of the two armies, and while there, he shortened the lifespan of the opposing generals by his mere glance.” So, Bheeshma himself was aware that the consequence of fighting against the Supreme Lord Shree Krishna would be death.

The American poet, H.W. Longfellow wrote:

Though the mills of God grind slowly,

Yet they grind exceeding small;

Though with patience he stands waiting,

With exactness grinds he all.

All these descriptions are coming; be ready for these details; be ready to get over the fear of old age, death, disease; all of them by understanding that these are all integral part of life; the more we try to avoid, the more frightening it will be; better you meditate upon that aspect and understand that and get out of it.

Now, knowing that Shri Krishna could show him the future, Arjuna was curious to know whether he would win or lose. But he did not ask this question directly. He continued describing the scene, hoping that Shri Krishna would reveal it eventually.

।। हिंदी समीक्षा ।।

कठोउपनिषद का एक सूक्त है " यस्य ब्रह्म च क्षत्रम च उभे भवत ओदनः" अर्थात वह (परतत्त्व) जिसके लिए ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनो भोज्य पदार्थ (ओदन) मात्र हैं, और 'मृत्यु' जिसके महाभोज का एक रसाहार (उपसेचन) है। अतः ऐसे 'उसे' कौन जान पायेगा कि 'वह' क्या है और कहाँ निवास करता है?"

सृष्टि का जन्म जहां सुखद पहलू है वही संहार उस का भयानक रूप है, किन्तु संहार के बिना सृजन नही हो सकता। विश्वरूप परमात्मा का सौम्य रूप की पूजा करे किन्तु यह भी जान लेना चाहिये कि इस सृजन के पीछे संहार भी है। मृत्यु लोक से ब्रह्मलोक तक सब अपनी आयु एवम कर्मो का फल भोगते है एवम पुनःजन्म को प्राप्त होते रहते है, जब तक वह पूर्ण ब्रह्म में विलीन न हो जाये। यह ही काल चक्र है, जिस में जन्म, वृद्धि, विस्तार, क्षीणता एवम मृत्यु अर्थात पंच तत्व के देह का त्याग है। अपने जीवन काल मे मनुष्य यदि प्रकृति से जुड़ जाए तो अहम, कामना एवम लोभ के कारण वो वह सब प्राप्त करने की कोशिश करता है जिस पर उस का कोई अधिकार नही।

तो यह स्थिति की विडंबना है। जब आप कुछ विचारों से बचने की कोशिश करते हैं, तो आप जिस चीज से बचने की बहुत कोशिश करते हैं; वही बार-बार आती है। इसी तरह अर्जुन भगवान का मुंह नहीं देखना चाहता; लेकिन क्या हो रहा है? मुंह अधिक से अधिक प्रमुख होता जा रहा है। और अब उसे ज़ूम विजन मिल रहा है; आप जानते हैं कि ज़ूम विजन क्या है; पहले वह केवल दूर से देखता था; अब उसे भगवान के मुंह का नज़दीक से दर्शन हो रहा है। फिर से याद रखें, यहाँ भगवान का मुंह क्या है; कालम् का प्रतीक और यदि आप कालम् को भगवान के मुंह के रूप में देखते हैं; कालम् का काम क्या है? मुंह का कार्य चीजों को निगलते रहना, कालो जगत भक्षक: है।

ये सभी विवरण आ रहे हैं; इन विवरणों के लिए तैयार रहें; बुढ़ापे, मृत्यु, बीमारी के भय से उबरने के लिए तैयार रहें; यह समझकर कि ये सभी जीवन के अभिन्न अंग हैं; जितना अधिक हम इनसे बचने का प्रयास करेंगे, यह उतना ही अधिक भयावह होगा; बेहतर होगा कि आप इस पहलू पर ध्यान दें और इसे समझें और इससे बाहर निकलें।

अध्याय 9 परमात्मा कहते है कि भक्ति भाव से मुझे पत्र, पुष्प आदि जो भी समर्पण करते है मै उसे खा जाता हूँ। यहां विकराल काल रूप में परमात्मा वह समस्त चर- अचर, पृथ्वी, जल, अग्नि एवम वायु खाते हुए अर्जुन देख रहे है। परमात्मा काल से परे है किन्तु की

जिज्ञासा शांत करने के उसे वह दृश्य दिखाया जा रहा है जो वह जानना चाहता है। परमात्मा के अत्यधिक प्रेम के कारण अर्जुन की हर जिज्ञासा का अंत होना आवश्यक है।

युद्ध भूमि में विश्वरूप दर्शन में परमात्मा ने अर्जुन के मन मे छुपी जिज्ञासा को ध्यान में रखते हुए कहा था कि युद्ध के परिणाम एवम भविष्य को भी जो तू देखना चाहता है, वह भी देख। इसलिये विराट विश्वरूप काल के विराट भयानक स्वरूपं में सभी को ग्रसित करते हुए दिखते है और अर्जुन उस स्वरूप विकराल स्वरूप को देखते हुए कहते है।

कौरव कुल के समस्त वीर पुत्र आप के मुख में परिवेश कर रहे है, यहां इन की सहायता को आये राजा- महाराजा सब उनकी सेना, हाथियों से झुंड के झुंड आप खाते चले जा रहे है। यम के भाई जो विश्व को समाप्त करने की क्षमता रखते है, उन शस्त्रों को, हाथी, घोड़े, रथ, पैदल और यह चतुरंगिणी सेना सब को आप निगल रहे है कुछ तो आप के भयानक दांतो में बीच मे फस कर चूर चूर हो रहे है।

मै देख रहा हूँ कि सत्य एवम शौर्य में जिन के समकक्ष कोई नही है उन भीष्म एवम द्रोणाचार्य को भी आप ने खा किया है, सूतपुत्र- परमवीर कर्ण भी आप मे प्रविष्ट हो गए है। मेरे पक्ष के भी समस्त वीर, सेना आदि कचरे की भांति उड़ कर आप के मुख में प्रवेश कर रही है।

मै विश्वरूप में इस भयानक स्वरूप को देख देख कर भयभीत हो रहा हूँ। मेरा यह मोह एवम अभिमान सब नष्ट हो रहा है कि मै इन को मारने वाला हूँ। मेरा शोक करना निरर्थक ही था। मुझ पर कृपा करें और शांत हो।

यहाँ भीष्म, द्रोण और कर्ण का अलग से नाम लेनेका तात्पर्य है कि ये तीनों ही महान ज्ञानी, निष्काम कर्मयोगी एवम कर्तव्य से बंध कर युद्ध भूमि में आये थे। निष्काम कर्मयोगी एवम कर्तव्य पालन का अर्थ यह कदापि नहीं है आप सफल हो, किन्तु असफल होने पर आप की कीर्ति जीतने वाले से ज्यादा होती है। युद्ध चाहे अर्जुन जीता किन्तु कीर्ति में यह लोग ही अग्रणी है। काल के समक्ष सभी की गति एक समान होती है। कितना भी महान योद्धा जो स्वयं में काल बन कर अपने दुश्मनों पर कूद जाता है, वह स्वयं काल के समक्ष बौना या नगण्य ही सिद्ध होता है। अर्जुन युद्ध मे भविष्य जानना चाहता था, युद्ध मे भविष्य जानना चाहता था, युद्ध मे अजेय समझे जाने वाले तीन वीरो से उसे अपनी हार का भय था, उसे ईश्वर ने यह भी दिखा दिया कि उसे इन से भय करने की कोई आवश्यकता नही है।

श्रीमद्भागवतम् में भीष्म द्वारा भगवान से की गई प्रार्थना का वर्णन है, जब वे अपने जीवन के अंतिम समय में बाणों की शय्या पर लेटे थे:

सपदि सखी-वचो निष्म्या मध्ये निज-परयोर बलयो रथं निवेश्य

स्थितवती पर-सैनिकायुर अक्षना ह्तवती पार्थ-सखे रतिर् ममस्तु (1.9.35)[v10]

“मेरा मन अर्जुन के प्रिय मित्र श्री कृष्ण का ध्यान करे, जिन्होंने अपने मित्र की आज्ञा का पालन करते हुए रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में ले जाकर खड़ा कर दिया, और वहाँ रहते हुए उन्होंने अपनी दृष्टि मात्र से विरोधी सेनापतियों की आयु कम कर दी।” इसलिए, भीष्म स्वयं जानते थे कि परम भगवान श्री कृष्ण के विरुद्ध युद्ध करने का परिणाम मृत्यु होगी।

अमेरिकी कवि एच.डब्ल्यू. लॉन्गफेलो ने लिखा:

यद्यपि ईश्वर की मिलें धीरे-धीरे पीसती हैं,

फिर भी वे बहुत बारीक पीसती हैं;

यद्यपि वह धैर्य के साथ प्रतीक्षा करता है,

वह सटीकता के साथ सब कुछ पीसता है।

कुरुक्षेत्र के युद्ध धर्म युद्ध था या हार जीत का, इस का निर्णय नहीं हो सकता क्योंकि किसी भी पक्ष ने बिना छल के युद्ध नही किया एवम नियमो का उल्लंघन भी हुआ, यह यदि युद्ध था तो सिर्फ उन कर्मवीरों का जिन्होंने कर्तव्य पालन हेतु निष्काम भाव से युद्ध किया।

अर्जुन उस भयानक भक्षण के रूप में संहार कर्ता परमात्मा के स्वरूप में और क्या देख रहा है हम आगे पढ़ते है, किन्तु हमे गर्व के हमारी संस्कृति एवम धर्म मे जिस ने निसंकोच भाव से परमात्मा के सौम्य स्वरूप से सृष्टि के सृजक संहारक स्वरूप को परमात्मा के रूप में वर्णित किया, इस के व्यास जी को नमन करते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.26-27 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.28॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीराविशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥

"yathā nadīnāṁ bahavo 'mbu- vegāḥ,
samudram evābhimukhā dravanti..।
tathā tavāmī nara- loka- vīrā,
viśanti vaktrāṇy abhivijvalanti"..।।

भावार्थ:

जिस प्रकार नदियों की अनेकों जल धारायें बड़े वेग से समुद्र की ओर दौड़तीं हुयी प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार सभी मनुष्य लोक के वीर योद्धा भी आपके आग उगलते हुए मुखों में प्रवेश कर रहे हैं। (२८)

Meaning:

Like torrents of several rivers rush towards the ocean, so do those brave men of this earth run to your blazing mouths.

Explanation:

Putumayo, Caqueta, Vaupes, Guainea, Morona, Pastaza, Nucuray, Urituyacu, Chambira, Tigre, Nanay, Napo, and Huallaga. These are names of just a handful of 1100 rivers that feed the Amazon, the largest river in the world by volume. It covers almost 7 million square kilometres of land in South America and empties 300,000 cubic metres per second into the Atlantic Ocean. The most distant source of the Andes is a glacier on the western edge of South America, near the Pacific Ocean, on the other side of the continent.

Arjuna, on seeing the hordes of warriors rushing into Ishvara’s mouths, compares them to the water in a river rushing with great speed into the ocean. It reminds him of Shri Krishna’s description of the water cycle as a sacrifice when he was explaining karma yoga. A drop of water which originated from the ocean evaporates into the sky, falls down as rain into a

water body, and eventually finds its way into a flowing river that goes right back into its source, the ocean. At one point it thinks that it is rain, or it is a pond, a lake, a stream and so on, forgetting its true nature as water.

Arjun has comparison for death for two types of people, one who works as performance of duty and other works due to their lust, need and greed. Both have same life cycle with little difference.

He compares first with river and ocean. He says that there were many noble kings and warriors in the war, who fought as their duty and laid down their lives on the battlefield. Arjun compares them to river waves willingly merging into the ocean.

So, this is not a lot of the soldiers alone; but this is the lot of all the living beings; because all of them will have to be ultimately resolved; because life is nothing but avyaktha avastha and vyakthavastha. We have all come; we have to go back to the Lord; and again, punarapi jananam and punarapi maranam. This is the very course of life.

Similarly, we tend to think of ourselves as children, students, engineers, executives, rich people, poor people at different points in our lives, and forgetting that our journey is just a cycle that begins from Ishvara, the source, and ends back into that same source. So even though Arjuna was scared of Ishvara's monstrous form, he understood that there was nothing to be scared about destruction. It was a bona fide part of Ishvara's creative process.

Arjuna illustrates another aspect of this scene in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

परमात्मा के संहारक स्वरूप में सृष्टि का सृजन, यज्ञ, कर्म आदि सभी निहित है, इसलिये इस श्लोक पर जितना अधिक हम विचार करेंगे उतना अधिक उसमें निहित आनन्द हमें प्राप्त होगा।

जीवन - मृत्य के क्रम में जीव को दो प्रकार के उदाहरण में विश्वरूप दर्शन में व्यक्त हुए है, जिन में प्रथम वे लोग है जो अपना जीवन कर्तव्य पथ पर निछावर करते है और द्वितीय वे लोग जो जीव को अपनी आवश्यकताओं, राग - द्वेष और मोह में निछावर कर देते है। अर्जुन प्रथम प्रकार के लोगो के लिए कहते है कि युद्ध में कई महान राजा और योद्धा थे, जिन्होंने अपना कर्तव्य समझकर युद्ध लड़ा और युद्ध के मैदान में अपने प्राणों की आहुति दे दी। अर्जुन उनकी तुलना नदी की लहरों से करते हैं जो स्वेच्छा से समुद्र में विलीन हो जाती हैं।

तो यह केवल सैनिकों का भाग्य नहीं है; बल्कि यह सभी जीवों का भाग्य है; क्योंकि उन सभी को अंततः हल होना ही है; क्योंकि जीवन कुछ और नहीं बल्कि अव्यक्त अवस्था और व्यक्त अवस्था है। हम सभी यहाँ आए हैं; हमें भगवान के पास वापस जाना है; और फिर से पुनरापि जननम और पुनरापि मरणम। यही जीवन का वास्तविक क्रम है।

अर्जुन संहार के विभित्सक दृश्य की तुलना प्रकृति के स्वरूप में अपने सामने वाले दृश्य को देख कर कहते है वे किस प्रकार मुखों में प्रवेश करते हैं, जैसे चलती हुई नदियों के बहुत से जलप्रवाह बड़े वेग से समुद्र के सम्मुख हुए ही दौड़ते हैं - समुद्र में ही प्रवेश करते हैं, वैसे ही यह मनुष्यलोक के शूरवीर भीष्मादि आप के प्रज्वलित प्रकाशमान मुखों में प्रवेश कर रहे हैं।

मूल में जल मात्र समुद्र का है। वही जल बादलों के द्वारा वर्षा रूप में पृथ्वी पर बरस कर झरने, नाले आदि को लेकर नदियों का रूप धारण करता है। उन नदियों के जितने वेग हैं, प्रवाह हैं, वे सभी स्वाभाविक ही समुद्र की तरफ दौड़ते हैं। कारण कि जल का उद्गम स्थान समुद्र ही है। किंतु नदिया पर्वतों से निकलती है और विभिन्न मार्गो से चल कर समुंद्र में मिल जाती है। कुछ यदि यह समझे की नदियों का उद्गम पर्वत है, तो उन्हे ज्ञात होना चाहिए कि वास्तविक उन का उद्गम समुंद्र ही है, जिस का पानी सूर्य की गर्मी से वाष्प हो कर वायु द्वारा पर्वतों तक पहुंचाया और वातावरण द्वारा बर्फ के रूप में जमा किया जाता है।

समुद्र से मिलन के लिए आतुर, उस की ओर वेग से बहने वाली नदियों की उपमा इस श्लोक में दी गई है। जिस स्रोत से नदी का उद्गम होता है, वहीं से उसे अपना विशेष व्यक्तित्व प्राप्त हो जाता है। किसी भी एक बिन्दु पर वह नदी न रुकती है और न आगे बढ़ने से कतराती ही है। अल्पमति का पुरुष यह कह सकता है कि नदी की प्रत्येक बूँद समीप ही किसी स्थान विशेष की ओर बढ़ रही है। परन्तु यथार्थवादी पुरुष जानता है कि सभी नदियां

समुद्र की ओर ही बहती जाती हैं और वे जब तक समुद्र से मिल नहीं जाती तब तक मार्ग के मध्य न कहीं रुक सकती हैं और न रुकेंगी। समुद्र के साथ एकरूप हो जाने पर विभिन्न नदियों के समस्त भेद समाप्त हाे जाते हैं।नदी के जल की प्रत्येक बूंद समुद्र से ही आयी है। प्रथम मेघ के रूप में वह ऊपर पर्वतशिखरों तक पहुंची और वहाँ वर्षा के रूप में प्रकट हुई नदी तट के क्षेत्रों को जल प्रदान करके खेतों को जीवन और पोषण देकर वे बूंदें वेगयुक्त प्रवाह के साथ अपने उस प्रभव स्थान में मिल जाती हैं, जहाँ से उन्होंने यह करुणा की उड़ान भरी थी। इसी प्रकार अपने समाज की सेवा और संस्कृति का पोषण करने तथा विश्व के सौन्दर्य की वृद्धि में अपना योगदान देने के लिए समष्टि से ही सभी व्यष्टि जीव प्रकट हुए हैं, परन्तु उनमें से कोई भी व्यक्ति अपनी इस तीर्थयात्रा के मध्य नहीं रुक सकता है। सभी को अपने मूल स्रोत की ओर शीघ्रता से बढ़ना होगा। समुद्र को प्राप्त होने से नदी की कोई हानि नहीं होती है। यद्यपि मार्ग में उसे कुछ विशेष गुण प्राप्त होते हैं, जिनके कारण उसे एक विशेष नाम और आकार प्राप्त हो जाता है तथपि उसका यह स्वरूप क्षणिक है। यह समुद्र के जल द्वारा शुष्क भूमि को बहुलता से समृद्ध करने के लिए लिया गया सुविधाजनक रूप है।

जीवन से मृत्यु तक का काल चक्र इस उपमा में समाहित है। युद्ध मे शामिल लोक असदाहरण योद्धा भीष्म, द्रोण एवम कर्ण आदि शामिल है, इसलिये नरलोकवीरा विश्लेषण का कहा गया, और नदी का प्रवाह सभी को बहा के ले जाता है, इसलिये नदी और समुन्दर का दृष्टांत दे कर अर्जुन अपने भाव व्यक्त कर रहे है। इस के अतिरिक्त "अभिविज्वलित" शब्द समुन्द्र के समान जल अर्थात अग्नि से भरा हुआ है, भगवान से समस्त मुख सब ओर से ज्योतिर्मय अग्नि से भरे हुए है। इसलिये यह शूरवीर इस मे प्रवेश करते हुए अग्नि से ज्योतिर्मय होकर अपने बाह्य स्वरूप को भस्म करते हुए, आप मे समाहित हो रहे है। काव्य रचना में मृत्यु के स्वरूप में ही मोक्ष की सुंदर अभिव्यक्ति महृषि व्यास ही रच सकते है।

आगे अर्जुन अन्य उपमा से इसे स्पष्ट करते है, जिसे हम आगे पढेंगे।

।। हरि ॐ तत सत ।। 11.28।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.29॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगाविशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥

"yathā pradīptaṁ jvalanaṁ pataṅgā,
viśanti nāśāya samṛddha- vegāḥ..।
tathaiva nāśāya viśanti lokās,
tavāpi vaktrāṇi samṛddha- vegāḥ"..।।

भावार्थ:

जिस प्रकार पतंगे अपने विनाश के लिये जलती हुयी अग्नि में बड़ी तेजी से प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार यह सभी लोग भी अपने विनाश के लिए बहुत तेजी से आपके मुखों में प्रवेश कर रहे हैं। (२९)

Meaning:

Like moths enter a blazing fire with great speed for their destruction, so also do these people enter your mouths with great speed for their destruction.

Explanation:

In the previous shloka, Arjuna gave the example of rivers flowing into the ocean to indicate the ultimate dissolution of all names and forms back to their source, Ishvara. Some may raise a doubt here. They may say, water is inert so naturally it goes wherever the flow takes it.

Now, there were also many others, who fought out of greed and self-interest. Arjun compares them with moths being lured ignorantly into the incinerating fire. But in both cases, they are marching rapidly toward their imminent death.

Moths that rush towards a flame and are eventually destroyed. Sant Jnyaneshwar gives the example of water droplets evaporating on a hot iron rod in his commentary.

By showing the process of destruction at such a grand scale, Shri Krishna also wants to remove Arjuna’s fear of death. Since the physical body goes away after death, there is no question of pain once we die. We are scared not about the pain of death, but about losing all of our identity as a so-and

so, with all his possessions and attachments. The name-and-form to which we have become attached, and its network of relationships with other names and forms, is what ultimately gets dissolved.

But when we know that death is nothing but a return of our name and form into that of Ishvara's, our fear of death will go away, or at least, diminish to a great extent. In fact, when we become a devotee of Ishvara, death loses its unpleasantness because now it means a return to the original source of the universe. We begin to lead our lives with a great degree of courage and fearlessness, because we know how it will all end.

।। हिंदी समीक्षा ।।

जीवन मे अनेक गूढ़ तत्व ऐसे है जिन्हें जीव न तो समझ सकता एवम न ही देख सकता है, इस के लिये स्मार्त एवम वैष्णव दोनों मत में कहा गया है " नास्ति तत्वों गुरोः परम्" अर्थात जीव गुरु की दया से सहज में ही अगम्य तत्वों को जान लेता है।

पूर्व श्लोक में समुन्द्र में नदी के प्रवाह के सहज उदाहरण के बाद, मृत्यु के भयानक स्वरूप में छुपी शांति और मुक्ति के साथ, प्रेम से अमृतत्व में डूबी उपमा कीट-पतंगों की ज्वाला के साथ की गई है।

ऐसे कई लोग भी थे, जो लालच और स्वार्थ के कारण लड़े थे। अर्जुन उनकी तुलना पतंगों से करते हैं, जिन्हें अनजाने में जलती हुई आग में फंसा दिया जाता है। लेकिन दोनों ही मामलों में, वे अपनी आसन्न मृत्यु की ओर तेज़ी से बढ़ रहे हैं।

अर्जुन कह रहे है जैसे बड़ी भारी प्रकाशवान अग्नि की ज्वाला को देख कर बड़े वेग से नाश होने से अनभिज्ञ पतंगे प्रवेश करते है वैसे ही यह सभी लोग कौरव दल के एवम कुछ हमारे दल के भी सात्यकि विराट आदि ज्वाला निकलते हुए आप के भयानक मुख में प्रवेश ने दौड़ते हुए अपने नाश के लिये प्रवेश कर रहे हैं।

यहाँ यह दर्शाने के लिए कि जीवधारी प्राणी भी अपने स्वभाव से विवश हुए मृत्यु के मुख की ओर बरबस खिंचे चले जाते हैं। भोग भोगने और संग्रह करनेमें ही तत्परतापूर्वक लगे रहना और मन में भोगों और संग्रह का ही चिन्तन होते रहना, यह बढ़ा हुआ सांसारिक वेग है। व्यासजी को सम्पूर्ण प्रकृति ही धर्मशास्त्र की खुली पुस्तक प्रतीत होती है। वे अनेक

घटनाओं एवं उदाहरणों के द्वारा इन्हीं मूलभूत तथ्यों को समझाते हैं कि अव्यक्त का व्यक्त अवस्था में प्रक्षेपण ही सृष्टि की प्रक्रिया है और व्यक्त का अपने अव्यक्त स्वरूप में मिल जाना ही नाश या मृत्यु है।

संत ज्ञानेश्वर जी कहते है कि जैसे तप्त लोह में जल की बूंदे तुरंत सूख जाती है, वैसे ही आप के विशाल मुख में तप्त अग्नि में यह विशाल कौरव और पांडव की सेना स्वतः ही कूद कूद कर प्रविष्ट हो रही है और तुरन्त ही राख हो रही है। यह एक नदी के प्रवाह की भांति प्राकृतिक सा प्रतीत हो रहा है।

जब हम इस भयंकर या राक्षसी प्रतीत होने वाली मृत्यु को यथार्थ दृष्टिकोण से समझने का प्रयत्न करते हैं, तब वह छद्मवेष को त्यागकर अपने प्रसन्न और प्रफुल्ल मुख को प्रकट,करती है।अर्जुन के मानसिक तनाव का मुख्य कारण यह था कि उसने कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि पर होने वाले बहुत बड़े नाश का शीघ्रतावश त्रुटिपूर्ण मूल्यांकन कर लिया था। उसके उपचार का एकमात्र उपाय यही था कि उसकी दृष्टि उस ऊँचाई तक उठाई जाये, जहाँ से वह, एक ही दृष्टिक्षेप में, मृत्यु की इस अपरिहार्य प्रकृतिक घटना को देख और समझ सके। श्रीकृष्ण ने उसका यही उपचार किया। किसी भी घटना का समीप से पूर्ण अध्ययन करने पर उसके भयानक फनों के विषदन्त दूर हो जाते हैं

जब मनुष्य की विवेकशील बुद्धि अज्ञान से आवृत्त हो जाती है, केवल तभी उसके आसपास होने वाली घटनाएं उसका गला घोंटकर उसे धराशायी कर देती हैं। जैसे नदियां समुद्र में तथा पतंगे अग्नि के मुख में तेजी से प्रवेश करते हैं, वैसे ही सभी रूप अव्यक्त में विलीन हो जाते हैं। मृत्यु की घटना को इस प्रकार समझ लेने पर मनुष्य उससे भयमुक्त होकर अपने जीवन का सामना कर सकता है क्योंकि उसके लिए सम्पूर्ण जीवन का अर्थ परिवर्तनों की एक अखण्ड धारा हो जाती है।इसलिए काल की क्रीड़ा के रूप में मृत्यु एक डंकरहित घटना बन जाती है।

और इसलिए अर्जुन भगवान के मुख द्वारा प्रदर्शित काल तत्व को देखता है जो युद्ध के मैदान में सैनिकों सहित अनेक जीवों को खा या निगल रहा है। यदि अर्जुन के पास संपूर्ण दृष्टि होती; यदि अर्जुन ने विश्व रूप को एक अभिन्न अंग के रूप में देखा होता, जिसमें जन्म और मृत्यु दोनों विश्व रूप के दो पहलू होते; तो वह दोनों को मंगलम के रूप में देखता। यदि मुझे संपूर्ण दृष्टि मिल गई होती; चूंकि दोनों भगवान के पहलू हैं, मैं कभी भी एक को स्वीकार और एक को अस्वीकार नहीं कर सकता; मुझे चाहिए कि जन्म भी भगवान

है; मंगल स्वरूप; मृत्यु भगवान मंगल स्वरूप है। मिलन भी भगवान मंगल स्वरूप है; वियोग भी संग है, मंगलम है; वियोग भी मंगलम है; वृद्धि भी मंगलम है; क्षय भी मंगलम् है; स्वास्थ्य भी मंगलम् है; और अस्वस्थता भी मंगलम् है।

संसार को देखने का अन्य दृष्टि कोण संसार में जन्म - मरण को दुख का कारण भी देखा जाता है, फिर एक संन्यासी की भांति प्रत्येक कार्य में अमंगल दिखेगा जिस से विरक्ति भाव उत्पन्न होगा।

अगले श्लोक में इस मृत्यु को उस के सम्पूर्ण भयंकर सौन्दर्य के साथ गौरवान्वित करते हुए अर्जुन क्या कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.29।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.30॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रंभासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥

"lelihyase grasamānaḥ samantāl,
lokān samagrān vadanair jvaladbhiḥ..।
tejobhir āpūrya jagat samagraṁ,
bhāsas tavogrāḥ pratapanti viṣṇo"..।।

भावार्थ:

हे विश्वव्यापी भगवान! आप उन समस्त लोगों को जलते हुए सभी मुखों द्वारा निगलते हुए सभी ओर से चाट रहे हैं, और आपके भयंकर तेज प्रकाश की किरणें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आच्छादित करके झुलसा रहीं है। (३०)

Meaning:

Devouring everyone from all sides, through your fiery mouths, you are licking (your lips). Your terrible rays, filling the universe with brilliance, are burning everything, O Vishnu.

Explanation:

When we are enjoying a particularly tasty meal, we cannot resist licking our fingers and lips. It is a sign that we would like to have more. Also in Indian culture, wasting of food is not allowed, so we lick our fingers to ensure that nothing goes to waste. In the same way, Ishvara in his cosmic form thoroughly enjoys the process of destruction. He also ensures that nothing is spared, nothing goes to waste. Everything and everyone ultimately is destroyed.

The Lord controls the world with grandiose forces of creation, maintenance, and annihilation. At present, he is being perceived by Arjun in this mode as the all-devouring force that is engulfing his friends and allies from all sides. Viewing the apparition of future destined events in the cosmic form of God, Arjun sees his enemies being wiped out in the imminent battle. He also sees many of his allies in the grip of death.

All the other people are crying and what is Bhagavān's attitude; does he feel sympathy for those people, who are crying because of the death of near and dear ones. Bhagavān does not seem to have any sympathy at all. It looks as though Bhagavān wants to tell all the people, if you did not understand the law of birth and death; and if you did not become mature enough to accept birth and death, it is your problem that you are suffering; do not blame me at all.

Now, we may ask, isn't it cruel to derive pleasure from destruction? It may be true from a relative standpoint, but not from the absolute standpoint. If old trees and animals do not die in a jungle, new ones cannot be created. If old businesses aren't allowed to fail, new startups cannot bring innovative products to the market. If no one dies, the earth is unable to sustain the needs of an infinitely growing population.

Destruction is a necessary part of life. If we think like an individual, destruction is painful. If we think like Ishvara, destruction is enjoyable. It also

creates dispassion towards the miseries of our human body, since we know it will be destroyed to create something new.

Arjuna continues to describe what he sees. He says that the rays of fire that are emitted by Shri Krishna are burning up the universe with their heat. He wants to take those fiery rays away. Since Shri Krishna has not yet listened to him, he asks him a question with the hope of gaining attention, and potentially, bringing back the form of Shri Krishna that he loves.

।। हिंदी समीक्षा ।।

संस्कृत का श्लोक है "मृत्योर्मृत्यु नमाम्यहम" अर्थात जिस में मृत्यु की मृत्यु को पा लिया, वही शूरवीर है, वही नृरसिंह है। क्योंकि मनुष्य का मोह अर्थात राग ही उसे मृत्यु से डरा कर रखता है। मोह ही महामृत्यु है जिस से मनुष्य में भय उत्पन्न होता है। इसे ज्ञान की तलवार से जिस ने मार दिया है, वही शूरवीर है। परमात्मा के संहारक अवतार में अर्जुन यद्यपि भय से कांप भी रहा हो किन्तु वह भविष्य के उस सत्य को देख रहा है, जहां मृत्यु की ओर आकर्षित हो कर पतंगों की भांति लोग उसे अंगीकृत कर रहे है। प्रथम अध्याय में अर्जुन जिस मोह से ग्रस्त हो कर भय से कांप रहा था, वह अपने और स्वजनों की मृत्यु का मोह रूपी भय ही था।

भगवान सृष्टि, पालन और संहार की महान शक्तियों से संसार को नियंत्रित करते हैं। वर्तमान में, अर्जुन उन्हें इस रूप में सर्वभक्षी शक्ति के रूप में देख रहे हैं जो हर तरफ से उनके मित्रों और सहयोगियों को अपने में समाहित कर रही है। भगवान के ब्रह्मांडीय रूप में भविष्य में होने वाली घटनाओं के आभास को देखते हुए, अर्जुन आसन्न युद्ध में अपने शत्रुओं का नाश होते हुए देखता है। वह अपने कई सहयोगियों को भी मृत्यु की चपेट में देखता है।

बाकी सभी लोग रो रहे हैं और भगवान का क्या रवैया है; क्या उन्हें उन लोगों के प्रति सहानुभूति है, जो अपने प्रियजनों की मृत्यु के कारण रो रहे हैं। भगवान को ज़रा भी सहानुभूति नहीं दिखती। ऐसा लगता है कि भगवान सभी लोगों से कहना चाहते हैं, अगर आप जन्म और मृत्यु के नियम को नहीं समझ पाए; और अगर आप जन्म और मृत्यु को स्वीकार करने के लिए परिपक्व नहीं हुए, तो यह आपकी समस्या है कि आप दुःख उठा रहे हैं; मुझे बिल्कुल भी दोष न दें।

अर्जुन देख रहे है, परमात्मा अपने उग्र रूप में मुख से ज्वाला उगलते हुए, जो भी खाद्य या अखाद्य पदार्थ उस के सामने आ रहा है, उस का भक्षण भूखे भिक्षुक की भांति, अपनी लपलपाती जिव्हा से होठो को चाट चाट कर रहे है। अर्जुन को यह परमात्मा की भूख बढ़ती ही दिख रही है, मानो एक घूंट में पूरा समुद्र पीना चाहती हो या सम्पूर्ण ब्रह्मांड को अपने दाढ़ों में दबाना चाहती हैं। संहार करुणा या दया नही देखता, उसे विनाश में रुचि, भूखे पेट मे स्वादिष्ट भोजन चटकारे मार कर खाना जैसा है, इसलिये नियति को क्रूर बोला गया है।

सृष्टि के सृजन से संहार तक परमात्मा ही विभिन्न विभूतियो में समाया है जिसे हम ब्रह्मा, विष्णु एवम महेश के नाम से जानते है। हर घटना कर्म पुर्निधारित है जो चल चित्र में एक के बाद एक प्रकट हो रहा है। जो व्यतीत हो गया वो भूत काल जो चल रहा है वो वर्तमान काल एवम जो आगे आएगा वो भविष्य काल। किन्तु चलचित्र के निर्माता के लिये वो पूर्ण काल रहित चल चित्र ही है। वस्तुत यह श्लोक सृष्टि, स्थिति और संहार के तीन कर्ताओं के पीछे के सिद्धान्त को स्पष्ट करता है। यद्यपि हम इन तीनों की भिन्नभिन्न रूप से कल्पना करते हैं, किन्तु वास्तव में ये तीनों एक ही प्रक्रिया के तीन पहलू मात्र हैं। हम पहले भी विस्तार से देख चुके हैं कि सर्वत्र विद्यमान अस्तित्त्व का मूल रहस्य है रचनात्मक विध्वंस।

सुनामी या युद्ध मे मौत किसी अपने पराये को नही पहचानती। केदारनाथ की घटना हो, भूकंप हो या ज्वालामुखी का फटना, मृत्यु सिर्फ मृत्यु है, वह सब चट कर जाती है।

जन्म में जिस सृष्टि की क्रियाशीलता का सुखद अनुभव या अहसास है, वही अहसास मृत्यु जैसे भयानक स्थिति में जान पाना और उस के परिपक्व होना, केवल स्थितप्रज्ञ के लिए संभव है। जीवन है तो मृत्यु भी है और मृत्यु है तभी जीवन भी है। ईश्वर दोनो में समान स्वरूप में है, किंतु भय में हम सौम्य स्वरूप में ही ईश्वर को पूजते है। इसलिए ही अर्जुन मृत्यु के इस विकराल स्वरूप में अपने और पराए को नष्ट होते देख कर, घबरा रहा है।

महाभारत का ही एक प्रसंग है, जब श्री कृष्ण दूत बन कर संधि के लिये दुर्योधन के पास गए थे और दुर्योधन एक सुई के बराबर जमीन देने को तैयार न था, तब भीष्म ने कहा था " कालपक्कमिदम मन्ये सर्वम क्षत्रम जनार्दन" अर्थात यह समस्त क्षत्रिय कर्म विपाक प्रक्रिया के अनुसार काल पक्क हो गए है। इस को विस्तृत रूप में आगे 33वें श्लोक में जानेंगे, किन्तु काल स्वरूप परमात्मा वह सब कर रहा है, मनुष्य अपने कर्मो से मृत्यु को प्राप्त होता है, जिस के लिये मारने वाला जीव निमित मात्र है।

इस ज्ञान की दृष्टि से जब अर्जुन उस प्रकाशस्वरूप देदीप्यमान समष्टि रूप को देखता है, तब वह उस विराट् के उग्र प्रकाश से प्राय अन्धवत् हो जाता है। गीता के प्रारम्भ का अर्जुन का भय, मोह, ज्ञान एवम अहम यह दृश्य देखने से मुक्त प्रायः हो गया है।

वह अब यह जानने को आतुर है, कि अत्यन्त उग्ररूपधारी भगवान् का वास्तविक परिचय क्या है, उस के इस प्रश्न को आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.30 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.31॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपोनमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यंन हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥

"ākhyāhi me ko bhavān ugra-rūpo,
namo 'stu te deva-vara prasīda..।
vijñātum icchāmi bhavantam ādyaṁ,
na hi prajānāmi tava pravṛttim"..।।

भावार्थ:

हे सभी देवताओं में श्रेष्ठ! कृपा करके आप मुझे बतलाइए कि आप इतने भयानक रूप वाले कौन हैं? मैं आपको नमस्कार करता हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न हों, आप ही निश्चित रूप से आदि भगवान हैं, मैं आपको विशेष रूप से जानना चाहता हूँ क्योंकि मैं आपके स्वभाव को नहीं जानता हूँ। (३१)

Meaning:

Please reveal who you are, with such a fierce form. I bow to you, O best among deities, be gracious. I wish to know you, O ancient being, for I do not understand your purpose.

Explanation:

In the seventh book or canto of the Srimad Bhagavatam, Lord Vishnu incarnates as the Lion Man Narasimha to slay Hiranyakashipu, the king of

the demons. He then proceeds to destroy Hiranyakashipu's army. But his anger is not appeased even after doing so. Extremely scared and worried, the heavenly deities send Prahalada, Lord Vishnu's devotee, to talk to Narasimha. He first praises Lord Vishnu, after which he asks him several questions. Appeasement, followed by humble questioning, is the best way to pacify an angry person, which is what Arjuna did to the fearful cosmic form of Ishvara in this shloka.

Earlier, Arjun had requested to see the universal form. When Shree Krishna exhibited it, Arjun became bewildered and agitated. Having witnessed an almost unbelievable cosmic spectacle, he now wants to know the very heart of God's nature and purpose. Hence, he asks the question, "Who are you and what is your purpose?"

Arjuna requested him to reveal who he was at this moment, and what was his mission and purpose for destroying everything. Even in his request there was humility and surrender, because Arjuna asked for the Lord's grace, knowing fully well that he was the "Aadyam", the original primal being of this universe.

The word "Aadyam" is used by Sant Jnyaneshwar in the first stanza of his commentary on the Gita known as the Jnyaaneshwari : "Om Namoji Aadya", meaning "my salutations to that primal being". This word is extremely significant in the context of this shloka. For someone or something to take on the responsibility of destruction, it has to be present before and after creation. It also has to be beyond all names and forms, because it is names and forms that are created and destroyed. So when the entire universe is dissolved, the same original being creates, sustains and destroys the universe again.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन श्री कृष्ण को सखा, गोपाल एवम अभी सारथी के रूप में जानता था। विराट रूप में भगवान् का पहला अवतार विराट् (संसार) रूप में ही हुआ था। अर्जुन विश्वरूप में जिस रूप की कल्पना कर रहे थे उस के विपरीत यह विराट रूप अत्यंत उग्र हो कर कौरव एवम पांडव पक्ष के योद्धाओं को खा रहा है। इतना ही नही, भयंकर स्वरूप में जीभ से चाट चाट कर खा रहे है एवम मुख से ज्वाला निकल रही है।

इस अवसर पर अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण की शक्ति की पवित्रता एवं दिव्यता को समझ पाता है। उससे अनुप्रमाणित हुआ सम्मान के साथ नतमस्तक होकर उन्हें प्रणाम करता है। अपने आप को भगवान् के चरणों में समर्पित करके उन्हीं से विनती करता है, हे वेदों के जानने योग्य, त्रिभुवन के आदिकरण, विश्ववन्द्य! आप मुझे बताइये कि मेरे अंदर विश्व रूप में जो कल्पना थी, उस के विपरीत यह संसार को निगलने वाले स्वरूप में आप कौन है? मैं आपको जानना चाहता हूँ।

यह सुविदित तथ्य है कि अध्यात्मशास्त्र के ग्रन्थों में सत्य के ज्ञान के लिए प्रखर जिज्ञासा को अत्यन्त महत्व का स्थान दिया गया है, क्योंकि वही वास्तव में साधकों की प्रेरणा होती है। उस की यह जिज्ञासा अपनी भावनाओं से अतिरंजित है और उस के साथ ही उस में युद्ध परिणाम को जानने की व्याकुलता भी है। यह बात उस के इन शब्दों में स्पष्ट होती है कि मैं आपके प्रयोजन को नहीं जान पा रहा हूँ। उस की जिज्ञासा का अभिप्राय यह है कि इस भयंकर रूप को धारण करके अर्जुन को कौरवों का विनाश दिखाने में भगवान् का क्या उद्देश्य है जब वह किसी घटना के घटने की तीव्रता से कामना कर रहा है और उसके समक्ष ऐसे लक्षण उपस्थित होते हैं, जो युद्ध में उसकी निश्चित विजय की भविष्यवाणी कर रहे हैं,तो वह दूसरों से उसकी पुष्टि चाहता है।

अति या कम आत्मविश्वास में प्रायः व्यक्ति जो देखता है, उस की पुष्टि भी शब्दो से सुनना चाहता है। आंखों से देखा और शब्दों से सुना सत्य अधिक प्रमाणिक होता है। इसलिए यहाँ अर्जुन उसी घटना को देख रहा है, जिसे वह घटित होते देखना चाहता है अत वह स्वयं भगवान् के मुख से ही उसकी पुष्टि चाहता है। इसलिये उसका यह प्रश्न है।सत्य की ही एक अभिव्यक्ति है विनाश। विनाश जिस का विकराल स्वरूप को स्वीकार करना भी अपने आप मे चुनोती है।

ऐसा कहा जाता है वो नियति विकराल रूप ले लेती है, तो वो अच्छा बुरा कुछ नही समझती और संहार में लग जाती है। उसे रोकने के लिए सिर्फ प्रार्थना की जा सकती है। यही

हिरण्यकश्यप के वध के बाद नरसिंह को शांत करने के प्रह्लाद ने की थी। माँ काली के क्रोध को शांत करने भगवान शंकर ने की थी और यही अर्जुन ने इस भयानक रुद्र विराट रूप से कर रहे है।

अर्जुन को परमात्मा की सृष्टि की रचना के हेतु पर संदेह उत्पन्न हो रहा था। वह प्रार्थना करते हुए कहता है कि आप ही बताइए, क्योंकि अब मुझे मूलभूत संदेह हो गया है। जब भी जीवन में समस्याएँ आएंगी; हम सभी दार्शनिक और ज्ञानी बन जाएँगे। उस समय तक गीता का चिंतन आध्यात्मिक नहीं होगा; केवल जब समस्याएँ सताएँगी तो मूलभूत प्रश्न मन में उठने लगता है कि भगवान ने सृष्टि क्यों की? अब तक ये विचार नहीं उठे थे; क्योंकि हम नियमित रूप से भोजन करते और पढ़ते रहते थे। मच्छर कैसे काटता है या कोई समस्या आती है तो ही हम प्रश्न करते है कि भगवान ने इस संसार की रचना क्यों की? क्या वे चुप नहीं रह सकते थे? यदि उन्होंने शब्द ब्रह्म की रचना की ही थी, तो वे सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं; उन्हें अद्भुत संसार बनाना चाहिए था; सभी को सदाचारी और सम्पन्न बनाना चाहिए था। केवल संपन्न ही क्यों? सभी को मुक्त भी बनाना चाहिए था। मनो राज्य में अर्ध राज्य क्यों होना चाहिए? तो सभी रत्न क्यों नहीं हो सकते; अद्भुत लोग और सारा संसार अद्भुत है; मच्छर नहीं हैं; कोई रोग नहीं; भगवान क्यों सृजन करें; और यदि करें भी; तो भोग के साथ दुःख भी क्यों रचें; वे केवल मजा, मजा और मजा ही क्यों नहीं रच सकते और फिर अचानक मृत्यु और वह भी अचानक? अधिमानतः नींद में। तो ये मनुष्य की प्रकृति है, समस्याएं आती हैं, गीता का विचार; उपनिषद का विचार; गुरु का विचार; दो दिनों के बाद हम भूल जाते हैं; पुनः प्रारंभिक स्थिति में आ जाते हैं; इसे शमशान वैराग्य कहा जाता है। कुछ कुछ संदेह की स्थिति में अर्जुन भी विकराल स्वरूप में परमात्मा को देख कर घिरता जा रहा है।आखिर यह दृश्य क्यों उसे दिखाया जा रहा है, जब उस में प्रार्थना में विश्वरूप दर्शन विभूतियों के दर्शन के रूप में मांगे थे।

विश्वरूप दर्शन में अर्जुन की प्रतिक्रिया के तीन चरण की बात हुई थी। जिस में प्रथम आश्चर्य या विस्मय था। द्वितीय यह भय का चरण है। तो इसके साथ ही अर्जुन की प्रतिक्रिया का दूसरा चरण समाप्त हो गया है। अब हमें तीसरे चरण में प्रवेश करना है; लेकिन उससे पहले कृष्ण अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देने जा रहे हैं।

अव्यक्त, निर्गुणाकार एवम अनन्त स्वरूप का सृष्टि से संहार तक का विश्वरूप दर्शन की कल्पना और सृजन सिर्फ व्यास जी कर सकते है, जिसे हम सब ने भी पढ़ कर देखा।

अर्जुन के इस प्रश्न के साथ विराट स्वरूप के दर्शन समाप्त होते है और भगवान श्री कृष्ण जी उसे क्या कहते है, आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.31।।

।। व्यक्ति की अभिलाषा।। विशेष - 11.31 ।।

अर्जुन का विश्वरूप दर्शन करने की अभिलाषा थी किन्तु उस ने जो कुछ भी विश्वरूप में देखा वो उस की कल्पना के बाहर था। युद्ध भूमि में उस को परमात्मा ने कर्म योग, कर्म सन्यास योग, ज्ञान योग एवम भक्ति योग का पूर्ण ज्ञान दिया। उस की जिज्ञासा को शांत करने के अपनी सम्पूर्ण विभूतियां भी बताई। उस के मोह, भय , ज्ञान के अज्ञान एवम अहम को नष्ट भी किया। वह इस सब को विश्वरूप में दर्शन करना चाहता था। उस की मानवीय अभिलाषा भविष्य को भी जानने की थी। उस की रुचि युद्ध के परिणाम पर अधिक थी।

यह सब हम की स्थिति है, हमारा निर्माण जिस परिस्थितियों में हुआ है, हम ने अपने विचारों की एक सुरक्षा कवच अपने चारों ओर खड़ी कर ली है, वही हमारा वास्तविक व्यक्तित्व है जिस में हम अपना कार्य करते है। जीवन के विभिन्न पहलू में नैतिकता, नियम, स्वार्थ, पद, लोभ आदि अनेक तत्व होते है जो हमारे निर्णय को प्रभावित करते है। इसलिये जब भी हम कोई उत्तम गुण या पढ़ते या देखते है उन्हें इन्ही सब से तौलते है, फिर वही करते है जिस में सर्वप्रथम स्थान स्वार्थ, फिर क्रमशः पद, लोभ, नियम और नैतिकता का होता है, जबकि उत्तम गुण में इस से विपरीत होना चाहिए। व्यवहारिक जीवन मे स्वार्थ और लोभ को प्रथम स्थान में रख कर कार्य करने से कोई भी व्यक्ति निष्काम नही हो सकता। नैतिकता आचरण में झलकती है। पद और प्रतिष्ठा को व्यक्तित्व और सामर्थ्य चाहिए, जो निष्काम कर्मयोगी के पीछे पीछे चलते है, निष्काम कर्मयोगी इन के पीछे पीछे नही चलता।

हम यह कह सकते है कि गीता या जो कुछ भी धार्मिक पुस्तक हम पढ़ते है या अपने सात्विक पक्ष को हम जितना ऊपर उठाते है, उस मे हमारी धारणा या अभिलाषा भविष्य में हमारे द्वारा ही एक चित्रित स्वरूप में स्थिर हो जाती है। परमात्मा जन जन, कण कण और

हर क्षण क्षण में है किंतु हम उसे विशिष्ट स्वरूप में ही देखना चाहते है। यह विशिष्ट स्वरूप सौम्य ही होना चाहिये, आत्म शांति का होना चाहिए। यही विशिष्टा द्वैत है, जिस में हम अपने अहम के साथ परमात्मा में विलीन होना चाहते है।

हम सभी गीता की प्रथम बार नही पढ़ रहे। गीता लगभग संसार की सभी भाषा मे उपलब्ध है, इस पर सब से अधिक मीमांसा और विवेचना की गई है। मेरे भेजने से ले कर पढ़ने वालों तक अपने अपने अहम में है और हमारी दुनिया यही मृत्यु लोक ही है, क्योंकि कर्म का अधिकार इसी लोक में मनुष्य योनि को प्राप्त है। हम अपना कल्याण मृत्यु लोक में ही उच्चस्तर पर पहुँच कर चाहते है। किन्तु अहम, स्वार्थ और लोभ में हम परमात्मा भी अपनी अभिलाषा के ही अनुरूप ही चाहते है, इसलिये गीता का अध्ययन भी अपनी सुविधा के अनुरूप करते है। इसलिये भविष्य का दर्शन हमेशा भय उत्पन्न करने वाला ही होता है।

अर्जुन की भांति यदि भविष्य का कुछ पता भी चले तो भी विश्वास पैदा नही होता और जो कुछ घटित होने वाला है तो उस का अनुमोदन भी परमात्मा से चाहते है। निष्काम होना नही चाहते निष्काम होने का स्वांग जरूर है।

जीवन लक्ष्य प्राप्ति का कठिन मार्ग है, कर्मयोगी ही निष्काम हो कर लक्ष्य का निमित बनता है, यदि वह न चाहे तो भी वही होगा क्योंकि नियति ने सब चलचित्र की भांति सभी कुछ लिख रखा है। नायक बनो या मत बनो, काल किसी के लिये नही रुकता। गीता अध्ययन भी एक अवसर है, नायक बन कर निष्काम योगी होने का, किन्तु होना या न होना यह निर्भर है, गीता अध्ययन के बाद आत्मसात करने पर।

प्रकृति को कार्य करने के लिये किसी न किसी जीव को निमित्त तय करना ही होता है, वह जीव के कर्मो के अनुसार निमित्त को तलाश कर के अपना कार्य करती है। इसलिये यदि हम अपने कर्म को सही दिशा में नियमित रूप से करते रहे तो कोई कारण नही की प्रकृति हम को उस महान कार्य के लिये निमित्त न होने का अवसर दे।

अर्जुन महान योद्धा है, वह सात्विक-राजसी गुणों से युक्त है, इसलिये परमात्मा ने उसे गीता का ज्ञान भी दिया और अपना विराट विश्वरूप भविष्य दर्शन के साथ दिखाया कि समस्त कार्य प्रकृति ही कर रही है, उसे उस के कर्मो के कारण ही निमित्त प्रकृति ने ही चुना है।

इसलिये यह अध्ययन का मनन और चिंतन करते रहे कि अर्जुन ने पूरी गीता को सुनने के बाद भी, अंत मे अपने सर्वश्रेष्ठ योद्धा होने का अभिमान नही छोड़ा। इसलिये गीता अध्ययन

करते करते रहने से ही व्यक्तित्व का विकास आप की अभिलाषा के अनुसार स्वतः ही होना शुरू हो जाएगा। अपना ध्यान अपने कर्मो में लगाये और उसे करते है, आप स्वयं आश्चर्य करेंगे कि प्रकृति आप को किस प्रकार् महान कार्य करने के लिये आप के कर्मो के अनुसार निमित्त बनाती है।

विश्व दर्शन में कोशिश सजीव वर्णन करने की ज्यादा रहने से काफी बढ़ा कर लिखा। आशा है सब ने इस का आनन्द लिया होगा।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष - 11.31 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.32॥

श्रीभगवानुवाच
कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धोलोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥

"śrī-bhagavān uvāca,
kālo 'smi loka- kṣaya- kṛt pravṛddho,
lokān samāhartum iha pravṛttaḥ..।
ṛte 'pi tvāḿ na bhaviṣyanti,
sarve ye 'vasthitāḥ pratyanīkeṣu yodhāḥ"..।।

भावार्थ:

श्री भगवान ने कहा - मैं इस सम्पूर्ण संसार का नष्ट करने वाला महाकाल हूँ, इस समय इन समस्त प्राणीयों का नाश करने के लिए लगा हुआ हूँ, यहाँ स्थित सभी विपक्षी पक्ष के योद्धा तेरे युद्ध न करने पर भी भविष्य में नही रहेंगे। (३२)

Meaning:

Shree Bhagavaan said:

I am time, the seasoned annihilator of the worlds, engaged in destroying all these people. Even without your (effort), all those hostile warriors will not exist in the future.

Explanation:

After a long wait, Shri Krishna, as the cosmic form, spoke to Arjuna, revealing himself and his mission of destroying the universe and all the living beings residing in it. When Oppenheimer, who was a part of the first atom bomb project, witnessed the destruction of Hiroshima and Nagasaki, he quoted this verse of Shree Krishna in the following manner: “Time…I am the destroyer of all the worlds.” Shri Krishna declared himself to be “kaala”, which means time as well as death. They mean the same thing because in time, everything dies. He also used the word “pravruddha” which means mature or seasoned, indicating that he was well versed in the task of destruction, that it wasn’t a onetime thing.

Our mind works within the gamut of space and time, therefore it is difficult to comprehend what Arjuna saw. He probably saw the past, the present and the future happening in an instant, all at the same time. With this vision, Shri Krishna was able to show the future to Arjuna. The Mahaabharata war had ended, leaving few Kaurava warriors alive. In other words, Shri Krishna himself had determined that the war would be won by the Paandavas. They fought like any other army would, but the real work behind the scenes was done by Shri Krishna.

That is why in Vēdānta; we talk about two planes of reality; one is called vyāvahāriha satyam and other is called pārāmārthika satyam; Vyāvahāriha satyam is a plane in which time principle is integral, intrinsic, inherent feature aspect and therefore in vyāvahāriḥ plane and everything will have corresponding opposite. So, arrival- departure, growth- decay; union- disassociation; birth- death; it is an integral part which is called vyāvahāriḥ satyam. Vēdāntins advice is what; with regard to vyāvahāriḥ satyam, we have only two options; either you accept it totally or you reject it totally.

And the other one is called pārāmārthika satyam where there is no time, there is no space and therefore there is no pairs of opposite also; anyathra dharmāt; anyathra adharmāt; dharmam is not; adharmam is also not there; good is not there; bad is also not there; birth is not there; death is also not there; na jāyatē mriyatē vā kadācit nāyaṃ bhūtvā bhavitā vā na bhūyaḥ.

Many of us sometimes think, what will happen if I stop working one day? Lest we attach undue importance to our actions and puff up our ego, Shri Krishna gives us a lesson in humility. He reveals that ultimately, it is he who is running the show. If he wants to do something, he will do it with whatever means available, even if it means generating a thought in one person or in a million people.

Now, if we hear this, we may think, why should I do anything at all? I can retire right away since it is ultimately Ishvara who is doing everything. Arjuna probably had the same thought. He would have wondered what the need for him was to fight, reinforcing the argument he made in the first chapter when we wanted to run away from the war.

And then Krishna gives the warning. Arjuna, this is going to happen whether you decide to start the war or whether you decide against the war. Because I have decided to destroy; whether you want to cooperate with Me or not; if you are not there; like if one tyre is punctured; what do you do; you do not stop the journey; with another tyre you proceed.

Even if you are not there; even without your involvement in the Mahābhāratha battle. All these people have to disappear. The time has come for the world to be vacated of a huge mass of people; and who are they? All the people; the ocean of humanity that is in front of you. Your site warrior on dharmam path and opposite site warrior are Adharmam site. But kaal works its own principle and therefore, people shall dies both sites.

Times when starts destroying the creation, it is not created discrimination of good and bad.

It is cleared warning that ultimate, doer is GOD, He does, and person thinks that he is doing like Arjun who in first lesson misunderstood that he is going to kill his relatives.

Anticipating this, Shri Krishna makes a bold statement in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन ने प्रश्न किया था कि उग्र रूपवाले आप कौन हैं एवम मैं आप की प्रवृत्तिको नहीं जान रहा हूँ। अर्जुन ने गीता के प्रारंभ में यह कह दिया था कि मै युद्ध मे इन सब का वध नहीं करूंगा। अतः अपने विराट स्वरूप को समेट कर भगवान कहते है।

श्रीकृष्ण सर्वशक्तिशाली काल और ब्रह्माण्ड के विनाशक के रूप में अपनी प्रकृति प्रकट करते हैं। 'काल' शब्द की उत्पत्ति 'कलयति' से हुई है जिसका सामानार्थक शब्द गणयति है। इसका अर्थ है "काल का स्मरण करते रहे हैं।" सृष्टि की सभी घटनाएँ काल के गर्भ में समा जाती है।

'ओपन हाइमर' जो प्रथम अणु बम बनाने की योजना के सदस्य थे और हिरोशिमा और नागासाकी के विनाश के साक्षी थे। उन्होंने श्रीकृष्ण के इस श्लोक को निम्न प्रकार से उद्धृत किया है-'काल'-मैं समस्त जगत का विनाशक हूँ। काल सभी जीवों के जीवन की गणना और उसे नियंत्रित करता है। वह यह निश्चित करेगा कि कब भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण जैसे महानुभावों के जीवन का अन्त होगा। यह अर्जुन के युद्ध में भाग न लेने के पश्चात भी युद्ध भूमि की व्यूह रचना में खड़ी शत्रु सेना का विनाश कर देगा क्योंकि भगवान की संसार निर्माण की विशाल योजना के अनुसार ऐसा होना भगवान की इच्छा है।

मैं सम्पूर्ण लोकों का क्षय (नाश) करने वाला बड़े भयंकर रूप से बढ़ा हुआ अक्षय काल हूँ एवम मैं इस समय दोनों सेनाओं का संहार करने के लिये ही यहाँ आया हूँ। इस से तेरे बिना भी (अर्थात् तेरे युद्ध न करनेपर भी) ये सब भीष्म, द्रोण और कर्ण प्रभृति शूरवीर योद्धालोग जिन से तुझे आशङ्का हो रही है एवं जो प्रतिपक्षियों की प्रत्येक सेना में अलग अलग डटे हुए हैं, नहीं रहेंगे।

फिर कृष्ण चेतावनी देते हैं। अर्जुन, यह तो होने ही वाला है, चाहे तुम युद्ध शुरू करने का निर्णय लो या युद्ध के विरुद्ध। क्योंकि मैंने विनाश करने का निर्णय लिया है; चाहे तुम मेरा सहयोग करना चाहो या नहीं; यदि तुम वहाँ नहीं हो; जैसे यदि एक टायर पंचर हो जाए तो तुम क्या करोगे। तुम यात्रा नहीं रोकोगे, दूसरे टायर के साथ तुम आगे बढ़ोगे। इसलिए कृष्ण अर्जुन को चेतावनी देते हैं, भले ही तुम वहाँ न हो, महाभारत युद्ध में तुम्हारी भागीदारी के बिना भी, इन सभी लोगों को नष्ट हो जाना है। समय आ गया है कि दुनिया से लोगों का एक विशाल समूह खाली हो जाए; और वे कौन हैं? सभी लोग; मानवता का सागर जो आपके सामने है।

प्रत्येक योद्धा अर्थात् दोनों सेनाओं में उपस्थित सैनिक; इस में कोई संदेह नहीं कि अपनी अपनी सेना धर्म के लिए खड़ी है और विपरीत सेना अधर्म के लिए खड़ी है; यह धर्मयुद्ध ही है, किन्तु फिर भी, धर्म के पक्ष में होने पर भी; धर्म के साथ होने पर भी; दोनो ओर की सेना में भी बहुत से लोगों को मरना पड़ेगा। इसीलिए दोनों ओर के सैनिकों को मरना ही है, कोई रास्ता नहीं है। प्रारब्ध समाप्त हो गया है और इसलिएअर्जुन ध्यान से देखो।

किसी वस्तु की एक अवस्था का नाश किये बिना उसका नवनिर्माण नहीं हो सकता। निरन्तर नाश की प्रक्रिया से ही जगत् का निर्माण होता है। बीते हुये काल के शवागर्त से ही वर्तमान आज की उत्पत्ति हुई है। इस रचनात्मक विनाश के पीछे जो शक्ति दृश्य रूप में कार्य कर रही है वही मूलभूत शक्ति है जो प्राणियों के जीवन के ऊपर शासन कर रही है।

एक टूटे हुए पुल को या जीर्ण बांध को अथवा प्राचीन इमारत को तोड़ना उक्त बात के उदाहरण हैं। उन्हें तोड़कर गिराना दया का ही एक कार्य है, जो कोई भी विचारशील शासन समाज के लिए कर सकता है। यही सिद्धांत यहाँ पर लागू होता है।इस उग्र रूप को धारण करने में भगवान् का उद्देश्य उन समस्त नकारात्मक शक्तियों का नाश करना है जो राष्ट्र के सांस्कृतिक जीवन को नष्ट करने पर तुली हुई हैं। भगवान् के इस कथन से अर्जुन के विजय की आशा विश्वास में परिवर्तित हो जाती है। परन्तु भगवान् इस बात को भी स्पष्ट कर देते हैं कि पुनर्निर्माण के इस कार्य को करने के लिए वे किसी एक व्यक्ति या समुदाय पर आश्रित नहीं है। इस कार्य को करने में एक अकेला काल ही समर्थ है। वही समाज में इस पुनरुत्थान और पुनर्जीवन को लायेगा। सार्वभौमिक पुनर्वास के इस अतिविशाल कार्य में व्यष्टि जीवमात्र भाग्य के प्राणी हैं। उन के होने या नहीं होने पर भी काल की योजना निश्चित ही कार्यान्वित होकर रहेगी। राष्ट्र के लिए यह पुनर्जीवन आवश्यक है मानव के

पुनर्वास की मांग जगत् की है। भगवान् स्पष्ट कहते हैं कि तुम्हारे बिना भी इन भौतिकवादी योद्धाओं में से कोई भी इस निश्चित विनाश में जीवित नहीं रह पायेगा।महाभारत की कथा के सन्दर्भ में, भगवान् के कथन का यह तात्पर्य स्पष्ट होता है कि कौरव सेना तो काल के द्वारा पहले ही मारी जा चुकी है और पुनरुत्थान की सेना के साथ सहयोग करके अर्जुन, निश्चित सफलता का केवल साथ ही दे रहा है।इसलिए सर्वकालीन मनुष्य के प्रतिनिधि अर्जुन को यह उपदेश दिया जाता है कि वह निर्भय होकर अपने जीवन में कर्तव्य का पालन करे।

समस्त कार्य प्रकृति ही करती है, जीव निमित्त मात्र है, जिस ने सत-रज-तम के गुणों के आधार पर जो भी व्यक्तित्व बना रखा है, प्रकृति भी उसी के आधार पर अपना निमित्त तलाशती है। अच्छे और लोकसंग्रह के लिये कर्म करनेवालो के लिये प्रकृति विश्व मे उच्च स्थान तक ले जाने का मार्ग भी प्रशस्त करती है, इसलिये यह कहा गया कि कर्म पर तुम्हारा अधिकार है, उस के फल पर नही। अच्छे कर्म करते रहने से जो भी पात्रता या व्यकितत्व तैयार होता है, उसी के आधार पर प्रकृति निमित्त बना कर जीव को अवसर देती है। ज्ञानी पुरुष जानता है कि वह कुछ नही कर रहा, जो कुछ कर रही है वह प्रकृति है, किन्तु अज्ञानी पुरुष अहम के कारण कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव मे फस कर कर्मफलों को भोक्ता है।

मृत्यु लोक का प्राणी जरा सा सामर्थ्यवान होते ही स्वयं को यम से बढ़ा एवम ईश्वर की सृष्टि को तुच्छ समझने लगता है, किन्तु जब ईश्वर अपने विराट रूप में सामने आता है तो ही उसे अपने बौने पन का आभास हो जाता है। आज कोरोना वायरस ने पूरी दुनिया की ताकत को उस की औकात दिखा दी।

परमात्मा ने विराट विश्वरूप में अर्जुन को युद्ध का भविष्य दिखाने के महाकाल स्वरूप दिखाया, जो परमात्मा के अनन्त स्वरूपो में एक अंश का मायविक स्वरूप था, जिस में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि युद्ध मे मृत्यु को प्राप्त योद्धा महाकाल के ग्रास बन रहे है, उन्हें जो मारने वाला है, वह मात्र निमित्त है। भविष्य निश्चित और तय है। कर्म के अधिकार में यदि जिसे निमित्त तय किया है, वह यदि इनकार भी कर दे, तो भी महाकाल अपना कार्य करता रहेगा।

इसीलिए वेदान्त में हम वास्तविकता के दो स्तरों की बात करते हैं। एक को व्यवहारिक सत्यम कहते हैं और दूसरे को पारमार्थिक सत्यम कहते हैं। व्यवहारिक सत्यम एक ऐसा स्तर है जिस में समय सिद्धांत अभिन्न, अंतर्निहित, अंतर्निहित विशेषता पहलू है और इसलिए

व्यवहारिक स्तर में और हर चीज का एक संगत विपरीत होगा। इसलिए आगमन- प्रस्थान, वृद्धि- क्षय; मिलन- वियोग; जन्म- मृत्यु; यह एक अभिन्न अंग है जिसे व्यवहारिक सत्यम कहते हैं। वेदान्ती की सलाह यही है कि व्यवहारिक सत्यम् के सम्बन्ध में हमारे पास दो ही विकल्प हैं; या तो आप इसे पूर्णतः स्वीकार कर लें या पूर्णतः अस्वीकार कर दें।

दूसरे को पारमार्थिक सत्यम कहते हैं, जहाँ समय नहीं है; स्थान नहीं है; और इसलिए विपरीत युग्म भी नहीं है। अच्छा नहीं है तो बुरा भी नहीं है। जन्म नहीं है तो मृत्यु भी नहीं है।

इसलिए या तो पारमार्थिक के लिए वोट करें और व्यवहार को पूरी तरह से अस्वीकार करें या आप व्यवहार को पूरी तरह से स्वीकार करना सीखें। एक बात पूर्ण अस्वीकृति के लिए भी आपको मानसिक शक्ति की आवश्यकता होती है; पूर्ण त्याग के लिए मानसिक शक्ति की आवश्यकता होती है। आपको सब कुछ त्यागना होगा। इसलिए शत्रु भी त्यागते हैं, हम खुशी से करते हैं।लेकिन वेदान्त कहता है, मित्रों को भी त्यागें, रोगों को त्यागें, तो स्वास्थ्य को भी त्यागें। वियोग को त्यागें तो संगति को भी त्यागें। मृत्यु को त्यागें तो जन्म को भी त्यागें। पूर्ण त्याग के लिए आंतरिक शक्ति की आवश्यकता होती है; पूर्ण स्वीकृति के लिए भी आंतरिक शक्ति की आवश्यकता होती है। दोनों के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है; वेदान्त कहता है कि शक्ति आपको केवल एक स्रोत से मिलती है। और वह है आत्म- ज्ञान।

इसलिये परमात्मा अर्जुन को जो संदेश देते है, आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.32।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.33॥

तस्मात्त्वमुक्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥

"tasmāt tvam uttiṣṭha yaśo labhasva,
jitvā śatrūn bhuṅkṣva rājyaṁ samṛddham..।
mayaivaite nihatāḥ pūrvam eva,
nimitta-mātraṁ bhava savya-sācin"..।।

भावार्थ:

हे सव्यसाची! इसलिये तू यश को प्राप्त करने के लिये युद्ध करने के लिये खड़ा हो और शत्रुओं को जीतकर सुख सम्पन्न राज्य का भोग कर, यह सभी पहले ही मेरे ही द्वारा मारे जा चुके हैं, तू तो युद्ध में केवल निमित्त बना रहेगा। (३३)

Meaning:

Therefore, you arise, obtain valour by conquering your enemies, and enjoy the prosperity of your kingdom. All these (warriors) have been previously killed by me, so you become just an instrument, O Savyasaachin.

Explanation:

Shree Krishna has revealed to Arjun his will that the Kauravas should perish and the kingdom of Hastinapur should be administered by the Pandavas in accordance with rules of dharma. He has already decided the annihilation of the unrighteous and the victory of the righteous as the outcome of the battle. His grand scheme for the welfare of the world cannot be averted by any means.

When we buy a ticket to any Bollywood blockbuster, we know that no matter what happens, the hero will save the heroine from the clutches of the villain. But even though the ending is no surprise to anyone, we still want to sit for over two hours in a movie theatre. Why is that? We enjoy the drama, the emotional ups and downs, the fight sequences, the songs and so on. We want the movie to entertain us. Just because we know the ending, we don't stop watching movies.

Ishvara's grand spectacle, his "leela", works in similar ways. Shri Krishna had pre- planned the ending of the war and had orchestrated the events in such a manner that it would result in the destruction of the Kauravaas. Knowing this, Arjuna would have liked very much to flee the war. Addressing Arjuna as Savyasaachin, one who could use both his hands in archery, Shri Krishna encouraged him to fight with all his might, defeat his enemies and

enjoy the result of his actions. This is because Arjuna, like all of us, had a role to play in Ishvara's grand play of the universe, his "leela".

He now informs Arjun that he wishes him to be the nimitta- mātram, or the instrument of his work. God does not need the help of a human for his work, but humans attain eternal welfare by working to fulfill God's wish. Opportunities that come our way to accomplish something for the pleasure of the Lord are a very special blessing. It is by taking these opportunities that we attract his special grace and achieve our permanent position as the servant of God.

Here is the crux of karma yoga. If we fulfil our duties with a spirit of detachment, we align ourselves with Ishvara's vision. We become a "nimitta" or an instrument of Ishvara. But if we assert our selfish desires and our will, we only entrap ourselves in the material world and set ourselves up for a painful existence. Furthermore, Shri Krishna, in his generosity, was more than happy to let Arjuna take credit for his work. In fact, he encouraged him to do so. And in the midst of all this, there is no favouritism. The Kauravaas were annihilated as a result of their actions, not because of Shri Krishna's partiality towards the Pandavaas.

There is no free-will at all, it appears; therefore, is only one doer; who is the doer; Bhagavān alone is the doer of everything; Bhagavān determines everything; there is nothing in our hands at all. This will be the wrong conclusion which can come out of these two lines. And therefore, we have to spend some time to eliminate this false idea of fatalism and we have to reinstate the freewill. Human beings do have the freewill to handle things. As per shastra, every human has right on his karma, and the result of his work converted into fate. Hence, Fate is nothing but karma phalam choose by a person in his present or earlier life. Therefore, we are selected by our

destiny based on our efforts, hardship, attitude and working, not merely on fate.

So now, who are the people who would be killed in the war? We shall see in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को सीधे और स्पष्ट शब्दों में आश्वस्त करते हैं कि उस को उठ खड़े हो कर काल के आश्रय से सफलता और वैभव को प्राप्त करना चाहिए। अधर्मियों की शक्ति और सार्मथ्य कितनी ही अधिक क्यों न हो, लोक क्षयकारी महाकाल की शक्ति ने पहले ही उन्हें मार दिया है। अर्जुन को केवल आगे बढ़कर एक वीर पुरुष की भूमिका निभाते हुए विजय के मुकुट को प्राप्त कर लेना है।

जीव का सब से बड़ा अज्ञान यही है कि योगमाया से ग्रसित हो कर अपने आप को कर्ता एवम भोक्ता समझता है। जब की जो कुछ भी हो रहा है या होगा यह प्रकृति के नियत कार्य द्वारा निश्चित है। इसलिये किसी कार्य करने की प्रेरणा, अवसर और साधन और निमित्त बनने का अवसर प्रकृति ही मनुष्य के कर्तव्य धर्म के अनुसार तय करती है। महाकाल जिन का अंत करना होता है, उन की बुद्धि और क्षमता का हरण कर लेता है और जिसे नायक बनाना होता है, उसे वह क्षमता और बुद्धि भी प्रदान कर देता है। अतः परमात्मा कहते है कि हे सव्यसाचिन् (जो दोनों हाथों से धनुष चला सके) ये मेरे द्वारा ये मारे ही हुए हैं। तुम केवल निमित्त बनो।

वस्तुतः प्रत्येक विचारशील पुरुष को इस तथ्य का स्पष्ट ज्ञान होता है कि जीवन में वह ईश्वर के हाथों में केवल एक निमित्त ही है। परन्तु, सामान्यत हम इस तथ्य को स्वीकार करने को तैयार नहीं होते, क्योंकि हमारा गर्वभरा अभिमान इतनी सरलता से निवृत्त नहीं होता कि हमारा शुद्ध दिव्य स्वरूप अपनी सर्वशक्ति से हमारे द्वारा कार्य कर सके। जीवन के सभी कार्य क्षेत्रों में प्राप्त की गयी उपलब्धियों पर यदि हम विचार करें, तो हमें ज्ञात होगा कि प्रत्येक उपलब्धि में प्रकृति के योगदान की तुलना में हमारा योगदान अत्यन्त क्षुद्र और नगण्य है। अधिक से अधिक हम केवल उन वस्तुओं का संयोग या मिश्रण ही कर सकते हैं जो पहले से ही विद्यमान हैं और इस संयोग के फलस्वरूप उनमें पूर्व निहित गुणों को व्यक्त करा सकते हैं। फिर भी हमारा अभिमान यह होता है कि हमने उस फल को उत्पन्न किया है

रेडियो, वायुयान, इंजिन, जीवन संरक्षक औषधयां, संक्षेप में, यह सम्पूर्ण नवीन जगत् और प्रगति में इसकी उपलब्धियां ये सब ईश्वर की गोद में बैठे बच्चों के खेल के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। ईश्वर ने ही हमारे लिए विद्युत्, लोहा, आकाश, वायु इत्यादि उपलब्ध कराये और हमें उसका उपयोग करने के लिए स्वीकृति और स्वतन्त्रता प्रदान की। इन मूलभूत वस्तुओं के बिना कोई भी उपलब्धि संभव नहीं हो सकती और उपलब्धि का अर्थ है, ईश्वर प्रदत्त वस्तुओं का बुद्धिमत्तापूर्वक समायोजन करना।

हम ने पहले भी पढ़ा है कि इस सृष्टि को परमात्मा ही प्रकृति द्वारा अपनी माया एवम त्रियामी सत-रज-तम गुणों से चलाता है। हर चर-अचर निमित्त मात्र है क्योंकि जो होना है वो तो तय है। यह संसार चल चित्र की भांति है। अतः प्रश्न यह भी है जब हर घटना पूर्व निश्चित है तो हम क्यों कर्म करे। अक्सर सिनेमा में हीरो की जीत सुनिश्चित होते हुए भी उसे एक्शन करते हुए देखना अच्छा लगता है। इसलिये परमात्मा ने कर्तव्य पालन करने को कहा क्योंकि कर्म करने से यश, सुख आदि का उपभोग कर सकते है। निष्काम हो कर प्रकृति के कार्य संचालन में सहयोगी हो सकते है। काल चक्र में अर्जुन ने वो देखा जो वो देखना चाहता था, किन्तु जो बच गए, वो भी समयांतर में काल के हाथों ग्रसित हुए ही है, काल किसे भी नही छोड़ता। मृत्यु लोक में मानव लीला करने वाले परमात्मा को भी देह त्यागनी पड़ी।

कर्म का अधिकार और कर्तव्य धर्म का पालन ही हमे वह कुछ करने के निमित्त बनाता है जिस से हम सृष्टि यज्ञ चक्र में निष्काम भाव से लोकसंग्रह हेतु अपना दायित्व का पालन कर सके।

शरणागति तथा ईश्वर का अखण्ड स्मरण करते हुए जगत् की सेवा करने के सिद्धांतों को ऐसी व्यर्थ की कल्पनाएं नहीं समझना चाहिए जो जगत् की भौतिक सत्यता से पलायन करने के लिए विधान की गयी हों। जगत् में कुशलतापूर्वक कार्य करके सफलता पाने के लिए मनुष्य़ को अपनी योग्यता और स्वभाव को ऊँचा उठाना आवश्यक है। अखण्ड ईश्वर स्मरण वह साधन है, जिसके द्वारा हम अपने मन को सदा अथक उत्साह और आनन्दपूर्ण प्रेरणा के भाव में रख सकते हैं। अहंकारी के लिए यह जगत् एक बोझ या समस्या बना होता है। जिस सीमा तक अहंकार स्वयं को किसी महान् और श्रेष्ठ आदर्श के प्रति समर्पित कर देता है,उसी सीमा में यह जगत् और उसकी उपलब्धियां प्राप्त करना सरल और निश्चित सफलता का

खेल बन जाता है। इसके पूर्व भी गीता में अनेक स्थलों पर स्पष्टत सूचित किया गया है कि अहंकार के समर्पण से हममें स्थित महानतर क्षमताओं को व्यक्त किया जा सकता है।

निष्काम कर्म योग में यह श्लोक अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह बतलाता है कि करने वाला ईश्वर है, मनुष्य उस के हाथ की कठपुतली मात्र है। किंतु जब कर्ता ईश्वर है और समस्त क्रियाएं पहले से लिखी है तो वेदांत, धर्म और शास्त्र की उपयोगिता भी क्या है। कार के संचालन में यदि एक्सीडेंट हो जाए तो चलाने वाला दोषी है, कार को कोई दोष नहीं लगता। फिर कर्म फल का दोष जीव को क्यों लगेगा, जब वह मात्र कठपुतली है।

इसलिए भगवान अर्जुन को निमित्त बनने की बात कर रहे है। निमित्त होने के कर्म करना आवश्यक है। शास्त्र कहता है यदि सभी परमात्मा करता है तो यह दुनिया का संचालन अलग अलग क्यों होगा। क्यों कोई जीव राग द्वेष में कर्म करेगा और कोई सन्यासी हो कर। हमारा शास्त्र भाग्यवाद को स्वीकार नहीं करता। उस के अनुसार परमात्मा साक्षी, अकर्ता और नित्य है, जीव अपने कर्मो को भोगता है। यह नियतिवाद है, जो भाग्यवाद को स्वीकार नहीं करता।

भाग्यवाद ज्योतिषी द्वारा जन्म के समय से ले कर अभी तक की नक्षत्र गणना से होने वाली घटनाएं नही है। भाग्यवाद आप के पूर्व के और अभी के कर्मो के फलित होने की गणना है। अतः कार्य में करने की और नहीं करने की स्वतंत्रता जीव की है और क्योंकि उस में कार्य को नहीं करना या करना या निष्काम हो कर करना या राग - द्वेष में करना और उस के कर्म फलों को भोगना ही संसार और नियति।

भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को निमित्त बनने को कह रहे है। कार्य तो वही होना है जो तय है तो निमित्त होने के लिए चयन भाग्यवाद से नहीं हो कर उस कार्य को कर सकने की पात्रता से होता है और पात्रता तभी होगी जब उस के योग्य गुण होंगे। गुण अभ्यास और कर्म करने की इच्छा और क्षमता से मिलते है। इसलिए यद्यपि जो भी संसार में होना है, वह कालचक्र में निश्चित है किंतु कर्म के निर्णय की इच्छा जीव पर है। आप को किस मार्ग पर चलने से सफलता मिल सकती है, वह मार्ग जीव को स्वयं तय करना भी होता है और उस पर चलना भी होता है।

ध्यान रहे कि परमात्मा ने कर्म का अधिकार दिया है, फल का नहीं। किन्तु जब आप को समयानुसार प्रेरित किया जाता है तो आप अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करते तो वह कार्य अन्य कोई भी कर लेगा। युद्ध मे जिन की मृत्यु निश्चित है वो सब मरेंगे, इसलिये भगवान अर्जुन को प्रेरित करते है तू निमित्त बन और यश एवम सुख का भोग कर।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.33।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.34॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठायुध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥

"droṇaṁ ca bhīṣmaṁ ca jayadrathaṁ ca
karṇaṁ tathānyān api yodha-vīrān..।
mayā hatāṁs tvaṁ jahi mā vyathiṣṭhā,
yudhyasva jetāsi raṇe sapatnān"..।।

भावार्थ:

द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण और भी अन्य अनेक मेरे द्वारा मारे हुए इन महान योद्धाओं से तू बिना किसी भय से विचलित हुए युद्ध कर, इस युद्ध में तू ही निश्चित रूप से शत्रुओं को जीतेगा। (३४)

Meaning:

Drona, Bheeshma and Jayadratha, Karna and other brave warriors have also been slain by me. So you kill them, do not be disturbed. Fight, and you will conquer your enemies in battle.

Explanation:

By this time, Arjuna’s mind had lost all sense of composure. Never in his life had he gone through so many unimaginable visions in such a short span of time. First, he saw Ishvara’s pleasant cosmic form, then the fearful cosmic form, then he came to know the real nature of Ishvara’s destructive power, and finally he came to know that every action in the universe was determined by Ishvara. Shri Krishna recognized this state of mind and gave clear, simple and precise instructions to Arjuna: do not worry, just fight.

What was the source of Arjuna's worry? Many of the generals on the side of the Kauravas were heretofore undefeated in combat. Even since the war began, Arjuna was fearful of facing the most prominent warriors in the Kaurava army. Shri Krishna pointed them out here, maintaining the hierarchy of seniority: their guru Drona, the grandsire Bheeshma, Jayadratha who was protected by a divine boon, and Karna who was equal to Arjuna in prowess. Jayadrath had the boon that whoever caused his head to fall on the ground would instantly have his own head burst into pieces. Karn had a special weapon called "Śhakti" given to him by Indra, which would slay anyone against whom it was used. But it could only be used once, and so Karn had kept it to take vengeance on Arjun. Dronacharya had received the knowledge of all weapons and how to neutralize them from Parshuram, who was an Avatār of God. Bheeshma had a boon that he would only die when he chose to do so. And yet, if God wished them to die in the battle, then nothing could save them. He mentioned each of their names, implying that their fate was already sealed. There was no point in Arjuna worrying any more.

So then, what could Arjuna do? Shri Krishna said: just fight. Since all these mighty warriors have already killed by me, you kill them, not out of a sense of enmity or superiority, but out of a sense of performing your duty as a karma yogi. You just be an instrument of Ishvara, that is the idea. Put the teaching of the Geeta into practice. If you perform actions in this manner, you will vanquish your enemies.

There is a saying: **vindhya na īndhana pāiye, sāgara juḍai na nīra parai upas kuber ghara, jyoṅ vipakṣha raghubīra [v11]**

"If Lord Ram decides to be against you, then you may live in the Vindhyachal forest, but you will not be able to get firewood to light a fire; you may be by the side of the ocean, but water will be scarce for your

usage; and you may live in the house of Kuber, the god of wealth, but you will not have enough to eat." Thus, even the biggest arrangements for security cannot avert a person's death if God has willed it to happen.

Sanjaya stepped in to describe Arjuna's reaction in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

यहाँ भगवान् कौरव सेना उन अजेय योद्धाओं के नामोल्लेख कर के बताते हैं कि ये वीर पुरुष भी सर्वभक्षक काल के द्वारा मारे जा चुके हैं। द्रोणाचार्य अर्जुन के गुरु थे, जिन्होंने उसे धनुर्विद्या सिखायी थी। उन के पास कुछ विशेष शस्त्रास्त्र थे और अर्जुन उनका विशेष रूप से आदर और सम्मान करता था। भीष्म पितामह को स्वेच्छा से मरण प्राप्ति का वरदान मिला हुआ था तथा उनके पास भी अत्यन्त शक्तिशाली दिव्यास्त्र थे। एक बार उन्होंने वीर परशुराम तक को धूल चटा दी थी। जयद्रथ की अजेयता का कारण उस के पिता द्वारा किया जा रहा तप था। उन्होंने यह दृढ़ निश्चय किया था कि जो कोई भी व्यक्ति मेरे पुत्र जयद्रथ का शिर पृथ्वी पर गिरायेगा, उस व्यक्ति का सिर भी नीचे गिर पड़ेगा। कर्ण से भय का कारण यह था कि उसे भी इन्द्र से दिव्यास्त्र प्राप्त हुआ था। वह परशुराम जी शिष्य था और युद्ध कला में किसी भी मायने में अर्जुन से कम नही था। उपर्युक्त कारणों से स्पष्ट होता है कि भगवान् ने इन चारों पुरुषों का ही विशेषत उल्लेख क्यों किया है। ये महारथी लोग भी काल का ग्रास बन चुके थे, अत अर्जुन को चाहिए कि वह राज सिंहासन की ओर अग्रसर हो और सम्पूर्ण वैभव का स्वामी बन जाये।

परमात्मा कहते है तुम्हारी दृष्टि में गुरु द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म, जयद्रथ और कर्ण तथा अन्य जितने प्रतिपक्ष के नामी शूरवीर हैं, जिन पर विजय करना बड़ा कठिन काम है, उन सबकी आयु समाप्त हो चुकी है अर्थात् वे सब कालरूप मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं। उन्होंने युद्ध के परिणाम का निर्णय पहले ही कर रखा है लेकिन वह चाहते हैं कि अर्जुन उनकी इच्छा को पूरा करने का माध्यम बने और युद्ध में विजयी होकर यश प्राप्त करे। जिस प्रकार भक्त भगवान की महिमा मंडित करता है। उसी प्रकार से भगवान की प्रकृति भी अपने भक्त की प्रशंसा करने की होती है। इसलिए श्रीकृष्ण युद्ध में मिलने वाली विजय का श्रेय अपने ऊपर नहीं लेना चाहते थे। उनकी यह इच्छा थी कि लोग यह कहें कि "अर्जुन ने अति शौर्य के साथ युद्ध लड़ते हुए पांडवों की विजय सुनिश्चित की।" इसलिये हे अर्जुन मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीरों को तुम मार दो।

इसलिए कहा जाता है: **विंध्या न ईंधन पाईये, सागर जुदाई न नीर। पराई उपस कुबेर घर, ज्यों विपक्ष रघुबीर।।**

"अगर भगवान राम किसी के विरुद्ध होने का निर्णय कर लें तब तुम संभवतः विंध्याचल वन में निवास करने लगो किन्तु वहाँ तुम्हें जलाने के लिए लकड़ियाँ प्राप्त नहीं होगी अगर तुम समुद्र के किनारे भी रहो तब भी तुम्हें अपनी आवश्यकता के लिए जल उपलब्ध नहीं होगा। यदि तुम धन के देवता कुबेर के घर में वास करते हो तब तुम्हें पर्याप्त भोजन भी नहीं मिल सकता।" यहाँ तक कि अगर भगवान किसी को मारना चाहें तब उस व्यक्ति को मृत्यु से बचाने के लिए कितने ही कड़े सुरक्षा प्रबन्ध भी क्यों न कर लिए जाएँ तब भी उसकी मृत्यु को टाला नहीं जा सकता।

अर्जुन पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य को मारने में पाप समझते थे, यही अर्जुन के मन में व्यथा थी। अतः भगवान् कह रहे हैं कि वह व्यथा भी तुम मत करो अर्थात् भीष्म और द्रोण आदि को मारने से हिंसा आदि दोषों का विचार करने की तुम्हें किञ्चिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं है। तुम अपने क्षात्रधर्म का अनुष्ठान करो अर्थात् युद्ध करो। इस का त्याग मत करो।

अर्जुन मोह से ग्रसित है, इसलिए भगवान कहते है कि यह बहुत कठिन है; आपको ऐसा करना ही होगा; क्या? देखते ही गोली मार देने का आदेश; द्रोण, आप के अपने गुरु ठीक हैं; लेकिन दुर्भाग्य से वे अधार्मिक पक्ष में हैं; इसलिए यह कड़वा है; यह दर्दनाक है, लेकिन आपको कभी भी भावनाओं के द्वारा नहीं जाना चाहिए; आपको मनोमय कोष के द्वारा नहीं जाना चाहिए, आपको विज्ञान माया कोष के द्वारा जाना होगा। विवेक को आपके कार्य पर हावी होना चाहिए; आवेग पर नहीं।

हे अर्जुन! तुम इस युद्ध में भाग लो; क्योंकि तुम जन्मजात क्षत्रिय हो। यदि तुम ब्राह्मण हो, तो तुम सब से दूर जाकर कहीं बैठ सकते हो और जप आदि कर सकते हो; ये सब बातें, क्षत्रिय का कर्तव्य क्या है; पुलिसकर्मी। तुम यह नहीं कह सकते कि मैं बंदूक या लाठी नहीं छूता; सेना के लोग काम के हिस्से के रूप में ऐसा करते हैं; एक क्षत्रिय के रूप में तुम्हारा कर्तव्य है क्षतात् त्रायते अर्थात क्षत्रिय; समाज को अधर्म से बचाना क्षत्रिय का कर्तव्य है; क्षथम का अर्थ है अधर्म।

अर्जुन को संदेह भी था, इसलिए उस में कहा भी कि मैं यह भी नहीं जानता कि हम उन्हें हराएंगे या वे हमें हराएंगे; कृष्ण कहते हैं कि तुम युद्ध जीतोगे; इसलिए नहीं कि तुम शक्तिशाली हो; बल्कि इसलिए कि धर्म तुम्हारे पक्ष में है।

वस्तुतः यह सृष्टि परब्रह्म के संकल्प से उत्पन्न हुई, जिस का संचालन प्रकृति योगमाया से करती है। इस कि पटकथा, सब का रोल, समस्त क्रियाएं प्रकृति कर्म-विपाक से सुनिश्चित करती हुई चलती है। जो इस तथ्य को जानता है, वो उस दर्शक के समान है, जिसे चलचित्र के अंत का पता है, अतः वह मध्य में हुई किसी भी परेशानी या योग से विचलित नही होता। परमात्मा को इस युद्ध के अंत का पता है, इसलिये वह अर्जुन को आश्वत करते हुए, उपरोक्त कथन कहते है।

साधक को अपने साधन में बाधक रूप से नाशवान् पदार्थों का, व्यक्तियों का जो आकर्षण दीखता है, उस से वह घबरा जाता है कि मेरा उद्योग कुछ भी काम नहीं कर रहा है अतः यह आकर्षण कैसे मिटे भगवान् का यह आश्वासन कि तुम्हारे को अपने साधन में जो वस्तुओँ आदि का आकर्षण दिखायी देता है और वृत्तियाँ खराब होती हुई दीखती हैं, ये सब के सब विघ्न नाशवान् हैं और मेरे द्वारा नष्ट किये हुए हैं। इसलिये साधक इन को महत्त्व न दे। दुर्गुण, दुराचार दूर नहीं हो रहे हैं, क्या करूँ ? ऐसी चिन्ता होने में तो साधक का अभिमान ही कारण है और ये दूर होने चाहिये और जल्दी होने चाहिये, इस में भगवान् के विश्वास की, भरोसे की, आश्रय की कमी है। दुर्गुण, दुराचार अच्छे नहीं लगते, सुहाते नहीं, इसमें दोष नहीं है। दोष है चिन्ता करने में। इसलिये साधक को कभी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

इसलिये स्वार्थ और अहंकार का त्याग कर के निष्काम भाव कर्तव्यपालन करने से काल स्वयं साधक की सहायता को खड़ा हो जाता है।

पूर्व के भाग्यवाद को आगे बढ़ाए तो यह समझ लेना होगा कि भविष्य में कर्मो के फल ही भोगने होते है जिसे भाग्यवाद अर्थात भगवान को कोसते हुए भोगे या नियतिवाद अर्थात पुरुषार्थ द्वारा सात्विक और कर्तव्य कर्म को करते हुए अपने भाग्य खुद बनाए। जो पुरुषार्थ करते है उन के सामर्थ्य को देख कर ही भाग्य उन्हे निमित्त भी बनाता है। जीव का अपने कर्मो पर अधिकार अपने भाग्य को लिखने जैसा है, क्योंकि संसार तो भगवान अर्थात काल के अंतर्गत कार्य करता है।

प्रश्न यह भी है कि प्रेरित करने के साथ परमात्मा अर्जुन को कीर्ति प्राप्ति एवम सत्ता का सुख भोगने के लिए भी कहते है। कर्म का फल अवश्य मिलता है, चाहे किसी भी उद्देश्य पूर्ति के साथ किया जाए, यदि कर्म निषेध कर्मो का हो तो पाप लगता ही है। इस से तभी बचा जा सकता है, जब निष्काम भाव से किया जाए। ऐसे ही कर्मो के फल स्वरूप सांसारिक संसाधन भी प्राप्त होते एवम लोक कीर्ति भी। अच्छे कर्मों के साथ यह यश के साथ होती है, जिस का उपभोग करना हर जीव का नैसर्गिक अधिकार है। यह बिल्कुल वैसा ही है जैसे जीने के स्वादिष्ट एवम पौष्टिक भोजन करना इस स्वादिष्ट भोजन के लिये जीना। वस्तुतः विकारों के अंत के साथ परमात्मा की स्थिति ही वास्तविक समृद्धि है, जो स्थिर सम्पति है, जिस का विनाश नही होता और यही कर्म योगी का राजयोग होता है।

व्यवहार में परमात्मा पर श्रद्धा, विश्वास और प्रेम रख कर कोई निष्काम भाव से अपने कर्तव्यधर्म का पालन करता है, तो प्रकृति भी उस के असाध्य एवम दुर्गम रुकावटो को खत्म करती है। हमारे मन मे कपट, द्वेष, ईर्ष्या या स्वार्थ न हो तो हम यदि अपने कार्य पर ध्यान दे कर कर्म करते जाए, तो मार्ग की वो बाधाए भी प्रकृति द्वारा दूर कर दी जाती है, जिन्हें हम सामान्य तौर पर सोच भी नही सकते। जिन्हें हम मोह, कामना, लोभ से छोड़ या हरा नही सकते, वह भी समय के अनुसार स्वतः ही हटती जाती है। इसलिये कहा जाता है कि अपने काम पर ध्यान दो, बाकी भगवान पर छोड़ दो। वह तुम्हे तुम्हारे कर्मो के अनुसार फल भी देगा।

भगवान निष्काम कर्मयोगी को अपने कर्तव्य पालन हेतु संसार से पलायन या विरक्ति का संदेश नही देती, यही भगवान अर्जुन को भी कह रहे है। भगवान द्वारा कर्तव्य पालन करने के आह्वान को सुनकर अर्जुन ने क्या प्रतिक्रिया व्यक्त की। इस की व्याख्या अगले श्लोक में की गयी है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.34।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.35॥

संजय उवाच
एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णंसगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥

"sañjaya uvāca,

etac chrutvā vacanaṁ keśavasya,
kṛtāñjalir vepamānaḥ kirītī..।
namaskṛtvā bhūya evāha kṛṣṇaṁ,
sa- gadgadaṁ bhīta- bhītaḥ praṇamya"..।।

भावार्थ:

संजय ने कहा - भगवान के इन वचनों को सुनकर अर्जुन ने हाथ जोड़कर बारम्बार नमस्कार किया, और फ़िर अत्यन्त भय से कांपता हुआ प्रणाम करके अवरुद्ध स्वर से भगवान श्रीकृष्ण से बोला। (३५)

Meaning:

Sanjaya said:

Hearing this statement of Keshava, the crowned one with folded palms, trembling, offered salutations, bowed, and even though fear struck, addressed Krishna in a choked voice.

Explanation:

While Arjuna experienced a high degree of fear mixed with confusion in the first chapter, he now demonstrated tremendous gratitude and joy after knowing that the war had been pre-ordained in his favour. The fear had not subsided fully, that is why his voice was choked and his body was trembling. Since there was a bit of a gap between Shri Krishna proclamation and Arjuna's next statement, Sanjaya stepped in to narrate this shloka.

Here, Arjun is referred to as "the crowned one." He had once helped Indra kill two demons. As a token of his pleasure, Indra had placed a dazzling crown on his head. In this verse, Sanjay refers to the crown on Arjun's head. But a crown is also the symbol of monarchy, and Sanjay deliberately uses the word to hint to the old king Dhritarasthra that his sons, the Kauravas, will lose the throne to the Pandavas in the impending war.

Shri Shankaracharya in his commentary adds an extra dimension to Sanjaya's interjection. Since Shri Krishna had already declared the upcoming death of the Kaurava army's star warriors, Dhritraashtra could still have had one last opportunity to end the war at this very moment. Without saying it explicitly, Sanjaya asked: would he issue a command to stop the war now? He used the word "crown" to imply that Arjuna's coronation as the crown prince of the kingdom was not too far away.

Unfortunately, Sanjaya's plea fell on deaf ears. Dhritraashtra's attachment to his sons was so great that even a revelation from Ishvara himself could not unsettle it. But even he knew that the fate of his sons was already sealed. The downward spiral caused by attachment has been illustrated with several examples in earlier chapters of the Gita. Perhaps this example of Dhritraashtra is one of the most hard-hitting ones since attachment to family is something that all of us identify with.

So then, what did Arjuna say to Shri Krishna? We shall see next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

गीता पुनः कृष्ण-अर्जुन से संजय- धृष्टराष्ट्र संवाद की ओर चली है। हमे यह पूर्व में ज्ञान है कि एक ओर अपने सगे संबंधियों से अनुराग से ग्रसित वीर योद्धा है जिसे कृष्ण भगवान समझा रहे है और दूसरी ओर मोह, लोभ एवम राज्य अभिलाषा लिये व्यक्ति है। यदि हम यह समझे कि तम बुद्धि से युक्त धृष्टराष्ट्र है जो ज्ञान प्राप्त तो है और गीता भी सुन रहा है। जैसे ज्ञानी को ज्ञान देना एवम जागते को जागना कठिन है, वैसे ही अहम एवम कामना में पड़े व्यक्ति को समझाना कठिन है।

यहाँ अर्जुन को 'किरीटी' कह कर संबोधित किया गया है। उसने एक बार में दो दानवों का वध करने के लिए इन्द्र की सहायता की थी। इन्द्र ने प्रसन्न होकर उसे चमकीला मुकुट उपहार में दिया। मुकुट राज सिंहासन का प्रतीक भी होता है और संजय ने वृद्ध राजा धृतराष्ट्र के सामने यह शब्द प्रयोग कर उन्हें यह संकेत दिया कि उसके पुत्र कौरव आसन्न युद्ध में पराजित होकर राज पाठ खो देंगे।

वस्तुतः गीता में भगवान का यह मायविक स्वरूप जिस में अर्जुन ने भीष्म, द्रोण एवम कर्ण आदि महान योद्धाओं को महाकाल के द्वारा ग्रसित होते, अर्जुन के अतिरिक्त संजय ने भी देखा और धृतराष्ट्र ने सुना। किन्तु जो स्वयम काल के द्वारा अहम, स्वार्थ, लालसा और पुत्रमोह से ग्रसित हो, उस को किसी प्रकार का कोई असर नही होता।

यहाँ पर संजय के वचन इस गूढ़ अभिप्राय से भरे हुए हैं कि द्रोणादि चार अजेय शूरवीरों का अर्जुन के द्वारा नाश हो जाने पर आश्रय रहित दुर्योधन तो मरा हुआ ही है, ऐसा मानकर विजय से निराश हुआ धृतराष्ट्र सन्धि कर लेगा और उस से दोनों पक्षवालों की शान्ति हो जायगी। परंतु भावी के वश में हो कर धृतराष्ट्र ने ऐसे वचन भी नहीं सुने।

हम पुनः श्लोक 30 के भीष्म के वचन को याद करते है जो उन्हों ने भरी सभा मे अहम, स्वार्थ एवम लोभ में डूबी दुर्योधन की सभा मे कृष्ण संधि में कही थी " कालपक्कमिदम मन्ये सर्वम क्षत्रम जनार्दना" यह समस्त क्षत्रिय काल द्वारा पक गए है एवम अपनी आयु पूर्ण कर चुके है, इसलिये मृत्यु को प्राप्त है। जब समय निकट आ जाता है तो व्यक्ति अपने लिये अच्छा बोलने वाले को भी नही सुनता। रावण को अनेक बार लगभग सभी ने समझाया किन्तु बुद्धि एवम विवेक से पूर्ण रावण काल वश में होने से नही समझ पाया।

नियति जब कार्य करती है तो सर्वप्रथम वह विवेक को या तो भ्रमित कर देती है या उसे हर लेती है। योगमाया और प्रकृति अपना अपना कार्य कर्म विपाक के सिंद्धान्त से करते रहते है, उन के लिये अपना-पराया जैसा कोई शब्द नही होता। महाकाल से कोई नही बच सकता। इस सत्य को प्रत्यक्ष देखने मात्र से शरीर मे भय से कंपकंपी होना स्वाभाविक ही है, यही अर्जुन की स्थिति है।

एक अन्य दृष्टिकोण से भी अर्जुन कृष्ण के बारे में जितना जानता था, उस के कहीं बाहर विश्व के विराट स्वरूप में महाकाल हो सब के कर्मो के फल का निर्णायक दाता, निष्पक्ष एवम भावनाशून्य स्वरूप को उस ने कभी सोचा भी नही था।

संजय कहते है कि काल से भयंकर स्वरूप के बाद भयंकर मेघों के गर्जना , गंगा के प्रचंड घोष से गिरना या क्षीर सागर के मंथन की भीषण वाणी के समान कृष्ण की वाणी सुन कर अर्जुन डर से गए एवम कर बद्ध परमात्मा के चरणों मे अपना मस्तक रख दिया। उस का गला अवरुद्ध हो गया इसलिये उस अवरुद्ध गले से वो परमात्मा की स्तुति करने लगे। पुनः विचार करे तो हम पाएंगे जब स्थिति अपने नियंत्रण में न हो तो वंदना या स्तुति से बल प्राप्त होता हैं।

भाग्यवाद और नियतिवाद में अंतर को हमने समझा। अतः जब नियति कर्म के फल के अनुसार ही कार्य करेगी तो मनुष्य किसी भी कार्य में कुछ भी सुधार नहीं कर सकेगा। तो हमे यह भी समझना होगा कि प्रायश्चित अर्थात प्रारब्ध के कर्म के वेग को सुधारा जा सकता है, जैसे विषाक्त भोजन से व्यक्ति मर रहा हो तो दवा से उसे समय पर बचाया जा सकता है। सड़क पर एक्सीडेंट होने पर भी उपचार से जान बच सकती है, यह एक्सीडेंट की मात्रा पर भी निर्भर है। इसलिए अत्यंत वेग पूर्ण प्रारब्ध को भोगने के अतिरिक्त कोई उपाय न होने पर शांत चित्त हो कर व्यतीत करना और यदि प्रारब्ध को मैनेज किया जा सके तो उस को विवेक से समझ कर कार्य करना चाहिए। अतः जीवन में यदि कभी कुछ अनुचित या गलत कार्य भी हो जाए तो आगामी कर्म उस कार्य के फल को न्यून करने के लिए किया जा सकता है। मनुष्य यदि प्रारब्ध को भोगता है तो प्रारब्ध को नियंत्रित कर के भोग भी सकता है। वह यदि अपना विवेक और सद्बुद्धि कायम रखे तो असहाय नही होता।

इसे हम इस प्रकार समझे कि नियति के हिसाब से यदि रेल को चेन्नई से दिल्ली जाना है तो वह उस रूट पर चलेगी। यात्री जो उस में चढ़ेंगे, वे दिल्ली पहुंच जाएंगे। चढ़ना, उतरना या नहीं जाना, यह नियति नहीं तय करती क्योंकि कर्म का अधिकार जीव के पास है। वह काल चक्र की भांति घूमती है और उस में जो विवेक शून्य हो कर रहता है, उसे अपने साथ ले जाती है। कोई यह सोचता है कि उस की नियति में राजयोग है, उसे कुछ कर्म करने की आवश्यकता नहीं। तो वह वैसा यात्री है जो कलकत्ता जाने वाली गाड़ी में बैठ कर सोचता है, यह गाड़ी मुझे दिल्ली पहुंचा देगी। सही समय पर सही कार्य यदि विवेक और समर्पण बुद्धि से किया जाए, तो प्रारब्ध भी उच्च कोटि का होगा और व्यक्ति श्रेष्ठ कार्य के लिए निमित्त बनेगा। यदि जीवन शेष है तो 10 मंजिल से कूदने पर प्राण नहीं निकलेंगे तो वह प्रकृति के नियम के विरुद्ध है। किंतु तूफान आने से या बाढ़ आने से सैंकड़ों लोग मर जाते है, वहां काल चक्र है, जिस में विवेक का कोई कार्य नहीं हैं।

युद्ध भूमि में जब सब की मृत्यु दिख रही है तो धृतराष्ट्र को युद्ध मोह को त्याग कर रोकना चाहिए, यही सोच कर संजय के संवाद का महत्व बढ़ता है किंतु जिस की मति मारी जाए उस कोई उपाय नहीं। रावण भी तो अनेक बार समझाया गया था। आश्चर्य और भय के बाद अर्जुन की तीसरी अवस्था इस अध्याय में समर्पण की हम देखते है। किंतु हमे यह ध्यान रखना होगा कि यह तीनों अवस्था दिव्य दृष्टि से उत्पन्न हुई है, अर्जुन का व्यक्तित्व से इस पर कोई प्रभाव नहीं होगा।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.35।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.36॥

अर्जुन उवाच,
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रह्रष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घा:॥

"arjuna uvāca,
sthāne hṛṣīkeśa tava prakīrtyā,
jagat prahṛṣyaty anurajyate ca..।
rakṣāṁsi bhītāni diśo dravanti,
sarve namasyanti ca siddha-saṅghāḥ"..।।

भावार्थ:

अर्जुन ने कहा - हे अन्तर्यामी प्रभु! यह उचित ही है कि आप के नाम के कीर्तन से सम्पूर्ण संसार अत्यन्त हर्षित होकर आप के प्रति अनुरक्त हो रहा है तथा आसुरी स्वभाव के प्राणी आप के भय के कारण इधर- उधर भाग रहे हैं और सभी सिद्ध पुरुष आप को नमस्कार कर रहे हैं। (३६)

Meaning:

Arjuna said:

Rightly, O Hrisheekesha, the universe is elated and enamoured by your glories. Demons run in all directions out of fear, and the hosts of siddhas bow to you.

Explanation:

Having understood the workings of Ishvara's universe, Arjuna is in third stage of understanding that all are working under law of Karma. The whole creation is working under set rule, and it cannot be changed or modify on needs or wishes of any person. Arjuna responds with the powerful word "sthaane", which means everything that is going on is right, everything is in

its place. "sthāne", meaning “it is but apt.” It is but natural that the people of a kingdom who accept the sovereignty of their king delight in glorifying him. As we saw earlier, we tend to question Ishvara every time there is a massive calamity, either at a personal level or at a global level. Or, we sometimes ask Ishvara to let things be a certain way. But when we understand that Ishvara is behind it all and is orchestrating events for the benefit of the entire universe and not just a subset, we too, are compelled to say “sthaane”, it is all right.

In fact, according to vēdānta, only through Viśva rūpa appreciation, we can go to nirguṇam brahma. From ēkarūpa bhakthi, one has to necessarily come to the Viśva rūpa appreciation, the universal law of karma; the law of dharma- adharma. There is no question of skirting that and aham brahmāsmi; that story will not work; and even if you avoid that and come to vēdānta and repeat Aham Brahmāsmi, suddhōsmi, buddhōsmi, etc. you will that on the lips aham brahmāsmi is there; in the heart, fear will be there.

If you want to conquer fear; if you want to conquer insecurity, you have to necessarily expand your mind; appreciate the totality; and see the laws of the creation; not only the physical laws but also the moral laws, which extent not only to the present janma, but which extends to the past janmās and innumerable future janmās, and you should see that as an individual, you cannot escape the law.

With this knowledge, we now know why people in our world are happy and unhappy at the same time. Those who view the world through Ishvara, those who have the vision of Ishvara, take delight in everything and hence they are happy. But those who view the world through their ego- driven vision fear Ishvara’s destructive process, and then become unhappy. Rakshasas or demons run in fear, while siddhas or perfected beings salute Ishvara.

Furthermore, Arjuna understands a wonderful technique by which we can gain immense dispassion towards the world. A child drops his attachment to his toys when he becomes an adult and gets attached to something higher than toys, like his career for instance. So when we develop a strong attachment to Ishvara, when we are enamoured, “anurajjyate”, by Ishvara, we automatically drop our worldly attachments. All we need to do is to direct our senses to Hrisheekesha, the master of the senses.

This shloka and the upcoming ten shlokas are one of the most beautiful prayers to Ishvara ever written.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अब आगे के ग्यारह श्लोक में अर्जुन द्वारा भगवान की स्तुति की गई है। यह अर्जुन की तीसरी प्रतिक्रिया विराट विश्व रूप दर्शन को समझने के बाद की है। निर्गुणाकार परम ब्रह्म स्वरूप परमात्मा के सौम्य स्वरूप से ले कर काल भक्षण भयंकर स्वरूप के दर्शन करने वाला संभवतः अर्जुन की प्रथम व्यक्ति होगा। इसलिये यह स्तुति हिन्दू धर्म शास्त्रों के अनुसार अत्यंत गूढ़ अर्थ के सम्पूर्ण परमात्मा की स्तुति है। केवल परमात्मा को जानने वाला ही परमात्मा के प्रत्येक कार्य को उचित एवम सही बोल सकता है।

अर्जुन ने 'स्थाने' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है-यह उचित है।

यह स्वाभाविक है कि किसी राज्य की प्रजा अपने राजा का प्रभुत्व स्वीकार कर उसकी महिमा का गुणगान कर प्रसन्न रहती है। यह भी स्वाभाविक है कि जो लोग अपने राजा से शत्रुता रखते हैं वे उसकी उपस्थिति से भयभीत होकर इधर-उधर भागते रहते हैं। राजा के लिए यह भी आवश्यक है कि उसके अनुचर, मंत्री आदि उसके प्रति निष्ठावान हों। अर्जुन भी इसके समरूप वर्णन करते हुए कहता है कि केवल यही उपयुक्त है कि संसार परम प्रभु की महिमा का गान करता है और असुर उनसे भयभीत रहते हैं और संत पुरुष श्रद्धा भक्ति युक्त होकर उनकी आराधना करते हैं।

वस्तुतः, वेदान्त के अनुसार, केवल विश्व रूप प्रशंसा के माध्यम से ही हम निर्गुण ब्रह्म तक जा सकते हैं। एकरूप भक्ति से, व्यक्ति को अनिवार्य रूप से विश्व रूप प्रशंसा, कर्म के सार्वभौमिक नियम, धर्म- अधर्म के नियम तक आना होगा। उस से और अहम् ब्रह्मास्मि से

बचने का कोई प्रश्न ही नहीं है; वह कहानी काम नहीं करेगी; और यदि आप उस से बचकर वेदान्त में आते हैं और अहम् ब्रह्मास्मि, शुद्धोस्मि, बुद्धोस्मि आदि दोहराते हैं, तो भी आप पाएंगे कि होठों पर अहम् ब्रह्मास्मि है; हृदय में भय रहेगा।

यदि आप भय पर विजय पाना चाहते हैं; यदि आप असुरक्षा पर विजय पाना चाहते हैं, तो आपको अनिवार्य रूप से अपने मन का विस्तार करना होगा; समग्रता की सराहना करनी होगी और सृष्टि के नियमों को देखना होगा। न केवल भौतिक नियम, बल्कि नैतिक नियम भी, जो न केवल वर्तमान जन्म तक, बल्कि पिछले जन्मों और असंख्य भावी जन्मों तक फैले हुए हैं, और आप को यह देखना चाहिए कि एक व्यक्ति के रूप में, आप सृष्टि का संचालन नहीं कर सकते, यह सृष्टि संपूर्ण ब्रह्मांड को ले कर चलती है, इसलिए किसी एक से कहने से सृष्टि के नियम नहीं बदलते, यहां कर्म फल के सिद्धांत का कानून चलता है, आप चाहे तो प्रायश्चित कर के अपने कर्मो के फल को कम कर सकते है किंतु प्रकृति वही करेगी जो निश्चित है। फिर यदि आप को निमित्त बना कर वह अवसर देती है तो अपने कर्तव्य धर्म का पालन करे, अपनी कमजोरियों पर विजय प्राप्त करे, फिर जो भी होता है उसे स्वीकार भी करे। हम सब अपनी नियति को भोगते है और नियति हमारे कर्मों का परिणाम है।

दृश्य यह है कि अर्जुन दोनों हाथ जोड़े हुए, भयकम्पित और विस्मय से अवरुद्ध कण्ठ से भगवान् की स्तुति कर रहा है। यह चित्र अर्जुन की मनस्थिति का स्पष्ट परिचायक है। **ग्यारह श्लोकों के स्तुतिगान का यह खण्ड हिन्दू धर्म में उपलब्ध सर्वोत्तम प्रार्थनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुत सामान्य लोगों को यह विदित है कि संकल्पना, सुन्दरता, लय और अर्थ की गम्भीरता की दृष्टि से इससे अधिक श्रेष्ठ किसी सार्वभौमिक प्रार्थना की कल्पना नहीं की जा सकती है।** अर्जुन जब तक उस विश्वरूप के प्रत्येक रूप को ही देखने में व्यस्त रहा, तब तक इस विशाल रूप के सारतत्त्व अनन्त स्वरूप को वह नहीं पहचान सका। अब इस खण्ड से यह स्पष्ट होता है कि अर्जुन ने विराट रूप के वास्तविक सत्य और अर्थ को पहचानना प्रारम्भ कर दिया था।

ऐसा भी माना गया है कि यह रक्षोघ्न मंन्त्र भी है, जिसे विपत्ति के समय 12 बार पढ़ लेने से एवम गाय के खुर की मिट्टी प्रेत बाधित व्यक्ति को लगा देने से प्रेत बाधा आदि भी ठीक हो जाती है।

हे हृषीकेश, आप की कीर्ति से अर्थात् आप की महिमा का कीर्तन और श्रवण करने से जो जगत् आप के अनुकूल है, वह हर्षित हो रहा है सो उचित ही है। जगत् जो भगवान् में अनुराग एवम प्रेम करता है, यह उसका अनुराग करना उचित ही है किन्तु जो प्रतिकूल राक्षसगण भय से युक्त हुए सब दिशाओं में भाग रहे हैं, यह भी ठीक ठिकाने की ही बात है। एवं समस्त कपिलादि सिद्धों के समुदाय जो नमस्कार कर रहे हैं, यह भी उचित ही है।

अर्जुन ही एक मात्र विराट स्वरूप का दर्शन कर रहा है, अतः इस स्तुति में उसे जो कुछ विराट स्वरूप में दिख रहा है उस के कारण उसे यह बोध हो रहा है कि अन्य देव, ऋषि आदि सम्पूर्ण जगत इस स्वरूप को देख रहे है, जब कि यह परमात्मा की भक्ति की यह प्रक्रिया संसार मे नित्य होने वाली प्रक्रिया मात्र है। यह सब विराट स्वरूप को देख कर नहीं हो रही। अर्जुन के सामने जो विराट विश्व रूप है, वह कालातीत है, जिस मे भूत- वर्तमान-भविष्य जैसा कुछ नही है, इसलिये उसे सम्पूर्ण जगत, देवता, ऋषिगण आदि परब्रह्म की स्तुति करते दिख रहे है। दैवी प्रवृति से युक्त लोग, परमात्मा की स्तुति कीर्तन, भजन, श्रुतियों से कर के अपने मोक्ष की कामना कर रहे है और असुरवृति के लोग डरे हुए लग रहे है।

अर्जुन आगे कहते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.36।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.37॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥

"kasmāc ca te na nameran mahātman,
garīyase brahmaṇo 'py ādi- kartre..।
ananta deveśa jagan- nivāsa,
tvam akṣaraṁ sad- asat tat paraṁ yat"..।।

भावार्थ:

हे महात्मा! यह सभी श्रेष्ठजन आपको नमस्कार क्यों न करें क्योंकि आप ही ब्रह्मा को भी उत्पन्न करने वाले हैं, हे अनन्त! हे देवादिदेव! हे जगत के आश्रय! आप अविनाशी, समस्त कारणों के मूल कारण, और आप ही परमतत्व है। (३७)

Meaning:

And why should they not bow to you, O great one, most honourable and ancient creator of even Brahmaa? You are infinite, O lord of lords, O abode of the universe, you are imperishable, that which is beyond both the manifest and unmanifest.

Explanation:

Arjuna continues his prayer to Ishvara's cosmic form. Here, he justifies why people who have preference for a particular deity were seen offering their salutations to the cosmic form. Arjun uses the words kasmāchcha tena, meaning "why should they not." Why shouldn't all living beings offer their humble respects to the Supreme Lord, when the entire creation emanates from him, is sustained by him, and shall merge back into him? He says that when we see someone superior in all respects to our deity, there is no reason not to bow to that person.

Ishvara in his cosmic form is the original cause, the creator of Lord Brahmaa. Therefore, Arjun specifically mentions that Shree Krishna is greater than the secondary creator Brahma because Brahma is the senior most in the universe. All living beings are either Brahma's progeny, or the descendants of his progeny. However, Brahma himself was born from a lotus that grew from the navel of Lord Vishnu, who is an expansion of Shree Krishna. Thus, while Brahma is considered as the senior most grandsire of the world, Shree Krishna is Brahma's Grandsire. It is thus apt that Brahma should bow to him.

So here Arjuna says, anyone who appreciates your glory as Viśva rūpa; the totality; doing namaskāra to you is very very natural and instinctive. Like those scientists who discover more and more the uniqueness of glory of creation. As Einstein said, the more I am studying the creation; I cannot but surrender or appreciate the glory of Lord. In fact, more you see the totality; vinayaḥ; humility is very natural.

sāhitya saṁgīta kalā vihīnāḥ,

sākṣāt paśuḥ puchcha vriṣna hīnā |

triṇṇanna kādannaḥ jīvamānāḥ, tat bhāgadēyam paraman paśunām ||

The one who cannot appreciate literature and music which requires a sensitive mind; That person is sākṣāt paśuḥ; only difference is what; puchcha vriṣna hīnā; tails and horns are missing; and the only difference from the cows is triṇṇanna kādannaḥ; he lives without eating grass; what is that; tat bhāgadēyam paraman paśunām. In fact, paśus feel happy that one competitor is less. So therefore, if I do not have music; it is not the music is absent; it is that I do not have that faculty which can sense the music.

Now, Arjuna described Ishvara as “sadasattatparam”. What does that mean? “Sat” in this context refers to the manifest world, things that we can perceive with our mind and our senses. “Asat” refers to the unmanifest world comprising our subconscious desires or our vaasanas. In computer terms, Sat is the hardware and asat is the software, the programming stored in memory. Our behaviour is driven by the unmanifest programming of our desires, just like a computer behaves according to its programming.

So, if we were to describe electricity, it would be beyond the hardware and the software. Tiny electrical currents store the software in memory, and powerful electrical currents create the hardware in a factory. Another

example we have come across is gold. Five grams of gold can make a necklace, or a bangle, or a biscuit. When the necklace is manifest, all the other shapes become unmanifest. But the gold transcends, it is beyond the manifest and the unmanifest. In the same way, Ishvara transcends the manifest and the unmanifest names and forms in this universe.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन स्तुति करते हुए, परमात्मा को चार सम्बोधनों से प्रार्थना करता है। 1) महात्मन अर्थात आप महान आत्मा विश्वरूप भगवान है एवम महान चतुर्भुज ब्रह्मा के आदि कारण रूप कर्ता है। 2) अनन्त अर्थात देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित है, आप के नाम, रूप, गुण प्रभाव रहित है। 3) देवेश अर्थात आप तैतीस कोटि देवताओ के स्वामी है एवम 4) जगन्निवास अर्थात आप जगत के प्रत्येक प्राणी में निवास करने वाले है। इनसे संबोधित करते हुए कहता है कि वे सिद्ध संघ आप को नमस्कार कैसे नहीं करें क्योंकि आप तो सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी के भी आदिकर्त्ता हैं। यह विश्व बीज महदब्रह्म ही आप के संकल्प से उत्पन्न हुआ है। आप सर्वदा निःसीम तत्व से भरे हुए है। आदिकारण वह है जो सम्पूर्ण कार्यजगत् को व्याप्त करके समस्त नाम और रूपों को धारण करता है, जैसे घटों का कारण मिट्टी और आभूषणों का कारण स्वर्ण है।

अर्जुन ने इस श्लोक में कस्माच्च तेन शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ 'वे क्यों न करे?' है। जब समस्त सृष्टि भगवान से उत्पन्न होती है और उनमें स्थित और वापस उन्हीं में विलय हो जाती है तब फिर सभी जीवों को भगवान के प्रति कृतज्ञता क्यों नहीं दर्शाना चाहिए? वे सब कुछ हैं। सृष्टि में जो भी व्यक्त है वह सब कुछ भगवान है क्योंकि वे सब भगवान की शक्ति हैं। सृष्टि में जो शेष अव्यक्त रह जाता है भगवान उसमें भी व्याप्त हैं क्योंकि यह उनकी अदृश्य शक्ति है। इसलिए वे व्यक्त और अव्यक्त दोनों से परे हैं क्योंकि वे सर्वशक्तिमान हैं और सभी शक्तियों का स्रोत और मूल हैं। इसलिए न तो भौतिक शक्ति और न ही जीवात्मा उनके विलक्षण व्यक्तित्त्व पर प्रभाव डाल सकती है। वे दोनों से श्रेष्ठ और परे हैं।

अर्जुन विशेष रूप से उल्लेख करता है कि वे ब्रह्मा से श्रेष्ठ हैं क्योंकि ब्रह्मा ब्रह्माण्ड में सबसे वरिष्ठ हैं। आप ब्रह्माजी के भी रचयिता हैं। पुराणों में हम सुनते हैं कि विष्णु की नाभि से ही वे उत्पन्न हुए। उन्हें पद्मनाभ कहा गया है और वहाँ कमल पर ब्रह्माजी प्रकट

हुए। यह पौराणिक दृष्टिकोण है; वेदान्तिक दृष्टिकोण क्या है; ईश्वर समस्ति कारण चैतन्य शरीर हैं; ब्रह्माजी समस्ति सूक्ष्म शरीर हैं; समस्ति कारण शरीर से समस्ति सूक्ष्म शरीर उत्पन्न हुए हैं। यदि आप सूक्ष्म शरीरम् और कारण शरीरम् आदि भूल गए हैं। चिंता न करें आप ब्रह्मा के निर्माता हैं, आदि करते हैं; यहाँ ब्रह्म सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म नहीं है, यहाँ ब्रह्माजी हैं; अनंत अनन्त; आप अनंत हैं; क्योंकि समय और स्थान आप में मौजूद हैं; आप समय और स्थान में मौजूद नहीं हैं; देवेश; जो सभी देवताओं के भगवान हैं; जगिन्नवा जगन्निवास; आप ब्रह्मांड का निवास हैं; आप ब्रह्मांड में नहीं रहते हैं; ब्रह्मांड आप में रहता है। सभी जीव ब्रह्मा या उनके वंशजों की सन्तानें हैं जबकि ब्रह्मा स्वयं भगवान विष्णु की कमलनाल से उत्पन्न हुए थे जो श्रीकृष्ण का विस्तार हैं। इसलिए ब्रह्मा को संसार का वरिष्ठ प्रपितामह माना गया है। अतः यह कहना उचित है कि ब्रह्मा को चाहिए कि वह भी भगवान को नमस्कार करें।

जो कोई भी विश्व रूप में आपकी महिमा की सराहना करता है; समग्रता; आपको नमस्कार करना बहुत ही स्वाभाविक और सहज है। उन वैज्ञानिकों की तरह जो सृष्टि की महिमा की विशिष्टता की अधिक से अधिक खोज करते हैं। **जैसा कि आइंस्टीन ने कहा; जितना अधिक मैं सृष्टि का अध्ययन कर रहा हूँ; मैं भगवान की महिमा के प्रति समर्पण या सराहना करने से नहीं बच सकता। वास्तव में, जितना अधिक आप समग्रता को देखते हैं; विनय:; विनमता बहुत ही स्वाभाविक है।**

साहित्य संगीत कला विहीनाः साक्षात् पशुः पुच्छ वृष्ण हीना। त्रिण्णन्न कदन्नः जीवमानाः तत् भगदेयं परमं पशुनाम् ।।

जो व्यक्ति संवेदनशील मन की आवश्यकता वाले साहित्य और संगीत की सराहना नहीं कर सकता, वह व्यक्ति साक्षात् पशु है। केवल अंतर क्या है; पुच्छ वृष्ण हीना; पूंछ और सींग नहीं हैं और गायों से एकमात्र अंतर यह है कि तृणन्न कदन्न:; वह घास खाए बिना रहता है। वह क्या है; तत् भगदेयं परमान् पशुनाम्। वास्तव में पशु खुश हैं कि एक प्रतियोगी कम हो गया। इसलिए अगर मेरे पास संगीत नहीं है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि संगीत अनुपस्थित है। यह है कि मेरे पास वह क्षमता नहीं है जो संगीत को महसूस कर सके।

नमस्कार श्रेष्ठ पुरुष को किया जाता है, इसलिये आरजू कहते है, आप अक्षरस्वरूप हैं। जिसकी स्वतःसिद्ध स्वतन्त्र सत्ता है, वह 'सत्' भी आप हैं; और जिसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, प्रत्युत सत्के आश्रित ही जिसकी सत्ता प्रतीत होती है, वह 'असत्' भी आप ही हैं। जो सत्

और असत् -- दोनोंसे विलक्षण है, जिसका किसी तरहसे निर्वचन नहीं हो सकता, मन-बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि किसीसे भी जिसकी कल्पना नहीं कर सकते अर्थात् जो सम्पूर्ण कल्पनाओंसे सर्वथा अतीत है, वह भी आप ही हैं।तात्पर्य यह हुआ कि आपसे बढ़कर दूसरा कोई है ही नहीं, हो सकता नहीं और होना सम्भव भी नहीं--ऐसे आपको नमस्कार करना उचित ही है।

इस चराचर जगत् को दो भागों सत् और असत् में विभाजित किया जा सकता है। जिसे परा - अपरा या अक्षर-क्षर भी कहा गया है। यहाँ सत् शब्द से अर्थ उन वस्तुओं से है, जो इन्द्रिय, मन और बुद्धि के द्वारा जानी जा सकती हैं, अर्थात् जो स्थूल और सूक्ष्म रूप में व्यक्त हैं। स्थूल विषय, भावनाएं और विचार व्यक्त (सत्) कहलाते हैं। इस व्यक्त का जो कारण है, उसे असत् अर्थात् अव्यक्त कहते हैं। व्यक्ति की जीवन पद्धति को नियन्त्रित करने वाला यह अव्यक्त कारण उस व्यक्ति के संस्कार या वासनाएं ही हैं। यहाँ परमात्मा की दी हुई परिभाषा के अनुसार वह सत् और असत् दोनों ही है और वह इन दोनों से परे भी है।

इस दृष्टि से, समस्त नामरूपों का सारतत्त्व होने से परमात्मा व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही है और अपने स्वरूप की दृष्टि से इन दोनों से परे अक्षर स्वरूप है।

वह, अक्षरतत्त्व चैतन्य स्वरूप है, जिसे हम परम् अक्षर सच्चिदानंदघन परमात्मतत्व से जानते है एवम जो स्थूल और सूक्ष्म दोनों का ही प्रकाशक है। इसी अक्षर ने ही यह विराट्रूप धारण किया है, जिसकी स्तुति अर्जुन कर रहा है। प्रस्तुत खण्ड, विश्व के सभी धर्मों में उपलब्ध सार्वभौमिक प्रार्थनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। परम् तत्व किसी भी रूप में पूजा जाए, वह उस एक ही तत्त्व का अंश है। किसी भी धर्म या जाति के लोगों को इसके प्रति कोई आक्षेप नहीं हो सकता, क्योंकि सनातन सत्य के विषय में जो कुछ भी प्रतिपादित सिद्धांत है। उसका ही सार यह खण्ड है। यह भक्त के हृदय को प्राय अप्रमेय की सीमा तक ऊँचा उठा सकता है। भक्त उसे साक्षात् अनुभव कर सकता है। ध्यान रहे कि केवल बौद्धिक स्तर पर कल्पना करने या मान लेने मात्र से ऐसी स्थिति नहीं मिलती, जो अक्षय हो। अर्जुन का प्रत्यक्ष दर्शन उस की आन्तरिक अनुभूति है।

व्यवहार में जब भी हम प्रकृति, ब्रह्मांड, जीव, जन्म-मरण जैसे विषय पर सोचते है, पर्वत, पेड़, वनस्पति, नदी, समुन्दर, आकाश एवम अन्तरिक्ष आदि आदि के बारे में अन्वेषण करते है तो हम स्वतः ही उस महान व्यक्तित्व के सामने नतमस्तक हो जाते है, जिस ने यह सब रचा है और जो यह सब चला रहा है। यहां तक कि शारीरिक रचना इतनी अद्भुत एवम विलक्षण है कि बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी उस महान रचनाकार के प्रति नतमस्तक है। फिर

अर्जुन जिस ने साक्षात परमात्मा के दर्शन किये हो, उस का बार बार नतमस्तक हो कर स्तुति करना स्ववाभिक ही है।

परमात्मा के प्रति कुछ लोग अहम और अज्ञान से ग्रसित हो कर दोषारोपण करते है। किंतु जिस ने परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को समझ लिया, वह हमेशा परमात्मा के प्रति शुक्र गुजार ही होगा। इसलिए हमें निर्णय देने का कोई अधिकार नहीं है। जब हम विभिन्न प्रकार के अनुभवों से गुजरते हैं। हमारा एकमात्र दृष्टिकोण यह है कि भगवान सर्वश्रेष्ठ जानते हैं और यह एक कथा है कि वे धर्मपुत्र युद्धिष्ठर, जिन्हें धर्म का अवतार माना जाता है लेकिन वे सभी प्रकार की समस्याओं से गुजरते हैं और धर्मपुत्र को स्वयं संदेह होता है कि मैं इन सभी कष्टों से कैसे गुज़र रहा हूँ। मैं जब धर्मपुत्र हूं। मैं ही क्यों? इस दृष्टिकोण को मैं ही क्यों कहा जाता है, इसका अर्थ है कोई और ठीक है; अच्छा; लेकिन मैं ही क्यों? तो धर्मपुत्र को जंगल में संदेह होता है। वह निराश हो जाता है; वह भगवान से क्रोधित हो जाता है। वह सोचता है कि संसार में केवल अन्याय ही भरा है। तब ऋषि आते हैं और उन्हें कहानियाँ सुनाते हैं। धर्मपुत्र को स्वयं सांत्वना देनी पड़ती है। उन कहानियों में ऋषि बताते हैं कि कोई भी कर्म फल से बच नहीं सकता, यहाँ तक यहां तक कि वे भी कठिन परिस्थितियों से भी गुजरते हैं जो स्वयं सिद्ध भाव और भावना से परिपूर्ण होते है, जैसे भगवान राम का वनवास में जाना। कष्ट हमारे पापों का प्रायश्चित है। पुण्य करने का समय वैसा ही है जैसा अभ्यास या व्यायाम करने का समय स्वस्थ रहते हुए करना। इसलिए कष्ट हमे चेतावनी देने के लिए आते है, जिस से हम संभल जाए। कर्म ही प्रारब्ध बनते है, इसलिए अच्छे कर्म करते रहना चाहिए। अज्ञानी की भांति कष्ट में हताश होने की अपेक्षा अपने कार्यों पर ध्यान दे और सबक ले।

अर्जुन आगे क्या कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.37।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.38॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥

"tvam ādi-devaḥ puruṣaḥ purāṇas,
tvam asya viśvasya paraṁ nidhānam..।

vettāsi vedyaṁ ca paraṁ ca dhāma,
tvayā tataṁ viśvam ananta-rūpa"..।।

भावार्थ:

आप आदि देव सनातन पुरुष हैं, आप इस संसार के परम आश्रय हैं, आप जानने योग्य हैं तथा आप ही जानने वाले हैं, आप ही परम धाम हैं और आप के ही द्वारा यह संसार अनन्त रूपों में व्याप्त हैं। (३८)

Meaning:

You are the primal lord, the ancient person. This universe is your supreme abode. You are the knower, the knowable and the supreme abode. By you is this universe pervaded, O one with infinite forms.

Explanation:

Arjun addresses Shree Krishna as the original Divine Person, the cause of all causes. Previously his namaskāra was a mere mechanical act, because we have been taught to do namaskāra in front of the Lord right from the childhood and since we have mechanically practised it; it is only a physical exercise; but for an enlightened person; every namaskāra is a very very significant inner expression of his attitude. The Lord represents the law of karma; and my namaskāra represents; I will never question the law of karma and that unquestioned acceptance is indicated by a physical action.

Every object and every personality has a cause, or a source, from which it came into being. Arjuna's understanding of Ishvara becomes clearer and clearer as this chapter unfolds. He acknowledges Ishvara's creative power by addressing him as "aadideva", the primal or first lord, the one who created Brahmaa, the creator. He also acknowledges that Ishvara has the power to create "anantaroopam", an infinite number of forms, which is what we experience as "vishwam", this magnificent universe. The first name of

Ishvara in the Vishnu Sahasranama, the thousand names of Vishnu, is vishwam.

Even Brahma prays to him:

īśhwaraḥ paramaḥ kṛiṣhaṇaḥ sachchidānanda vigrahaḥ; anādirādi govindaḥ sarva kāraṇa kāraṇam (Brahma Samhitā 5.1)[v12]

“Shree Krishna is the original form of the Supreme Lord. His personality is full of knowledge and Bliss. He is the origin of all, but he is without origin. He is the cause of all causes.”

Ishvara has not created the universe and stepped aside from it. He dwells in it as the ancient “purusha” or person, just like we dwell as the person in our body, the “city of nine gates” from the fifth chapter. Also, Ishvara is not located in just one specific area or corner of this universe. He is present everywhere. He is the “tatam” in the phrase “yenam sarvam idam tatam” from the second chapter. He pervades this entire creation, just like water pervades all ocean waves.

We know that even an inert object like a TV screen can conjure up an infinite number of names and forms. But Ishvara is far from inert. He is of the nature of awareness, of knowledge. He is the knower of everything that is to be known, all the forms that he has created. And when all these forms are dissolved, they end up in him, the final resting place, the “parama dhaama” or supreme abode.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन स्तुति करते हुए कहते है

आप सम्पूर्ण देवताओं के आदिदेव हैं क्योंकि सब से पहले आप ही प्रकट होते हैं। आप पुराण पुरुष हैं क्योंकि आप सदा से हैं और सदा ही रहनेवाले हैं। देखने, सुनने, समझने और जानने में जो कुछ संसार आता है और संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि जो कुछ होता है, उस

सबके परम आधार आप हैं। आप सम्पूर्ण संसार को जाननेवाले हैं अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान काल तथा देश, वस्तु, व्यक्ति आदि जो कुछ है, उन सबको जाननेवाले (सर्वज्ञ) आप ही हैं। वेदों, शास्त्रों, सन्त महात्माओं आदि के द्वारा जानने योग्य केवल आप ही हैं। जिस को मुक्ति परमपद आदि नामों से कहते हैं, जिस में जाकर फिर लौटकर नहीं आना पड़ता और जिस को प्राप्त करने पर करना, जानना और पाना कुछ भी बाकी नहीं रहता, ऐसे परमधाम आप हैं। विराट् रुप से प्रकट हुए आप के रूपों का कोई पारावार नहीं है। सब तरफ से ही आप के अनन्त रूप हैं। आप से यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है अर्थात् संसार के कण कण में आप ही व्याप्त हो रहे हैं।

अर्जुन श्रीकृष्ण को दिव्य सनातन पुरुष के रूप में संबोधित करता है जो सभी कारणों के कारण हैं। सभी वस्तुओं और सभी जीवन रूपों का कोई कारण या मूल होता है जिससे उनकी उत्पत्ति होती है।

तुलसीदास जी के वचन " सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोई सर्वग्य रामु भगवाना ।।" इसी को पुष्टि करते है।

आदिदेव आत्मा ही आदिकर्ता है। चैतन्यस्वरूप आत्मा से ही सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई है। समष्टि मन और बुद्धि से अविच्छिन्न (मर्यादित, सीमित) आत्मा ही ब्रह्माजी कहलाता है। विश्व के परम आश्रय सम्पूर्ण विश्व परमात्मा में निवास करता है, इसलिए उसे यहाँ विश्व का परम आश्रय कहा गया है। विश्व शब्द सत् और असत् (व्यक्त और अव्यक्त) का सम्मिलित रूप ही है। **ब्रह्मा जी भी प्रार्थना करते हुए कहते है:**

ईश्वरः परमः कृष्णः सचिदानंद विग्रहः अनादिरादी गोविन्दः सर्वकारणकरणम् (ब्रह्मसंहिता-5.1)

" श्रीकृष्ण परमात्मा का मूल स्वरूप हैं। वे सर्वज्ञाता और परम आनंद हैं। वे सबके कारण और स्वयं कारण रहित हैं। वह सब कारणों के कारण हैं।" श्रीकृष्ण सर्वांतर्यामी हैं। वे सर्वज्ञ और ज्ञेय दोनों हैं। श्रीमद्भागवतम् (4.29.49) में वर्णन है- "सा विद्या तन्मतिर्यया" में वर्णन किया गया है-"वास्तविक ज्ञान वही है जो भगवान को जानने में सहायता करे।"

जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज कहते है;

जो हरि सेवा हेतु हो, सोई कर्म बखान। जो हरि भगति बढ़ावे, सोई समुझिय ज्ञान ।।(भक्ति शतक श्लोक-66)

कोई भी कर्म यदि भगवान की सेवा के लिए किया जाता है तो उसे वास्तव में कर्म कहते हैं। जो ज्ञान भगवान से प्रेम को बढ़ाये वही वास्तविक ज्ञान है। अतः भगवान ज्ञाता और ज्ञेय दोनों हैं।

हम यह नहीं कह सकते कि जड़ जगत् की उत्पत्ति किसी अन्य स्वतन्त्र कारण से हुई है, क्योंकि आत्मा ही सर्वव्यापी, एकमेव अद्वितीय सत्य है। इसलिए, वेदान्त में कहा गया है कि यह विश्व परम सत्य ब्रह्म पर अध्यस्त (अध्यारोपित) है। यहाँ अर्जुन परमात्मा का निर्देश अत्यन्त सुन्दर प्रकार से विश्व के विधान कहकर करता है। आप ज्ञाता और ज्ञेय हैं चैतन्य ही वह तत्त्व है, जो हमारे अनुभवों को सत्यत्व प्रदान करता है। चैतन्य से प्रकाशित हुए बिना इस जड़ जगत् का ज्ञान सम्भव नहीं होता, इसलिए यहाँ चैतन्य स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण को ज्ञाता कहा गया है। आत्म साक्षात्कार हेतु उपदिष्ट सभी साधनाओं की प्रक्रिया यह है कि इन्द्रियादि के द्वारा विचलित होने वाला मन का ध्यान बाह्य विषयों से निवृत्त कर उसे आत्मस्वरूप में स्थिर किया जाय। जब यह मन वृत्तिशून्य हो जाता है, तब शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा का साक्षात् अनुभवगम्य बोध होता है। इसलिए आत्मा को यहाँ वेद्य अर्थात् जानने योग्य तत्त्व कहा गया है। सम्पूर्ण विश्व आपके द्वारा व्याप्त है जैसे समस्त मिष्ठानों में मधुरता व्याप्त है या तरंगों में जल व्याप्त है, वैसे ही विश्व में परमात्मा व्याप्त है। अभी कहा गया था कि अधिष्ठान के अतिरिक्त अध्यस्त वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं होता। आत्मा ही वह अधिष्ठान है, जिस पर यह नानाविश्व सृष्टि की प्रतीति हो रही है। इसलिए यहाँ उचित ही कहा गया है कि आपके द्वारा यह विश्व व्याप्त है। **यह केवल उपनिषद् प्रतिपादित उस सत्य की ही पुनरुक्ति है कि अनन्त ब्रह्म सब को व्याप्त करता है, परन्तु उसे कोई व्याप्त नहीं कर सकता है। जिसे नैति नैति कह कर व्यापकता का आभास करवाया गया है।**

अतः यहाँ विचार व्यक्त किया गया है माण्डूक्य उपनिषद से लिया विचार है। अतः वेत्ता का तात्पर्य विश्व तैजसा प्रज्ञा से है; वेद्यम् का तात्पर्य स्तूल सूक्ष्म, कारण प्रपंच से है। तीन जोड़े; और परम च धाम का अर्थ है वह जो तीन जोड़ों से परे है; वह तुरीय तत्व है; यहाँ एक दार्शनिक विचार व्यक्त किया गया है; परं च धाम परम च धाम; धाम का अर्थ है चैतन्यम; तुरीयं चैतन्यम आप हैं, जिसमें सभी ज्ञाता और ज्ञान की वस्तु विश्राम करती है।

अर्जुन द्वारा स्तुति के परमस्वरूप का वर्णन अर्जुन द्वारा परब्रह्म के साक्षात दर्शन से उत्पन्न ज्ञान को दर्शाता है, जो उसे पहले नही था। पहले वह नमस्कार करते हुए भगवान श्री

कृष्ण को गुरुपद के योग्य समझ कर भी अपनी शंकाओं का समाधान खोजता है, अब स्तुति में उसे परब्रह्म के दर्शन से उत्पन्न ज्ञान का आभास हो रहा है।

व्यवहार में जब हम किसी विषय को अंतर्मन से नही समझते और पारंपरिक तरीके से उस का निर्वाह करते है तो मन में श्रद्धा, विश्वास और प्रेम का अभाव तो होता ही है, पूरी तरह से समर्पण भी नही होता। इसलिए मां - बाप या बड़ों के पांव छूना चाहिए और उन का आशीर्वाद लेना चाहिए, मंदिर जा कर भगवान के हाथ जोड़ने आदि का निर्वाह परंपरा में यंत्रवत होता है। किंतु जब बात स्वार्थ, आत्मसम्मान या द्वेष की हो जाए, तो मर्यादा को पार कर के हम उन का अपमान या लड़ने को तैयार रहते है। आज के समाज में ज्ञान के अभाव में यंत्रवत पांव छूने वाला, अपने से बड़ों के प्रति श्रद्धा नही रखता और उन्हे मूर्ख भी समझता है। परिवार में बुजुर्ग होने पर यह अक्सर देखा जाता है, इसलिए में गलती मां - बाप और शिक्षा देने वाले बड़े लोगो की भी क्योंकि उन्होंने भी ज्ञान के अभाव में परंपरा निभाई और ज्ञान अपने आने वाली पीढ़ी को भी नही दिया। दुर्योधन, कंस या रावण में यही परंपराएं ज्ञान के साथ नहीं थी। लेकिन यदि यही ज्ञान, प्रेम, श्रद्धा और विश्वास के साथ संपूर्ण हो तो फिर चाहे यंत्रवत आप पांव नहीं भी छूते लेकिन आप की श्रद्धा और प्रेम हृदय से होगा और आप उन से द्वेष या लड़ाई नहीं कर पाएंगे। अर्जुन के अंदर ज्ञान अभी उपजा है, इसलिए वह ईश्वर के आदि स्वरूप को स्वीकार कर समर्पित भाव से प्रार्थना रहा है। इसलिए परंपराओं का पालन यंत्रवत होने की बजाए ज्ञान और शिक्षा के साथ होना चाहिए, जिस से उस का पालन करने वाले के हृदय में वह अंधविश्वास और भय से यंत्रवत न हो कर, ज्ञान के प्रकाश से युक्त हो और सही प्रकार से पालन किया जाए। परंपराएं समाज को एक नैतिक दिशा में चलाती है किंतु ज्ञान के अभाव में परंपराएं समाज को दूषित और अंधविश्वास में भी धकेल देती है।

अर्जुन आगे स्तुति करते हुए क्या कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.38।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.39॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

'vāyur yamo 'gnir varuṇaḥ śaśāṅkaḥ,
prajāpatis tvaṁ prapitāmahaś ca..।
namo namas te 'stu sahasra-kṛtvaḥ,
punaś ca bhūyo 'pi namo namas te"..।।

भावार्थ:

आप वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा तथा सभी प्राणीयों के पिता ब्रह्मा भी है और आप ही ब्रह्मा के पिता भी हैं, आपको बारम्बार नमस्कार! आपको हजारों बार नमस्कार! नमस्कार हो!! फिर भी आपको बार-बार नमस्कार! करता हूँ। (३९)

Meaning:

You are Vayu, Yama, Agni, Varuna, Shashaanka, Prajaapati and Prapitaamaha. Salutations to you a thousand times. Salutations to you, again and again.

Explanation:

Arjuna understood that the source of nature's power was none other than Ishvara. He saw Ishvara in all the primal forces of nature and listed their presiding deities: Vayu, the lord of wind who sustains all living beings. Yama, the lord of death who ensures justice for everyone. Agni, the lord of fire who provides energy to all beings. Varuna, the lord of life-giving water. Shashaanka, the moon, who nourishes all plants and herbs.

How could Ishvara manifest as all these deities? Because Ishvara functions as Prajaapati, also known as Lord Brahmaa, creator of the universe who brought all the deities into existence. Vedic texts refer to Brahmaa as Hiranyagarbha, the golden womb that brought forth the universe. But Ishvara existed even before Brahmaa was created, he is the Prapitaamaha, the great- grandfather, the original person.

You should know the logic behind it also; what is the logic; in the seventh chapter itself Krishna has introduced that Bhagavān is the kāraṇam; and the

whole creation is the kāryam; and we know the fundamental law that the kāraṇam alone appears in the form of manifold kāryam. Cause alone with different names and forms appears as various effects; just as one gold alone with different nāmās and rūpās appears as different forms of ornaments. There are no ornaments separate from gold; there are no furniture separate from wood; there are no waves and oceans separate from water; generalising, there are no products separate from cause. And the cause being God; there are no creations other than God. Therefore God alone is in the form of ākāśa, Agni, vāyuḥ, āpaḥ, that logic you should remember. It is given in one particular section of Brahmā sūtra.

So this logic is a powerful adikāraṇam; tat ananyatvam araṁbha śabdadibhyaḥ. It is called ārambhanādi kāraṇa nyāyā. So what is the logic; Effects do not exist separate from cause. Or to put in another language; cause alone appears as manifold effects.

Hence, in this verse, Arjun says that Shree Krishna is also Vāyu, Yamrāj, Agni, Varuṇ, Chandra, and Brahma. Similarly, the celestial gods have their distinct personalities and unique set of duties to discharge in the administration of the world. However, the same one God sitting in all of them manifests the special powers they possess.

When we are humbled, when we come in the presence of someone who is infinitely more capable than we are, we could have one of two reactions. If we have no respect for that person, we could harbour feelings of resentment and anger. But in this case, Arjuna was humbled by Ishvara for whom he had the utmost reverence. Knowing that the source of the universe was on his side, all he could do was repeatedly prostrate and offer his salutations. Knowing that it was Ishvara who was doing his work all along, Arjuna's completely surrendered his pride.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व में परमात्मा में स्वयं को सभी प्राणियों के बीज स्वरूप में अर्जुन को कहा था एवम यह भी कहा था कि कुछ ज्ञानी मन मे कामना ले कर विभिन्न देवी देवताओं को पूजते है, वे अज्ञान वश मुझे ही पूजते है, क्योंकि मैं ही उन सभी देवी देवताओं के द्वारा उन की योग्यताओं के अनुसार फल देता हूँ। अतः अर्जुन ने विराट विश्वरूप में इस सत्य को भी देखा, इस लिए प्रार्थना करते हुए कहते है।

वायुः- जिस से सब को प्राण मिल रहे हैं। वह वायु आप ही हैं। यमः - जो संयमनी पुरी के अधिपति हैं और सम्पूर्ण संसार पर जिन का शासन चलता है, वे यम आप ही हैं। अग्निः - जो सब में व्याप्त रह कर शक्ति देता है एवम प्रकट हो कर प्रकाश देता है, वह अग्नि आप ही हैं। वरुणः - जिस के द्वारा सब को जीवन मिल रहा है, उस जल के अधिपति वरुण आप ही हैं। शशाङ्क - जिस से सम्पूर्ण ओषधियों का, वनस्पतियों का पोषण होता है, वह चन्द्रमा आप ही हैं। प्रजापतिः - प्रजा को उत्पन्न करनेवाले दक्ष आदि प्रजापति आप ही हैं। अभी तक 14 प्रजापति हुए है जिन की कई पत्नियां है, सृष्टि की रचना में जीव की उत्पत्ति में इन का अपना योगदान है।

पितामहः इन सभी प्रजापतियों की उत्पत्ति ब्रह्मा जी से हुई है क्योंकि संपूर्ण सृष्टि की रचना का दायित्व ब्रह्मा जी का है।

प्रपितामहः - पितामह ब्रह्माजी को भी प्रकट करने वाले आप प्रपितामह हैं। इन्द्र आदि जितने भी देवता हैं, वे सब के सब आप ही हैं। आप अनन्तस्वरूप हैं। आप की मैं क्या स्तुति करूँ क्या महिमा गाऊँ मैं तो आपको हजारों बार नमस्कार ही कर सकता हूँ एवम कर रहा हूँ।

अब तक अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण के पर, अक्षर और निर्गुण स्वरूप का स्तुतिगान कर रहा था। एक उपासक के मन में यह प्रश्न आ सकता है कि इस सर्वातीत निर्गुण स्वरूप सत्य का उसके अपने इष्ट देवता (उपास्य) के साथ निश्चित रूप से क्या सम्बन्ध है।

प्राचीनकाल में प्राय प्राकृतिक शक्तियों के अधिष्ठातृ देवताओं की श्रद्धापूर्वक आराधना, प्रार्थना और उपासना की जाती थी।वेदकालीन साधकगण अन्तकरण की शुद्धि तथा एकाग्रता के लिए जिन देवताओं की उपासना करते थे, उन में प्रमुख वायु, यम, अग्नि, वरुण (जल का देवता), शशांङ्क (चन्द्रमा) और सृष्टिकर्ता प्रजापति। इन देवताओं का आह्वान स्त्रोतगान, पूजा तथा यज्ञयागादि के द्वारा किया जाता था। उस काल के शिक्षित वर्ग के लोगों के मन को भी ईश्वर के यही रूप इष्ट थे। **प्राय सर्वत्र लोग साधन को ही साध्य (लक्ष्य) समझने की गलती करते हैं। परन्तु, यहाँ अर्जुन प्रामाणिक ज्ञान के आधार पर यह दर्शाता है कि वस्तुत**

अनन्त तत्त्व ही समस्त देवताओं का मूल स्वरूप है। तथापि उस अनन्त को अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में देखता है। वेदान्त का यह सिद्धांत है कि एक ही परमात्मा विविध उपाधियों के द्वारा व्यक्त होकर इन देवताओं के रूप में प्राप्त होता है। वर्तमान काल में भी भक्तगण अपने इष्ट देवता के रूप में परमेश्वर का आह्वान कर अपने इष्ट को ही देवाधिदेव कहते हैं। इस देवेश को ही अर्जुन प्रणाम करता है।

अर्जुन की यह प्रार्थना उस के अहम को भी नष्ट करती है क्योंकि वह यह स्वीकार करने लग गया है सम्पूर्ण कार्यो को परमात्मा द्वारा ही विभिन्न रूप में किया जा रहा है।

गीता उन सभी पुराणों को एक स्थान पर लाने का प्रयास करती है, जिस में ब्रह्म स्वरूप अलग अलग देवी देवताओं को जैसे, माँ भगवती, शिव, विष्णु आदि को ब्रह्म स्वरूप एवम आदि सृष्टि के रचयिता का रूप दिया है। यह उन समस्त उपासक देवी -देवताओं को भी यह स्वरूप में देखने को प्रेरित करती है।

हमे इस प्रार्थना के पीछे का तर्क भी जानना चाहिए। तर्क यह है कि सातवें अध्याय में ही कृष्ण ने कहा है कि भगवान कारण हैं और सारी सृष्टि कार्य है और हम इस मूलभूत नियम को जानते हैं कि कारण ही अनेक कार्यों के रूप में प्रकट होता है। अलग-अलग नामों और रूपों के साथ अकेला कारण ही विभिन्न प्रभावों के रूप में प्रकट होता है; जैसे अलग-अलग नामों और रूपों के साथ अकेला सोना ही विभिन्न आभूषणों के रूप में प्रकट होता है। सोने से अलग कोई आभूषण नहीं है। लकड़ी से अलग कोई फर्नीचर नहीं है। पानी से अलग कोई लहरें और समुद्र नहीं हैं। सामान्य तौर पर, कारण से अलग कोई उत्पाद नहीं है। और कारण भगवान है, भगवान के अलावा कोई रचना नहीं है। इसलिए भगवान ही आकाश, अग्नि, वायु, आप के रूप में हैं, वह तर्क आपको याद रखना चाहिए। यह ब्रह्म सूत्र के एक विशेष खंड में दिया गया है। तो यह तर्क एक शक्तिशाली अधिकरणम है। तत् अनन्यत्वं आरम्भ शब्दादिभ्यः। इसे आरम्भनादि कारण न्याय कहते हैं। तो तर्क यह है कि प्रभाव कारण से अलग नहीं होते। या दूसरे शब्दों में कहें तो कारण ही अनेक प्रभावों के रूप में प्रकट होता है।

इसलिए, इस श्लोक में अर्जुन कहते हैं कि श्रीकृष्ण वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चंद्र और ब्रह्मा भी हैं। इसी तरह, स्वर्ग के देवताओं के पास दुनिया के प्रशासन में निर्वहन करने के लिए अपने अलग-अलग व्यक्तित्व और विशिष्ट कर्तव्य हैं। हालाँकि, उन सभी में बैठा एक ही भगवान उनकी विशेष शक्तियों को प्रकट करता है।

ज्ञान की विभिन्न शाखाएँ जैसे भौतिक, रसायन, तांत्रिक, ज्योतिषी आदि हो सकती है किंतु ज्ञान तो एक ही है। एक व्यक्ति ही पिता, पुत्र, भाई, पति, साला, बहनोई, सगा, ससुर हो सकता है, परंतु वह विभिन्न व्यक्तित्व में है एक ही।

प्रस्तुत श्लोक में अर्जुन नमस्कार एक या दो बार नही करते हुए बार बार अर्थात सहस्त्र बार कर रहे है। वह परमात्मा के स्वरूप से इतने अधिक प्रभावित है कि उन्हें उनको उन के प्रत्येक स्वरूप को नमस्कार के अतिरिक्त कुछ भी नही सूझ रहा है। इसलिये सहस्त्र बार नमस्कार करने के बाद, भी वह आगे क्या कहते है, पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11. 39।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.40॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वंसर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥

"namaḥ purastād atha pṛṣṭhatas te,
namo 'stu te sarvata eva sarva..।
ananta-vīryāmita-vikramas tvaṁ,
sarvaṁ samāpnoṣi tato 'si sarvaḥ"..।।

भावार्थ:

हे असीम शक्तिमान! मैं आप को आगे से, पीछे से और सभी ओर से ही नमस्कार करता हूँ क्योंकि आप ही सब कुछ है, आप अनन्त पराक्रम के स्वामी है, आप ही से समस्त संसार व्याप्त हैं, अत: आप ही सब कुछ हैं। (४०)

Meaning:

Salutations to you from before and behind. Indeed, let there be salutations to you everywhere, O one with infinite power, O one with infinite valour. You pervade all, therefore you are everything.

Explanation:

Arjuna, wielder of Lord Shiva's Gaandiva bow, was universally regarded as one of the foremost archers of his time. So far, he thought that it was his might and power that was defeating the Kauravas. But now, after beholding the cosmic form, his pride had dropped completely. In this shloka, he acknowledged that his power and valour came from Ishvara, and that he was only the "nimitta", the instrument for channelling that power.

Now, we have seen ten chapters of the Gita. Each chapter is called a "yoga", because it takes us higher and higher in our spiritual journey if we can understand and implement its teaching. In the previous chapter, Shri Krishna wanted Arjuna to see the one Ishvara in all beings, to see unity in diversity. In this chapter, he wanted Arjuna to see all beings in that one Ishvara, to see diversity ultimately subsumed into unity. Shri Krishna's goal was fulfilled when Arjuna realized the truth expounded in the Upanishads, declaring here that Ishvara pervades everything, and that he ultimately is everything.

So, when he recognized Ishwara as the infinite source of all power and valour, and in fact, the ultimate source and cause of everything, Arjuna could not help but repeatedly offer salutations to that cosmic form. But as we saw earlier, he had lost all notions of space and direction. He did not know what was north or south, or what was up or down. So giddy was his state of mind that he wanted to offer salutations to Ishvara from the front, back and all directions.

Offering our salutations to Ishvara, also known as "vandanam", is considered one of nine methods of worship. Shree Ramdas Samartha has devoted an entire section of the Dasbodh to describe the glories of vandanam. He considers it one of the simplest and most effective tools to connect with Ishvara. By its very nature, offering salutations or bowing to someone

automatically eliminates our ahankaara, our ego, the primary obstacle to connecting with Ishvara.

Arjun continues with his glorification of Shree Krishna by declaring him as ananta-vīrya (possessing infinite strength) and ananta-vikramaḥ (immeasurably powerful). Having understood the purpose of the cosmic form, Arjuna began to ask for Shri Krishna's forgiveness next.

Footnotes

1. Vandanam is elaborated in the fifth section of the fourth chapter of the Dasbodh.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अब अर्जुन प्रथम अध्याय वाले अर्जुन जिसे अपने कर्ता होने का अहम था, जिसे अपनी वीरता पर घमंड था। जो अपने को परमज्ञानी, सहिंष्णु, मोह एवम आध्यात्मिक समझता था। वह नहीं रहा। उस का भ्रम अब नष्ट हो चुका था। उस का मोह, भय, अहम एवम कर्ता भाव भी खत्म हो चुका था। विश्वरूप दर्शन के कारण उसे अपनी तुच्छता का आभास हो रहा था। इस लिये वो स्तुति किये जा रहा था।

अर्जुन श्रीकृष्ण की महिमा का निरन्तर गान करते हुए इस प्रकार से यह घोषणा करता है कि वे 'अनंतवीर्या' और 'अनन्त विक्रमस्त्वं' अर्थात असीम शक्तिशाली और पराक्रमी हैं। वह विस्मित होकर उन्हें सभी दिशाओं से बार-बार नमो-नमो कहकर नमस्कार करता है।

किसी भी व्यक्ति की महानता का मापदंड उस के उपस्थित रहते ही हो या उस के समक्ष ही हो तो वह उस के पद और अधिकार के कारण होती है किन्तु जो स्वयम में सक्षम और महान है उस की कीर्ति चारो दिशाओं, ऊपर-नीचे सभी ओर स्वतः ही फैली रहती है। वैसे ही आंखे जो सामने देख सकती है उसे न अपनी और न ही समस्त खड़े व्यक्ति के पीठ नही दिखाई देती। व्यक्ति या जीव अपनी प्रकृति प्रदत्त इंद्रियाओ से सीमितता से बंधा है। इसलिये अर्जुन प्रार्थना करते हुए कहते है।

आप को आगे से अर्थात् पूर्व दिशा में और पीछे से भी नमस्कार है। हे सर्वरूप आपको सब ओर दशो दिशाओं से नमस्कार है अर्थात् सर्वत्र स्थित हुए आपको सब दिशाओंमें नमस्कार

है। आप अनन्तवीर्य और अपार पराक्रमवाले हैं। आप अपने एक स्वरूप से सारे जगत् को व्याप्त किये हुए स्थित हैं, इसलिये आप सर्वरूप हैं, अर्थात् आप से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

अर्जुन की स्तुति इस बात की भी स्वीकोरोति है, वह अज्ञान वश इतने समय से जिस व्यक्ति के साथ था, जिसे वह बाल सखा, रिश्तेदार, मार्गदर्शक मान कर मित्रवत व्यवहार कर रहा था वो इतना महान अव्यक्त परमात्मा है, इसलिये वो अपनी भूल को भी सुधारना चाहता है।

परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, उस के अनेक स्वरूप है, अग्नि, वायु, जल, आकाश और पृथ्वी से ले कर समस्त देवी देवता, जीव, ब्रह्मा, विष्णु और महेश एवम अवतरित सभी स्वरूप उस के है। वह कालातीत, आदि और अन्त से रहित है। अन्तर्बाह्य, अधउर्ध्व, समस्त दिशाओं में व्याप्त है। उससे रिक्त कोई स्थान नहीं है। यह कोई अकेले अर्जुन का मौलिक विचार नहीं है। उपनिषद् के महान् ऋषिगण तो इस अनुभव में अखण्ड वास करते थे। विष्णु पुराण में कहा गया है- आप के समक्ष जो भी आता है, चाहे वह देवता ही क्यों न हो, हे भगवान! वह आप के द्वारा ही उत्पन्न है।

ईश्वर के सर्वरूप में व्याप्त जगत में क्षुद्र से भी क्षुद्रतम अणु मात्र भी ऐसी कोई भी जगह या वस्तु नहीं है, जिस में परमात्मा न हो। अर्थात जगत का कर्ता, धर्ता, दृश्यता सभी ईश्वर ही है। जब हम मंदिर में जाते है या देव मूर्ति के समक्ष खड़े हो कर प्रार्थना करते है तो उस की परिक्रमा भी करते है और पीठ को नमन भी करते है। यह इसी बात की पुष्टि है कि परमात्मा वो समक्ष है वो सर्व व्याप्त है और हम उसे हर ओर दसो दिशाओं से नमन करते है। यह ही पूर्ण समर्पण है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.40।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.41-42॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदंमया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥४१।।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षंतत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२।।

"sakheti matvā prasabhaṁ yad uktaṁ,
he kṛṣṇa he yādava he sakheti..।
ajānatā mahimānaṁ tavedaṁ,
mayā pramādāt praṇayena vāpi"..।।41।।

"yac cāvahāsārtham asat-kṛto 'si,
vihāra-śayyāsana-bhojaneṣu..।
eko 'tha vāpy acyuta tat-samakṣaṁ,
tat kṣāmaye tvām aham aprameyam"..।।42।।

भावार्थ:

आप को अपना मित्र मानकर मैंने हठपूर्वक आप को हे कृष्ण!, हे यादव! हे सखा! इस प्रकार आप की महिमा को जाने बिना मूर्खतावश या प्रेमवश जो कुछ कहा है, हे अच्युत! यही नही हँसी-मजाक में आराम करते हुए, सोते हुए, वैठते हुए या भोजन करते हुए, कभी अकेले में या कभी मित्रों के सामने मैंने आपका जो अनादर किया हैं उन सभी अपराधों के लिये मैं क्षमा माँगता हूँ। (४१-४२)

Meaning:

Thinking of you as a friend, I addressed you rashly as O Krishna, O Yaadava, O friend. Not knowing your greatness, I said it in this manner out of carelessness or also out of affection. Whatever insults were said to you in jest, while resting, sleeping, sitting, dining, O resolute one, while in solitude or in front of others, for all that, I ask your forgiveness, O immeasureable one.

Explanation:

Arjuna and Shri Krishna were childhood friends. Growing up together, Arjuna never realized the divine nature of Shri Krishna's birth. He had treated him as he would treat any other friend of his. Now, having understood his divine nature having viewed the cosmic form, he wanted to acknowledge his ill-treatment of Shri Krishna, and beg for forgiveness for all the times he had

acted imprudently. After all he was Arjuna, whose name meant “one who is extremely straight- forward”.

In Arjuna’s time, just like in the present time, insults with respect to people’s skin colour or caste were quite popular. Arjuna recounts his insults to Shri Krishna where he used to call him dark- skinned, refer to his caste, or call him a friend instead of a more respectable title. And like any of us, his intellect knew that insulting anyone was not the right thing to do, but he did it anyway. Knowing this well, Arjuna owned up to his ignorance, carelessness and rash behaviour.

But Arjuna also gave another side of the story. Although he did insult Shri Krishna out of carelessness in some instances, there were other instances when he did it out of sheer affection for his friend. When there is affection from both sides between friends, it is totally acceptable to insult each other. Arjuna was going to ask for forgiveness very soon, and hoped that Shri Krishna would keep this side of the story in his mind.

Throughout the Gita, Shri Krishna repeatedly emphasized the importance of maintaining an attitude of equanimity, of sameness, to objects, situations and people that we encounter. He used phrases like “do not view a brahmin different that an outcaste”, “view gold and clay as the same”, “one who views friends, enemies and well-wishers with the same vision is superior”. But when Arjuna examined his past treatment of Krishna, he found that he did not live up to that standard.

Now that he had received the knowledge of equanimity from Shri Krishna, Arjuna wanted to confess his misbehaviour and ask for forgiveness from Shri Krishna. He acknowledged that his behaviour was purely driven by ignorance and jest. It is said in the Mahaabhaarata that Arjuna was fond of pulling pranks on Shri Krishna during their childhood days. He once pulled a chair

on which Shri Krishna was about to sit. He wanted to reassure Shri Krishna that in all those pranks, he meant no malice whatsoever.

As he implored for forgiveness, Arjuna addressed Shri Krishna as “achyuta”, one who never falls from his position, asserting that Shri Krishna’s conduct was beyond reproach, that he practised what he preached. He also addressed him as “aprameyam”, one who is so infinite that he cannot be measured. Forgiveness can only come from one who has a large heart. Confessing his wrongdoings to Shri Krishna enabled Arjuna to start with a clean slate and begin to follow his teachings.

।। हिंदी समीक्षा ।।

भगवान की प्रभुता को अद्‌वितीय घोषित करते हुए वेदों में वर्णन किया गया है

अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् किश्चातर बहिः (श्रीमद्‌भागवतम्-6.4.47)

"मैं परम प्रभु सभी अस्तित्वों में स्थित हूँ, मेरे से परे और मेरे से बढ़कर कोई नहीं है"

त्वॐकारः परात्परः (वाल्मीकि रामायण)

"अनादि शब्द 'ओम्' आपकी अभिव्यक्ति है। आप महानों में महानतम हैं।"

वासुदेवः प्राः प्रभुः (नारद पंचरात्र)

" श्रीकृष्ण परम भगवान हैं।"

न देवः केशवात परः (नारद पुराण)

"भगवान कृष्ण से बढ़कर कोई देवता नहीं है।"

विदयात् तम पुरुषम् परम् (मनुस्मृति-12.122)

"भगवान सभी व्यक्तित्वों में सर्वश्रेष्ठ और परम हैं" लेकिन जैसे कि पहले इस अध्याय में श्लोक-24 में उल्लेख किया है कि जब प्रेम-प्रगाढ़ हो जाता है तो प्रेमी प्रियतम की औपचारिक पदवी को भूल जाता है। इस प्रकार से अर्जुन श्रीकृष्ण के साथ व्यतीत किए गए गहन अंतरंग

मित्रता के अविस्मरणीय क्षणों के आनन्द में निमग्न होने के कारण उनकी सर्वोच्च स्थिति से अनभिज्ञ था।

प्रेम, प्रमाद और विनोद - तीन कारणों में मनुष्य का व्यवहार, लोक व्यवहार से भिन्न होता है एवम व्यवहार करते समय वाणी में कोई नियंत्रण नही रहता। आपसी प्रेम के कारण यह व्यवहार में कोई भी मान- अपमान की भावना नहीं रखता, क्योंकि व्यवहार में औपचरिकता नही होती।

इसी प्रकार साथ साथ घूमने, सोने, बैठने, खाने पीने एवम खेलने आदि के अवसर में यह व्यवहार व्यक्ति के लोक व्यवहार एवम व्यक्तित्व से परे आत्मिक होता है।

न्यायधीश का व्यवहार अपने आफिस या कोर्ट में अलग एवम कोर्ट के बाहर घर परिवार एवम मित्रों में अलग अलग होगा। इसलिए सामान्य वेशभूषा में किसी उच्च अधिकारी को हम यदि पहचानते तो हमारा व्यवहार भी सामान्य सामाजिक जानपहचान या रिश्ते के अनुसार ही होगा।

अर्जुन परमात्मा के विराट स्वरूप के दर्शन के बाद अपनी तुच्छता को महसूस करते है और कहते है। “जो बड़े आदमी होते हैं, श्रेष्ठ पुरुष होते हैं, उनको साक्षात् नाम से नहीं पुकारा जाता। उनके लिये तो आप, महाराज आदि शब्दों का प्रयोग होता है। परन्तु मैंने आपको कभी हे कृष्ण कह दिया, कभी हे यादव कह दिया और कभी हे सखे कह दिया। बोलने में मैंने बिलकुल ही सावधानी नहीं बरती। मैंने आपको बराबरी का साधारण मित्र समझकर हँसी दिल्लगी करते समय, रास्तेमें चलते फिरते समय, शय्या पर सोतेजागते समय, आसनपर उठतेबैठते समय, भोजन करते समय जो कुछ अपमानके शब्द कहे, आप का असत्कार किया अथवा **हे अच्युत** जब भी आप अकेले थे, उस समय या उन सखाओं, कुटुम्बीजनों सभ्य व्यक्तियों आदिके सामने मैंने आपका जो कुछ तिरस्कार किया है, वह सब के लिए मैं आपसे क्षमा मांगता हूँ।“

तीन पूर्व के संबोधन को ध्यान करते हुए अभी अच्युत संबोधन करते हुए अर्जुन ने स्पष्ट कर दिया कि आप का मान एवम सम्मान, महत्व एवम स्वरूप न पहले कम था एवम न आज भी कम है। यदि कुछ गलती है तो उस की है। क्योंकि उस का ही व्यवहार सही नही था।

जब कोई सामान्य व्यक्ति अकस्मात् ही परमात्मा के महात्म्य का परिचय पाता है, तब उस के मन में जिन भावनाओं का निश्चित रूप से उदय होता है, उन्हें इन दो सुन्दर श्लोकों के द्वारा नाटकीय यथार्थता के साथ सामने लाया गया है। अर्जुन को कृष्ण पर अथाह विस्वास एवम श्रद्धा थी, इसलिये उस ने दुर्योधन के समक्ष निशस्त्र कृष्ण को उन की सेना की जगह मांगा। किन्तु वह विश्वरूप परमात्मा है यह उसे ज्ञात न था। इसलिये उस की यह दशा हुई।

कुछ ऐसा ही प्रसंग राम चरित मानस का जब प्रभु राम के अपरिमित पराक्रम, अनन्त शक्ति को देख कर अपनी त्रुटि पर **समुन्द्र क्षमा मांगते हुए कहता है " सभय सिंधु गाहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।।"**

बिना सत्य के बोध में अज्ञानता वश भी यदि अनुचित व्यवहार हो, तो भी श्रेष्ठ लोग अपनी गलती को स्वीकार करते है एवम सत्य के प्रकट होने पर यदि कोई क्षमा मांगते है तो वह व्यक्ति असुया ही है जिसे हम पहले भी पढ़ चुके है।

यहाँ बौद्धिक दार्शनिक चिन्तन का घनिष्ठ परिचय के भावुक पक्ष के साथ सुन्दर संयोग हुआ है। गीता का प्रयोजन ही यह है कि वेद प्रतिपादित सत्यों की सुमधुर ध्वनि का व्यावहारिक जगत् की सुखद लय के साथ मिलन कराया जाये। घनिष्ठ परिचय के इन भावुक स्पर्शों के द्वारा व्यासजी की कुशल लेखनी, वेदान्त के विचारोत्तेजक महान् सत्यों को, अचानक अपने घर की बैठक में होने वाले वार्तालाप के परिचित वातावरण में ले आती है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11. 41-42।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.43॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्योलोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥

pitāsi lokasya carācarasya,
tvam asya pūjyaś ca gurur garīyān ।
na tvat-samo 'sty abhyadhikaḥ kuto 'nyo,
loka-traye 'py apratima-prabhāva।।

भावार्थ:

आप इस चल और अचल जगत के पिता और आप ही इस जगत में पूज्यनीय आध्यात्मिक गुरु हैं, हे अचिन्त्य शक्ति वाले प्रभु! तीनों लोकों में अन्य न तो कोई आपके समान हो सकता हैं और न ही कोई आपसे बढकर हो सकता है। (४३)

Meaning:

You are the father of this universe, of all that is moving and non-moving. You are most worthy of worship, and the greatest teacher among teachers. There is none like you. How could anyone be superior than you in all the three worlds, O one of immeasurable impact?

Explanation:

Arjuna describes the characteristics of an ideal parent in this shloka. Who is an ideal parent? Any parent should obviously provide physical and emotional nourishment to their children. But ideal parents also become the greatest gurus, the greatest teachers, for their children. Only when parents teach the right knowledge and values do they become worthy of being worshipped by their children. Symbolically speaking, Ishvara is the ideal parent because he is the ultimate cause of this universe that is made up of sentient and insentient objects.

The first spiritual master was the creator Brahma, who passed on the knowledge to his disciple, and so on. However, Brahma received the Vedic knowledge from Shree Krishna. **The Śhrīmad Bhāgavatam (1.1.1) states: tene brahma hṛidāya ādi kavaye [v20] "Shree Krishna imparted Vedic knowledge into the heart of the first-born Brahma." Thus, he is the supreme spiritual master.**

The Śhwetāśhvatar Upaniṣhad states: na tatsamaśhchābhyadhikaśh cha dṛiśhyate (6.8)[v21] "Nobody is equal to God, nor is anyone superior to him."

Arjuna also refers to Ishvara as the ultimate overlord of the three worlds. Traditionally, we think of these three worlds as referring to heaven , hell and earth. Another meaning of the three worlds is the three states in which we exist. In the day, we exist in the waking state where our intellect, our faculty of logic and reason is active. In the night, we go into our dream state, where our intellect is shut off but our mind creates whole new dream worlds. We then go into a state of deep sleep, where neither the mind nor the intellect functions.

Bhagavān creates the world; stage one.

Stage two is Bhagavān himself becomes as the world; therefore, the world is world Bhagavān himself; this is the next stage.

And the last stage is Bhagavān appears as the world without undergoing change.

First stage is called nimitha kāraṇa Īśvaraḥ or ēkarūpa Īśvaraḥ; the second stage is called upādāna kāraṇa Īśvaraḥ or anēkarūpa Īśvaraḥ; the third stage is called vivaṛtha upādāna Īśvaraḥ or arūpa Īśvaraḥ.

Though we keep going through all three states daily, the sense that “I exist” is common. The Mandukya Upanishad uses this analysis to reveal the nature of the eternal essence. In this shloka, Arjuna asserts that Ishvara is with us as the “I am” principle in all of these three states of waking, dream and deep sleep. To this great being, Arjuna surrenders his ego by declaring that there is nothing else in the entire universe like Ishvara.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन क्षमा मांगते हुए कहते है कि आप इस स्थावरजंगमरूप समस्त जगत् के यानी प्राणि मात्र के उत्पन्न करने वाले पिता हैं। हम पुत्र समान है, केवल पिता ही नहीं, आप सर्वश्रेष्ठ पूजनीय भी हैं। क्योंकि लोग देवताओ की पूजा करते है, देवता संसार के रचयिता ब्रह्मा जी को पूजते और ब्रह्मा जी का उद्गम आप से ही हुआ है अतः इस जगत के आदि आप ही है।

क्योंकि आप बड़े से बड़े गुरु हैं। हे अप्रतिमप्रभाव सारी त्रिलोकी में आप के समान दूसरा कोई नहीं है क्योंकि अनेक ईश्वर मान लेने पर व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये ईश्वर दो नहीं हो सकते। जब कि सारे त्रिभुवनमें आपके समान ही दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो कोई हो ही कैसे सकता है जिससे किसी वस्तु की समानता की जाय उसका नाम प्रतिमा है, जिन आपके प्रभावकी कोई प्रतिमा नहीं है, वह आप अप्रतिमप्रभाव हैं।

जीव का लालन पोषण माँ करती है, वो जननी है। किंतु जीव का सांसारिक परिचय उस के पिता से होता है, जो उसे जीने के उत्तम संस्कार, शिक्षा एवम व्यक्तित्व देता है। पिता के बाद जीव अपने गुरु द्वारा ही वो सब प्राप्त करता है जो उस के अस्तित्व का बोध कराता है। अर्जुन ने परमात्मा को पिता एवम गुरु दोनों के संबोधन से सर्वश्रेष्ठ स्थान देते हुए प्रार्थना की है।

सृष्टा ब्रह्मा प्रथम आध्यात्मिक गुरु थे जिन्होंने अपने शिष्यों को ज्ञान दिया और जो गुरु परम्परा के अंतर्गत निरन्तर जारी रहा। किन्तु ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण से वैदिक ज्ञान अर्जित किया था।

श्रीमद्भागवत् (1.1.1) में उल्लेख है- "तेने ब्रह्म ह्रदा य आदिकवये" अर्थात श्रीकृष्ण ने प्रथम जन्मा ब्रह्मा के ह्रदय में वैदिक ज्ञान प्रकट किया। इसलिए वे परम आध्यात्मिक गुरु हैं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में उल्लेख है; न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते (श्वेताश्वतरोपनिषद्-6.8) "भगवान के समतुल्य कोई नहीं है और न ही कोई उनसे श्रेष्ठ है।"

सूरदास ने भी कहा है- दीन कौ दयाल सुन्यौ, अभय -दान- दाता। साँची बिरुदावली, तुम जगत के पितु- माता। व्याध- गीध- गनिका- गज इन मे को ज्ञाता? सुमिरत तुम आए तहँ त्रिभुवन विख्याता। तीनि लोक विभव दीयौ तन्दुल कै खाता। सरबस प्रभु रीझि देते तुलसी के पाता।

हम यहाँ देखते हैं कि भावावेश के कारण अवरुद्ध कण्ठ से अर्जुन श्रीकृष्ण के प्रति अत्यादर के साथ कहता है कि आप इस चराचर जगत् के पिता हैं। निसन्देह ही जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं के अनुभव लोक, आत्मतत्त्व की स्थूल, सूक्ष्म और कारण उपाधियों के द्वारा अभिव्यक्ति से ही विद्यमान प्रतीत होते हैं। उन सबका प्रकाशक आत्मचैतन्य सर्वत्र एक ही है।स्वाभाविक है कि अर्जुन के कथन के अनुसार भगवान् अप्रतिम प्रभाव से सम्पन्न हैं और उनके समान भी जब कोई नहीं है तो उनसे अधिक श्रेष्ठ कौन हो सकता है क्योंकि

वास्तविकता ऐसी है। प्रार्थना में स्तुति अभिव्यक्ति की वह सीमा होती है जो व्यक्ति के उन भावो को व्यक्त करती है जिस सीमा तक उस व्यक्ति का समर्पण है। यह ह्रदय से उत्पन्न उदगार व्यक्त करते समय के भाव से प्रकट होता है। यही अभिव्यक्ति जब श्रद्धा, विश्वास और समर्पित भाव मे कामना और आसक्ति रहित हो तो प्रार्थना या स्तुति कहलाती है।

परमात्मा के स्वरूप को पूर्व के अध्याय में तीन स्थिति में वर्णित किया है।

भगवान संसार की रचना करते हैं; पहला चरण।

दूसरा चरण है भगवान स्वयं संसार बन जाते हैं; इसलिए संसार स्वयं भगवान है; यह अगला चरण है।

और अंतिम चरण है भगवान बिना किसी परिवर्तन के संसार के रूप में प्रकट होते हैं।

पहला चरण है निमित्त कारण ईश्वर या एकरूप ईश्वर, दूसरा चरण है उपादान कारण ईश्वर या अनेकरूप ईश्वर और तीसरा चरण है विवरथ उपादान ईश्वरः या अरूप ईश्वरः।

श्रीकृष्ण वेदों के ज्ञाता हैं यह मानकर अर्जुन उनके संबंध में उपर्युक्त गुणों का वर्णन कर रहा है। अर्जुन प्रार्थना करते हुए क्षमा किसी प्रकार मांगते है, यह हम आगे पढ़ते है ।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.43।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.44॥

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायंप्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

"tasmāt praṇamya praṇidhāya kāyaṁ,
prasādaye tvām aham īśam īḍyam..।
piteva putrasya sakheva sakhyuḥ,
priyaḥ priyāyārhasi deva soḍhum"..।।

भावार्थ:

अत: मैं समस्त जीवों के पूज्यनीय भगवान के चरणों में गिर कर साष्टाँग प्रणाम करके आप की कृपा के लिए प्रार्थना करता हूँ, हे मेरे प्रभु! जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के अपराधों को,

मित्र अपने मित्र के अपराधों को और प्रेमी अपनी प्रिया के अपराधों को सहन कर लेता हैं उसी प्रकार आप मेरे अपराधों को सहन करने की कृपा करें। (४४)

Meaning:

Therefore, prostrating my body, bowing down, I beg you to be pleased, O Ishvara, worthy of worship. Like a father tolerates his son, a friend his friend, a lover his beloved, so should you tolerate (me), O Lord.

Explanation:

This shloka evokes an illustration fro fcm The Mundaka Upanishad of two birds sitting on the branch of a tree. The two birds are friends. One bird, symbolizing the human condition, is completely engrossed in enjoying the fruit of the tree. This bird doesn't realize that it has developed an attachment to the fruit, and that the fruit will eventually become the cause of its sorrow. Similarly, we do not realize that the more we get stuck in objects, the more the objects get stuck to us. The Gita has repeatedly pointed out this theme.

Now, the second bird on that branch symbolizes the Ishvara principle. It does not get attached to the fruit, it simply watches the show as a passive onlooker. The first bird is so engrossed in its sense enjoyments that it never pays attention to the second bird. Like Arjuna, and like all of us, the first bird is stuck in the delusion of the material world. The moment the first bird stops its indulgence and looks at the second bird, its bondage is snapped. Without the help of this Ishvara principle, we cannot extricate ourselves from the pull of the senses. For most of us, this Ishvara principle is our teacher, our guru.

No government officer has the privilege to joke with the President of a country. Yet, the President's personal friend, teases him, jests with him, and even scolds him. The President does not mind, rather he values that jest of

an intimate friend more than all the respect he receives from his subordinate officers. Thousands of people salute an army general, but they are not as dear to his heart as his wife, who sits intimately by his side. Similarly, Arjun's intimate dealings with Shree Krishna were not transgressions; they were gestures of the depth of his loving devotion in the sentiment of being a friend. Yet, a devotee is by nature humble, and so, out of humility, he feels that he may have committed transgressions, and hence he is asking for forgiveness.

So, through this shloka, we are instructed to completely surrender ourselves in prostration to that Ishvara principle. When Arjuna undertook a "saashtaanga namaskaara", a total surrender of his body through prostration, he referred to SHri Krishna as his friend, recalling the illustration of the two birds who were friends. Arjuna asked for a father's forgiveness, a friend's forgiveness, and the beloved's forgiveness - three categories of forgiveness since he wanted all of these from Shri Krishna.

।। हिंदी समीक्षा ।।

जब मन मे अप्रत्यक्ष अपराध बोध हो एवम अनजाने में की गई गलतियों का अहसास हो। तो उस व्यक्ति से क्षमा मांगना वास्तव में अन्तःकरण की शुद्धता है। अर्जुन का अन्तः करण मोह, भय, अहम एवम ज्ञान से मुक्त हो चुका है, उसे ज्ञान हो गया कि जिस के समक्ष वो अपने निश्चय को रख कर बहस कर रहा है, उस मे उस का ही क्षुद्रपन है। वह इतना विशाल है कि उस की स्तुति करना जब ब्रहमा जी वश में नही तो वह उसे कैसे करे।

किसी शासकीय अधिकारी को यह अधिकार नहीं होता कि वह देश के राष्ट्रपति का उपहास उड़ाए। किन्तु राष्ट्रपति का निजी मित्र उसे तंग करे, उसका उपहास उड़ाये यहाँ तक कि उसे फटकार भी दे तब भी राष्ट्रपति इस पर कोई आपत्ति नहीं करता अपितु इसके विपरीत वह अपने अंतरंग मित्र के उपहास को अपने अधीनस्थ अधिकारियों से मिलने वाले सम्मान से अधिक महत्त्व देता है। हजारों लोग सेना नायक को सल्युट देते हैं। समान रूप से अर्जुन के श्रीकृष्ण के साथ घनिष्ठ संबंध अपराध नहीं थे अपितु वे अतरंग मित्रतावश गहन प्रेम भक्ति

से युक्त हाव भाव थे फिर भी वह विनम्र भाव से निष्ठावान भक्त होने के कारण विनम्रतापूर्वक अनुभव करता है कि उससे अपराध हुआ है।

अर्जुन कहते है, आप अनन्त ब्रह्माण्डों के ईश्वर हैं। इसलिये सब के द्वारा स्तुति करनेयोग्य आप ही हैं। आप के गुण, प्रभाव, महत्त्व आदि अनन्त हैं अतः ऋषि, महर्षि, देवता, महापुरुष आप की नित्य निरन्तर स्तुति करते रहें, तो भी पार नहीं पा सकते। ऐसे स्तुति करने योग्य आप की मैं क्या स्तुति कर सकता हूँ मेरे में आप की स्तुति करने का बल नहीं है, सामर्थ्य नहीं है। इसलिये मैं तो केवल आपके चरणोंमें लम्बा पड़कर दण्डवत् प्रणाम ही कर सकता हूँ और इसीसे आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ।

जब हम अंतर्मन से किसी गलती का प्रायश्चित करते है तो प्रणाम का शार्टकट नहीं होता।जैसे बस हथेलियाँ जोड़कर, और उस से भी छोटे तरीके से सिर्फ एक हाथ से नमस्कार करना। इसलिए यह शार्टकट नमस्कार नहीं है, आप आश्चर्य करेंगे हैं कि यह ईसाई है या हिंदू; सबके लिए वे ऐसा करते हैं, इसलिए हम भी ऐसा करते हैं। इसलिए कायम का अर्थ है शरीरम्; प्रणिदाय; साष्टांग प्रणाम; नीचे गिरना, दंडवत प्रणामः; साष्टांग प्रणामः। 'इद्यः' का अर्थ है पूजनीय; एकमात्र जो नमस्कार का पात्र है; भगवान के अलावा कोई भी नमस्कार का पात्र नहीं है; किसी का भी कोई भी सम्मान, अंततः भगवान से ही मिलता है। इसलिए आप को साष्टांग प्रणामः करता हूं।

आज के युग में बच्चे बड़ों के चरण स्पर्श में पूरा झुक कर भी चरण स्पर्श नहीं करते। या फिर एक हाथ से चरण की ओर इशारा जैसा प्रणाम करते है। यह उन के उस आदर को दर्शाता है जिस में अहम भी है, इसी कारण जब उन के स्वार्थ, अहम और सुविधा की बात हो तो वे बड़ों का अपमान करने से भी नही चूकते।

आप से अनुग्रह करता हूँ। जैसे पुत्र का समस्त अपराध पिता क्षमा करता है तथा जैसे मित्र का अपराध मित्र अथवा प्रिया का अपराध प्रिय (पति) क्षमा करता है - सहन करता है, वैसे ही हे देव आपको भी (मेरे समस्त अपराधों को सर्वथा) सहन करना अर्थात् क्षमा करना उचित है। मनुष्य का मष्तिक तीन अवस्थाओं में क्रिया शील है, जिसे जाग्रत, सुप्त एवम अर्धचेतन अवस्था भी कहते है। अर्जुन अपनी क्षमा याचना इन तीनो अवस्थाओं में किये अनजान व्यवहारों की मांग रहे है, जो उस समय के अनुसार थे भी नही। किन्तु काल स्वरूप विराट रूप देखने के बाद उस का भय एवम श्रद्धा उसे मजबूर कर रहा था कि वो क्षमा याचना करे।

उपरोक्त तीनो उदाहरण अनजाने में बिना द्वेष के हुए अपराधों का प्रतीक है, जिन्हें हम अक्सर जीवन मे करते है। हर व्यक्ति परमात्मा का ही स्वरूप है, इसलिये जाने - अनजाने में भी गलत शब्दो का प्रयोग नही करना चाहिए, क्योंकि शब्द, आचार तभी तक आप के है, जब तक आप व्यक्त नहीं करते। इन्हें अन्य व्यक्ति अपनी सोच एवम आचरण से ग्रहण करता है। द्रोपदी का एक उपहास " अंधे का पुत्र अंधा" पूरे महाभारत का कारण बन गया। जब कि वह उपहास ही था। द्रोपदी यदि क्षमा याचना कर लेती तो शायद कथा कुछ और होती।

(वैसे द्रोपति जैसे विदुषी द्वारा यह कथन और प्रसंग के विषय में यह भी कहा गया है कि यह सत्य नहीं है। इसलिए गीता प्रेस की महाभारत में इस प्रसंग को स्थान नही दिया गया। हमारे ग्रंथ वामपंथी, मुगल और अंग्रेजो द्वारा अपभ्रंश किए गए और हम लोग भी दास की मानता में इन कथाओं पर विश्वास भी करते है।)

भगवान ने सांतवे अध्याय में कहा था कि "मैं ज्ञानी भक्त का अत्यंत प्रिय होता हूँ और वह ज्ञानी भक्त भी मुझे प्रिय होता है" अतः कुछ विद्वानों का मत है कि तीन उदाहरण में आपसी सम्बन्ध पिता-पुत्र, सखा एवम गुरु-शिष्य या भक्त और भगवान का प्रिय-प्रियायार्हसि का है, जब कि कुछ प्रिय-प्रियतम से लेते है। हम इस बहस में नही जाते है, किन्तु भगवान एवम गुरु भी अपने प्रिय शिष्य के समस्त अपराध को क्षमा कर देते है। भगवान ने अर्जुन को अपना प्रिय भक्त माना है और अठाहरवे अध्याय में भगवान कहते भी है, जो मेरा भक्त है वह मुझे प्रिय है।

बचपन मे एक प्रार्थना करते थे, वो याद आ गई, उसे ही दोहरा लेते है। त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

इसलिये अर्जुन नतमस्तक हो कृष्ण के चरणों मे गिर कर अपने अपराधों की क्षमा मांग रहा है, क्योंकि उस ने जो देखा वो अभूतपूर्व था। अर्जुन द्वारा परमात्मा के विराट स्वरूप को देखने के बाद, उस का मन उन के प्रति मित्र, सखा, और बन्धु जैसे अनौपचारिक व्यवहार से अपराध ग्रस्त हो गया था। क्षमा मांगना ही अपने आप मे एक प्रक्रिया है जिस से जीव अपनी अपराध ग्रस्त मानसिकता से बाहर आ सके। इसलिये क्षमा याचना के साथ साष्टांग हो कर वह अपनी भावनाओ को अति सुंदर ढंग से व्यक्त कर रहा है।

इसलिये वो अब वे आगे क्या कहते है, हम पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.44।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.45॥

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देवरूपंप्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

"adṛṣṭa-pūrvaṁ hṛṣito 'smi dṛṣṭvā,
bhayena ca pravyathitaṁ mano me..।
tad eva me darśaya deva rūpaṁ,
prasīda deveśa jagan- nivāsa"..।।

भावार्थ:

पहले कभी न देखे गये आपके इस रूप को देख कर मैं हर्षित हो रहा हूँ और साथ ही मेरा मन भय के कारण विचलित भी हो रहा है, इसलिए हे देवताओं के स्वामी! हे जगत के आश्रय! आप मुझ पर प्रसन्न होकर अपने पुरूषोत्तम रूप को मुझे दिखलाइये। (४५)

Meaning:

Seeing you form that was never seen before, I am overjoyed and (yet) fearful, my mind is disturbed. Show me that divine form. Be pleased, O Lord of lords, O abode of the universe.

Explanation:

Fear is one of our most primal emotions. At some point or the other in our lives, we have encountered fear of losing our job, losing a loved one, fear of an angry confrontation, stage fright and so on. But we can boil all kinds of fear down to three things. First, the fear of losing something that is “ours”. This is the fear of losing our life, our job, our loved ones and so on. Next is the fear of loss of knowledge or being duped. Third is the fear of losing joy and happiness, fear of sorrow in other words. We can sum it up in this manner: we are afraid of losing our existence, knowledge and happiness.

Bhayam is more dominant; it is only because divya cakṣuḥ is an artificial onso,given by Bhagavān; Divya cakṣuḥ should be claimed by us by our own sādanā; so by sufficient karma yoga sādhanā rāga dvēṣās; ahamkāra mamakārās comes down; that mind has got naturally developed divya cakṣu; And when we have got naturally developed divya cakṣuḥ; Viśva rūpa will not be frightening; but in the case of Arjuna; it is artificially given; and therefore Arjuna is not able to totally enjoy.

However, if we recall the teaching of the Gita so far, especially from the second chapter, we know that our true nature is the aatmaa, the eternal essence which is infinite existence, knowledge, and happiness. So then, the cause of fear is the ego, the delusion that we are not the eternal essence. There is no scope for fear when we know our true nature as the infinite eternal essence. But if we assume that "I am the body", then all the problems and fears of the body such as disease, old age, death etc become our problems. The fear of death, which is actually the fear of losing the existence of the body, becomes our fear.

So then, why did Arjuna fear Shri Krishna's cosmic form? For a moment, Arjuna's ego had vanished when he considered himself part and parcel of the cosmic form. When his ego came back, it brought with it all the incorrect associations with the body, mind and so on. Arjuna then saw the cosmic form as something outside of himself, something that could destroy him.

There are two kinds of bhakti – **aiśhwarya bhakti and mādhurya bhakti.** Aiśhwarya bhakti is that where the devotee is motivated to engage in devotion by contemplating upon the almighty aspect of God. The dominant sentiment in aiśhwarya bhakti is of awe and reverence. In such devotion, the feeling of remoteness from God and the need for maintaining propriety of conduct is always perceived. Examples of aiśhwarya bhakti are the residents

of Dwaraka and the residents of Ayodhya, who worshipped Shree Krishna and Lord Ram respectively as their kings. Ordinary citizens are highly respectful and obedient toward their king, although they never feel intimate with him.

Mādhurya bhakti is that where the devotee feels an intimate personal relationship with God. The dominant sentiment in such devotion is "Shree Krishna is mine and I am his." Examples of mādhurya bhakti are the cowherd boys of Vrindavan who loved Krishna as their friend, Yashoda and Nand baba, who loved Krishna as their child, and the gopīs who loved him as their beloved. Mādhurya bhakti is infinitely sweeter than aiśhwarya bhakti.

Hence, Jagadguru Shree Kripaluji Maharaj states: sabai sarasa rasa dwārikā, mathurā aru braja māhiñ; madhura, madhuratara, madhuratama, rasa brajarasa sama nāhiñ (Bhakti Śhatak verse 70)[v22] "The divine bliss of God is immensely sweet in all his forms. Yet, there is a gradation in it–the bliss of his Dwaraka pastimes is sweet, the bliss of his Mathura pastimes is sweeter, and the bliss of his Braj pastimes is the sweetest."

In Mādhurya bhakti, forgetting the almightiness of God, devotees establish four kinds of relationships with Shree Krishna:

Dāsya bhāv–Shree Krishna is our Master, and I am his servant. The devotion of Shree Krishna's personal servants, such as Raktak, Patrak, etc. was in dāsya bhāv. The sentiment that God is our Father or Mother is a variation of dāsya bhāv and is included in it.

Sakhya bhāv–Shree Krishna is our Friend, and I am his intimate companion. The devotion of the cowherd boys of Vrindavan, such as Shreedama, Madhumangal, Dhansukh, Mansukh, etc. was in sakhya bhāv.

Vātsalya bhāv–Shree Krishna is our Child, and I am his parent. The devotion of Yashoda and Nand baba was in vātsalya bhāv.

Mādhurya bhāv–Shree Krishna is our Beloved and I am his lover. The devotion of the gopīs of Vrindavan was in mādhurya bhāv.

Arjun is a sakhya bhāv devotee and relishes a fraternal relationship with the Lord. On seeing the universal form of God, Arjun experienced tremendous awe and reverence, and yet he longed for the sweetness of sakhya bhāv that he was used to savoring. Hence, he prays to Shree Krishna to hide the almighty form that he is now seeing and again show his human form.

।। हिंदी समीक्षा ।।

भगवान् का विश्वरूप दिव्य है, अविनाशी है, अक्षय है। इस विश्वरूप में अनन्त ब्रह्माण्ड हैं तथा उन ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी अनन्त हैं। इस नित्य विश्वरूप से अनन्त विश्व (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न हो-होकर उस में लीन होते रहते हैं, पर यह विश्वरूप अव्यय होने से ज्यों-का-त्यों ही रहता है। यह विश्वरूप इतना दिव्य, अलौकिक है कि हजारों भौतिक सूर्योंका प्रकाश भी इसके प्रकाशका उपमेय नहीं हो सकता । इसलिये इस विश्वरूप को 'दिव्यचक्षुके' बिना कोई भी देख नहीं सकता। 'ज्ञानचक्षुके' द्वारा संसार के मूल में सत्तारूप में जो परमात्मतत्त्व है, उस का बोध होता है और 'भावचक्षु से' संसार भगवत्स्वरूप दीखता है, पर इन दोनों ही चक्षुओं से विश्वरूप का दर्शन नहीं होता। 'चर्मचक्षु से' न तो तत्त्व का बोध होता है, न संसार भगवत्स्वरूप दीखता है और न विश्वरूप का दर्शन ही होता है; क्योंकि चर्मचक्षु प्रकृति का कार्य है। इसलिये चर्मचक्षु से प्रकृति के स्थूल कार्य को ही देखा जा सकता है।

भयम् अधिक प्रबल है; ऐसा केवल इसलिए है क्योंकि दिव्य चक्षु भगवान द्वारा दिया गया एक कृत्रिम रूप है; दिव्य चक्षु को हमें अपनी साधना द्वारा प्राप्त करना चाहिए; अतः पर्याप्त कर्म योग साधना द्वारा राग द्वेष; अहंकार ममकार नीचे आता है; मन में स्वाभाविक रूप से विकसित दिव्य चक्षु है; और जब हममें स्वाभाविक रूप से विकसित दिव्य चक्षु है; विश्व रूप भयावह नहीं होगा; लेकिन अर्जुन के मामले में; यह कृत्रिम रूप से दिया गया है; और इसलिए अर्जुन पूरी तरह से आनंद लेने में सक्षम नहीं है।

भगवान् में अनन्त-असीम ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, औदार्य आदि दिव्य गुण हैं। उन अनन्त दिव्य गुणोंके सहित भगवान् का विश्वरूप है। भगवान् जिस-किसी को ऐसा विश्वरूप दिखाते हैं, उसे पहले दिव्यदृष्टि देते हैं। दिव्यदृष्टि देने पर भी वह जैसा पात्र होता है, जैसी योग्यता और रुचिवाला होता है, उसीके अनुसार भगवान् उस को अपने विश्वरूप के स्तरों का दर्शन कराते हैं। यहाँ ग्यारहवें अध्याय के पंद्रहवें से तीसवें श्लोक तक भगवान् विश्वरूप से अनेक स्तरों से प्रकट होते गये, जिसमें पहले देवरूपकी , फिर उग्ररूपकी और उसके बाद अत्युग्ररूप की प्रधानता रही। अत्युग्ररूप को देखकर जब अर्जुन भयभीत हो गये, तब भगवान् ने अपने दिव्यातिदिव्य विश्वरूपके स्तरों को दिखाना बंद कर दिया अर्थात् अर्जुन के भयभीत होनेके कारण भगवान् ने अगले रूपोंके दर्शन नहीं कराये। तात्पर्य है कि भगवान् ने दिव्य विराट्रूप के अनन्त स्तरों में से उतने ही स्तर अर्जुन को दिखाये, जितने स्तरों को दिखाने की आवश्यकता थी और जितने स्तर देखने की अर्जुन में योग्यता थी।

अर्जुन ने प्रार्थना की उसे समस्त विभूतियो के बारे में बताए जिस से वह उन्हें स्मरण कर सके, तो परमात्मा ने विशिष्ट अनुभूतियों से अवगत कराया। अर्जुन की जिज्ञासा युद्ध के भविष्य को भी देखने की थी, जिस को उस ने काल से परे महाकाल स्वरूप में अत्यंत भयंकर स्वरूप में सभी का भक्षण होते हुए देखा। श्रवण आनन्द दायक हो सकता है किंतु दर्शन की भांति प्रभावशाली नही। अतः अर्जुन ने एक विश्वरूप के दर्शन की अभिलाषा की तो परमात्मा ने प्रेमवश उसे दिव्य नेत्र दे कर अपना विश्वरूप, उग्रविश्वरूप एवम अतिउग्राविश्वरूप कालमय दिखाया। यह दिव्यदर्शन हम सब ने विस्तार से पढ़ते हुये किया। इस अदभुत विश्वदर्शन जिस की कल्पना भी नही जा सकती थी, जिसे आज तक किसी ने भी नही देखा था, जो कालातीत था, जिस में सम्पूर्ण ब्रह्मांड, देवी देवता, ऋषि मुनि, जन्म मृत्यु में काल अपने भूतकाल,वर्तमान एवम भविष्य काल को एक स्थान में ले कर रखा था। जहां भय का वातावरण भी था और आनन्द भी था। जहां चिल्लाहट भी थी एवम वेदविद लोगो द्वारा स्तुति गान भी था।

इस अभूतपूर्व दृश्य देख कर आनन्द भी हो रहा था किंतु भय भी लग रहा था। सत्य को सत्य के रूप में देखना अत्यंत कठिन होता है वहां साक्षात विश्वरूप के दर्शन के कारण अर्जुन के अंदर आंतरिक आनंद के साथ भय भी उत्पन्न हो रहा था। काल द्वारा सभी का भक्षण करना निश्चय ही उस व्यक्ति के अंदर भी भय पैदा कर देगा जिस ने अभी तक

अपने को अनश्वर आत्मा नही माना, उस का शरीर एवम प्रकृति की तरफ़ मोह उस के अहम को नष्ट होता नहीं देख सकता। वो इस दृश्य को देख कर नत मस्तक हो कर स्तुति करने लगा था। इसलिये वह आगे कहता है।

आप का ऐसा अलौकिक आश्चर्यमय विशालरूप मैंने पहले कभी नहीं देखा। आपका ऐसा भी रूप है -- ऐसी मेरे मन में सम्भावना भी नहीं थी। ऐसा रूप देखने की मेरे में कोई योग्यता भी नहीं थी। यह तो केवल आपने अपनी तरफ से ही कृपा करके दिखाया है। इस से मैं अपने आप को बड़ा सौभाग्यशाली मानकर हर्षित हो रहा हूँ। आप की कृपा को देखकर गद्‌गद हो रहा हूँ। परन्तु साथ ही साथ आप के स्वरूप की उग्रता को देखकर मेरा मन भय के कारण अत्यन्त व्यथित हो रहा है, व्याकुल हो रहा है, घबरा रहा है।

इसलिये हे देव, मुझे अपना वही रूप दिखलाइये जो मेरा मित्ररूप है। हे देवेश, हे जगन्निवास आप प्रसन्न होइये।

अर्जुन हम सब का प्रतिनिधित्व करते है, वह क्षत्रिय योद्‌धा है, कर्म उस के जीवन का आधार है। उस का आनंद एवम संतोष परमात्मा के सखा स्वरूप व्यवहार में ही है। इसलिये परब्रहम के समक्ष उस की स्थिति असमंजस जैसी है, वह पुनः अपने ही संसार मे लौट आना चाहता है, जिस में परमात्मा का सौंदर्य स्वरूप से मन को शान्ति प्राप्त हो।

प्रत्येक भक्त अपने इष्ट देवता के रूप में भगवान् से प्रेम करता है। जब उस आकार के द्‌वारा वह भगवान् के अनन्त, परात्पर, निराकार स्वरूप का साक्षात्कार करता है, तब निसन्देह वह परमानन्द का अनुभव करता है।

साधना के फलस्वरूप प्राप्त आन्तरिक शान्ति परमानन्द दायक होती है, परन्तु अचानक साधक के मन में विचित्र भय समा जाता है, जो उसे पुन देहभाव को प्राप्त कराकर मन के विक्षेपों का कारण बनता है। आत्मानुभव के उदय पर यह परिच्छिन्न जीव अपने बन्धनों से मुक्त होकर, अदृष्टपूर्व आनन्दलोक में प्रवेश करता है, जहाँ वह अपनी ही विशालता और प्रभाव का अनुभव कर प्रसन्न हो जाता है। परन्तु प्रारम्भिक प्रयत्नों में एक साधक में यह सार्मथ्य नहीं होती कि वह अपने मन को दीर्घकाल तक वृत्तिशून्य स्थिति में रख सके। ध्यान में निश्चल प्रतीत हो रहा उसका मन पुन जाग्रत होकर क्रियाशील हो जाता है। साधकों का यह अनुभव है कि ऐसे समय मन में सर्वप्रथम जो वृत्ति उठती है वह भय की ही होती है। निराकार अनुभव से भयभीत होकर मन पुन शरीर भाव में स्थित हो जाता है। ऐसे अवसरों पर भक्तजन प्रेम और भक्ति के साथ अपने साकार इष्टदेव को अपने चंचल मन्दस्मित के

रूप में व्यक्त होने के लिए प्रार्थना करते हैं। वे अपने इष्टदेव को पुन सस्मित और कोमल तथा प्रेमपूर्ण दृष्टि और संगीतमय शब्दों के साथ देखना चाहते हैं।

हमे हमारा पिछला जन्म याद नही रहता, न ही हम किसी के मन मे क्या चल रहा है, पढ़ नही पाते। हमे हमारा भविष्य भी ज्ञात नही रहता। किन्तु इस के अभाव में हमे वर्तमान में जीने और भविष्य के संघर्ष करने का अवसर मिलता है। जीवन का आनंद का प्रतिक्षण वर्तमान ही होता है क्योंकि भविष्य अज्ञात है। किंतु कल्पना करे कि यदि पूर्व जन्म की स्मृति बनी रहे और हम भविष्य को जान जाए, किसी के भी मन को पढ़ सके तो स्थिति कितनी भयानक होगी। हम अपना जीवन का कोई भी क्षण भी नही जी पाएंगे और पूर्व जन्म से भविष्य तक और व्यवहार में छुपी भावनाओ के कारण समस्त आनन्द भय में परिवर्तित हो जाएगा। अर्जुन ने भी वस्तुतः भूत, भविष्य एक साथ देख लिया, इसलिये जिसे वह आनन्द समझ रहा था, उस को कष्ट दे रहा था। इसलिये वह पुनः उसी स्थिति में लौट आना चाहता था।

भक्ति दो प्रकार की होती है-एक ऐश्वर्य भक्ति और दूसरी माधुर्य भक्ति। ऐश्वर्य भक्ति में भगवान के सर्वशक्तिशाली स्वरूप के चिन्तन द्वारा भक्त भक्ति में तल्लीन होने के लिए प्रेरित होता है। ऐश्वर्य भक्ति में भय और श्रद्धा के भाव की प्रधानता होती है। ऐसी भक्ति में भगवान से दूरी और औपचारिक रूप से शिष्टाचार का पालन करना सदैव आवश्यक समझा जाता है। द्वारकावासी और अयोध्यावासी ऐश्वर्य भक्ति के उदाहरण हैं जो श्रीकृष्ण और भगवान श्री राम का आदर-सम्मान अपने राजा के रूप में करते थे। सामान्य नागरिक अपने राजा के प्रति अत्यंत निष्ठावान और आज्ञाकारी होते हैं यद्यपि उनके उसके साथ कभी घनिष्ठ सम्बंध नहीं होते।

माधुर्य भक्ति में भक्त भगवान के साथ निजता के संबंध का अनुभव करते हैं। ऐसी भक्ति में यह भाव प्रमुख रहता है कि 'श्रीकृष्ण मेरे हैं और मैं उनका हूँ।' वृंदावन के ग्वाल-बाल जो श्रीकृष्ण से सखा भाव का प्रेम करते हैं, यशोदा और नंद बाबा जो कृष्ण से अपने बालक के रूप में प्रेम करते हैं और गोपियाँ जो उनसे अपने प्रियतम के रूप में प्रेम करती हैं, ये सब माधुर्य भक्ति के उदाहरण हैं। माधुर्य भक्ति ऐश्वर्य भक्ति की अपेक्षा अत्यंत मधुर है।

जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज वर्णन करते हैं; सबै सरस रस द्वारिका, मथुरा अरु ब्रज माहिँ। मधुर, मधुरतर, मधुरतम, रस ब्रजरस सम नाहिँ ।। (भक्ति शतक श्लोक-70) भगवान का दिव्य आनन्द उसके सभी रूपों में अत्यन्त मधुर होता है किन्तु फिर भी इसकी श्रेणियाँ

हैं। भगवान की द्वारका की लीलाओं का आनंद 'मधुर' और मथुरा की लीलाओं का आनन्द 'अति मधुर' तथा ब्रज की लीलाओं का आंनद मधुरतम है।

माधुर्य भक्ति में भगवान के ऐश्वर्य और सर्वशक्तिशाली स्वरूप को भुला दिया जाता है। भक्त भगवान कृष्ण के साथ चार प्रकार से संबंध स्थापित करता है।

दास्य भावः श्रीकृष्ण हमारे स्वामी हैं और मैं उनका सेवक। स्वयं को श्रीकृष्ण का दास मानने जैसी रक्तक और पत्रक आदि की भक्ति दास्य भाव की भक्ति थी। भगवान को अपनी माता और अपना पिता मानने का भाव भी दास्य भक्ति की श्रेणी है और इसे भी दास्य भाव में सम्मिलित किया गया है।

सख्य भावः श्रीकृष्ण हमारे सखा हैं और मैं उनका अंतरंग सखा हूँ। श्रीदामा, मधुमंगल, धनसुख, मनसुख की भक्ति सखा भाव की भक्ति थी।

वात्सल्य भावः श्रीकृष्ण हमारे बालक हैं और मैं उनका माता-पिता हूँ। यशोदा और नंद की भक्ति वात्सल्य भाव की भक्ति थी।

माधुर्य भावः श्रीकृष्ण हमारे प्रियतम और मैं उनकी प्रेयसी हूँ। वृंदावन की गोपियों की भक्ति माधुर्य भाव की भक्ति थी।

अर्जुन सखा भाव वाले भक्त है और भगवान के साथ भातृ-भाव के संबंध का आनन्द पाते है। भगवान के विराटरूप और दिव्य रूप को देखकर अर्जुन को अद्भुत विस्मय और श्रद्धा का अनुभव होता है किन्तु फिर भी वह सख्य भाव की माधुर्यता चाहता है जिसका स्वाद लेने का वह पहले से ही आदी था।

भगवान् में अनन्त असीम ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, औदार्य आदि दिव्य गुण हैं। उन अनन्त दिव्य गुणोंके सहित भगवान् का विश्वरूप है। जो स्वरूप से आत्मविश्वास में वृद्धि हो, मनमे शान्ति और हर्ष का अनुभव हो, अर्जुन भी ऐसे ही भगवान का किस रूप में दर्शन चाहते है वह हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.45।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.46॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेनसहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥

"kirīṭinaṁ gadinaṁ cakra- hastam
icchāmi,
tvāṁ draṣṭum ahaṁ tathaiva..।
tenaiva rūpeṇa catur- bhujena,
sahasra-bāho bhava viśva-mūrte"..।।

भावार्थ:

हे हजारों भुजाओं वाले विराट स्वरूप भगवान! मैं आपके मुकुट धारण किए हुए और हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म लिए रूप का दर्शन करना चाहता हूँ, कृपा करके आप चतुर्भुज रूप में प्रकट हों। (४६)

Meaning:

Wearing a crown, holding a mace, disc in hand, in that four-armed form do I wish to see you. O one with infinite arms, be that very form, O universal form.

Explanation:

So, Arjuna concludes his prayer. That is the third stage of appreciation, **No.1 Ascharyam; No.2 bhayam; No.3 bhakthi.** The third stage of bhakthi expression is being concluded here; with Arjuna's request to the Lord to get back to his own ēkarūpa.

Arjun is not attracted by the infinite opulence's and is not interested in doing aiśhwarya bhakti of God Almighty. Rather, he prefers seeing that Almighty Lord in the human form, so that he can relate to him as before, like a friend. Addressing Lord Krishna as sahasra- bāho, meaning "thousand-armed one," Arjuna is now specifically requesting to see the chatur- bhuj rūp, or four- armed form of Lord Krishna.

In the four- armed form, Shree Krishna appeared before Arjun on another occasion as well. When Arjun tied Ashwatthama, the killer of the five sons of Draupadi and brought him before her, at that time Shree Krishna revealed himself in his four- armed form.

niśhamya bhīma- gaditaṁ draupadyāśh cha chatur- bhujaḥ; ālokya vadanaṁ sakhyur idam āha hasanniva (Śhrīmad Bhāgavatam 1.7.52)[v23]

"The four- armed Shree Krishna heard the statements of Bheem, Draupadi, and others. Then he looked toward his dear friend Arjun and began smiling." By requesting Shree Krishna to manifest in his four- armed form, Arjun is also confirming that the four- armed form of the Lord is non- different from his two- armed form.

We need to dig deeper into the symbolic aspect of the number four to understand this request properly. The number four has a deep significance in the scriptures, since it represents the four Vedas, the four Varnas or classes, the four aashramas or stages, and the four purushaarthaas or aims of life. As an example, let us explore the four aashramas.

A person is supposed to pass through four aashramas or stages during their life. They begin life under the instruction of a guru or teacher, with the sole aim of seeking knowledge. This stage is called brahmacharya. After graduating from their school, they then lead the life of a householder in the grihastha stage. When that is fulfilled, they enter into a stage where they begin to gradually renounce all material attachments. This is known as vaanaprastha. After complete renunciation, a person's life culminates in the sanyaasa stage where their sole aim is spiritual pursuits.

In this manner, we can uncover the significance behind several aspects of the number four. But what Arjuna really meant to convey to Shri Krishna was a request to assume the form that his admirers and devotees loved the most, the form that was the object of their meditation. This was Shri

Krishna's form as Lord Naaraayana, which was the embodiment of peace and serenity, and a polar opposite of his rudra or terrible form that Arjuna wanted to go away.

।। हिंदी समीक्षा ।।

इस प्रकार अर्जुन अपनी प्रार्थना समाप्त करता है। **यह प्रशंसा का तीसरा और अंतिम चरण है। क्रमांक १ आश्चर्यं; क्रमांक २ भयं; क्रमांक ३ भक्तिः।** अर्जुन द्वारा भगवान से अपने एकरूप में वापस जाने का अनुरोध करने के साथ भक्ति अभिव्यक्ति का तीसरा चरण यहाँ समाप्त हो रहा है।

अर्जुन को यह अनुभव होता है कि श्रीकृष्ण उसके केवल मित्र ही नहीं है अपितु उससे बढ़कर उनका अनुपम व्यक्तित्त्व हैं। उनका दिव्य स्वरूप अनगिनत ब्रह्माण्डों को अपने में समेटे हुए है फिर भी वह उनके अनन्त ऐश्वर्यों के प्रति आकर्षित नहीं होता। सर्वशक्तिमान भगवान की ऐश्वर्य भक्ति का अनुसरण करने में उसकी कोई रुचि नहीं है अपितु इसके विपरीत वह सर्वशक्तिमान भगवान का पुरुषोतम रूप देखना पसन्द करते है ताकि वह उनके साथ पहले जैसे मित्रवत् संबंध बनाए रख सके। भगवान श्रीकृष्ण को 'सहस्रबाहु' संबोधन से पुकारने का तात्पर्य 'हजारों भुजाओं वाले' से है। अर्जुन अब भगवान श्रीकृष्ण से अपना 'चतुर्भुज रूप' अर्थात चार भुजाओं वाला रूप दिखाने की प्रार्थना कर रहा है।

अर्जुन जानते है कि परमात्मा के असंख्य रूप है, जिन में राम, नृसिंह एवम नारायण मुख्य है। (ब्रह्मसंहिता) कृष्ण आदि नारायण है जो विराट विश्वरूप में उस के सम्मुख प्रकट हुए। इसलिये वह परमात्मा को अपने विराट अनन्त हाथों एवम अनन्त मुखों को समेट कर नित्य चतुर्भुज रूप में दर्शन देने की प्रार्थना करता है।

जिस के शरीर की कांति नीलकमल के लिये भी आदर्श है, जो आकाश के रंग की भी शोभा ने वृद्धि करती है। जिस के मस्तक पर मुकुट शोभा को प्राप्त कर रहा हो। जिस प्रकार गगन में इंद्रधनुष पर मेघ दृष्टिगोचर होते है वैसे ही वैजंतीमाला माला धारण कर रखी है। जिस के हाथों में असुरों का नाश करने वाली गदा है, अप्रितम सौम्य तेज से चमकता चक्र है, शंख एवम कमल है, मै वह रूप में आप को देखना चाहता हूँ।

अर्जुन ने परमात्मा के कान्तियुक्त चतुर्भुज स्वरूप में देखने की प्रार्थना की है। इन चतुर्भुज में उस ने गदा, शंख, चक्र एवम पद्म (अष्टदल का लाल कमल) आयुध लिये एवम मस्तक

में मुकुट धारण किये स्वरूप को कहा है। यहाँ आयुध में शंख एवम कमल को भी बादरायण ने शामिल किया है। क्योंकि कृष्ण का पांचजन्य शंख की ध्वनि से ही शत्रु पक्ष का मनोबल गिर जाता है और जब तीन हाथ मे आयुध हो तो कमल सहज ही पूर्ण स्वरूप में आयुध धारण किये स्वरूप में शामिल हो जाता है।

यहाँ अर्जुन अपनी इच्छा को स्पष्ट शब्दों में प्रदर्शित करता है कि मैं आप को पूर्ववत् देखना चाहता हूँ। वह भगवान् के विराट् रूप को देखकर भयभीत हो गया है, जो उन्होंने सम्पूर्ण विश्व के साथ अपने एकत्व को दर्शाने के लिए धारण किया था। वेदान्त द्वारा प्रतिपादित निर्गुण, निराकार तत्त्व या समष्टि के सिद्धांत का जब प्रत्यक्ष अनुभव किया जाता है, तो विरले लोगों में ही वह बौद्धिक धारणा शक्ति होती है कि वे उस सत्य को उसकी पूर्णता में समझकर उसका ध्यान कर सकते हैं। यदि कभी बुद्धि उसे धारण कर भी पाती है, तो प्राय भक्त का हृदय उसके साथ अधिक काल तक तादात्म्य नहीं बनाये रख पाता है। मन के स्तर पर सत्य को केवल रूपकों के द्वारा ही समझकर उसका आनन्द अनुभव किया जा सकता है, सीधे ही उसके पूर्ण वैभव के द्वारा कभी नहीं।

भगवान् की ये चार भुजाएं अन्तकरण चतुष्टय अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के प्रतीक हैं। पुराणों में ही चतुर्भुजधारी भगवान् का वर्ण नील कहा गया है तथा वे पीताम्बरधारी हैं अर्थात् वे पीत वस्त्र धरण किये हुए हैं। नीलवर्ण से अभिप्राय उनकी अनन्तता से है असीम वस्तु सदा नीलवर्ण प्रतीत होती है, जैसे ग्रीष्म ऋतु का निरभ्र आकाश अथवा गहरा सागर। पृथ्वी का वर्ण है पीत। इस प्रकार भगवान् विष्णु के रूप का अर्थ यह हुआ कि अनन्त परमात्मा परिच्छिन्नता को धारण कर अन्तकरण चतुष्टय के द्वारा जीवन का खेल खेलता है। भगवान् विष्णु शंख चक्र गदा पद्मधारी हैं। शंखनाद के द्वारा भगवान् सब को अपने समीप आने का आह्वान करते हैं। यदि मनुष्य अपने हृदय के श्रेष्ठ भावनारूपी शंखनाद को अनसुना कर देता है, तो दुख के रूप में उस पर गदा का आघात होता है। इतने पर भी यदि मनुष्य अपने में सुधार नहीं लाता है, तो अन्तिम परिणाम है चक्र के द्वारा शिरच्छेद अर्थात् परमपुरुषार्थ की अप्राप्ति रूप नाश। इसके विपरीत, यदि कोई मनुष्य दिव्य जीवन का आह्वान सुनकर उसका पूर्ण अनुकरण करता है, तो उसे पद्म अर्थात् कमल की प्राप्ति होती है। हिन्दू धर्म में कमल पुष्प आध्यात्मिक पूर्णता एव शान्ति का प्रतीत है।

एक अन्य अवसर पर श्रीकृष्ण अपने इस चतुर्भुज नारायण रूप में अर्जुन के सम्मुख प्रकट हुए थे। द्रोपदी के पांच पुत्रों के हत्यारे अश्वत्थामा को जब अर्जुन बांधकर उसे द्रोपदी के पास ले आया तब उस समय श्रीकृष्ण अपने चतुर्भुज रूप में प्रकट हुए थे।

निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः। आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव।।(श्रीमद्भागवतम्-1.7.52)

"चतुर्भुजधारी श्रीकृष्ण ने जब भीम, द्रोपदी और अन्य के कथनों को सुना तब वह अपने प्रिय मित्र अर्जुन की ओर देखकर मुस्कराने लगे।" भगवान से चतुर्भुज रूप में प्रकट होने की प्रार्थना कर अर्जुन यह भी पुष्टि कर रहा है कि भगवान का चतुर्भुज रूप उनके दो भुजाधारी रूप से भिन्न नहीं है।

अर्जुन चाहता है कि भगवान् अपने सौम्यरूप और शान्तभाव में प्रकट हों। पूर्वश्लोक में तदेव तथा यहाँ तथैव और तेनैव - तीनों शब्दो का प्रयोग करके कहना चाहता है कि मैं आपका केवल विष्णुरूप ही देखना चाहता हूँ विष्णुरूप के साथ विश्वरूप नहीं। अर्जुन के द्वारा सिर्फ पूर्ववत स्वरूप में आने को न कह कर चतुर्भुज स्वरूप आयुध के साथ दर्शन देने का कहने का कारण यह भी है कि परमात्मा अर्जुन के सारथी स्वरूप में उस के साथ है और किसी आयुध को धारण नही करने की प्रतिज्ञा से बंधे भी है। अतः यदि सिर्फ पूर्वरत स्वरूप में आने को कहते तो भगवान सारथी स्वरूप में दो भुजा ले कर प्रकट हो जाते, इसलिये अर्जुन कहते है कि आप केवल चतुर्भुजरूप से प्रकट हो जाइये। इस विश्वरूप का उपसंहार कर के आप वसुदेवपुत्र - श्रीकृष्ण के स्वरूप से स्थित होइये।

चतुर्भुजा में कई अर्थ निहित है जिस में चार वेद, चार आश्रम, चार पुरुषार्थ, चार पहर आदि प्रमुख है।

इस प्रकार अर्जुन की प्रार्थना आश्चर्य, भय, परमात्मा के ऐष्वर्य एवम सार्वभौमिक सत्ता को स्वीकृति, समर्पण, आत्मग्लानि, पश्चाताप, क्षमायाचना, शरणागत हो कर भक्तिपूर्ण आग्रह के साथ पूर्ण होती है। श्रद्धा, विश्वास और प्रेम के साथ समर्पण की यह प्रार्थना अपने आप मे सम्पूर्ण है, इसलिये इसे रक्षोघ्न मंत्र भी कहा गया है जिस के पढ़ने से किसी भी किस्म की बाधाएं, भूत-प्रेत सम्बन्धी भय नष्ट हो जाते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.46।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.47॥

श्रीभगवानुवाच,
मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदंरूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यंयन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥

"śrī-bhagavān uvāca,
mayā prasannena tavārjunedaṁ,
rūpaṁ paraṁ darśitam ātma-yogāt..।
tejo-mayaṁ viśvam anantam ādyaṁ yan me,
tvad anyena na dṛṣṭa-pūrvam"..।।

भावार्थ:

श्री भगवान ने कहा - हे अर्जुन! मैंने प्रसन्न होकर अपनी अन्तरंगा शक्ति के प्रभाव से तुझे अपना दिव्य विश्वरूप दिखाया है, मेरे इस तेजोमय, अनन्त विश्वरूप को तेरे अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा पहले कभी नहीं देखा गया है। (४७)

Meaning:

Shree Bhagavaan said:

Being pleased, I have shown this supreme form to you, O Arjuna, with my power. My form is luminous, universal, infinite and primal, which no one except you has seen before.

Explanation:

Previously, Shri Krishna had displayed his “soumya roopa”, the pleasant cosmic form, which was replaced by his “raudra roopa” his terror- inspiring form. Arjuna was extremely frightened when he saw it. Later, he acknowledged that he could not see it anymore and begged Shri Krishna to stop showing it.

Shree Krishna bestowed this divine vision upon Arjun with the help of his Yogmaya energy. This is the divine all- powerful energy of God. He has referred to it in many places, such as verses 4.6 and 7.25. It is by virtue of

this Yogmaya energy that God is kartumakartum anyathā karatum samarthaḥ “He can do the possible, the impossible, and the contradictory at the same time.” This divine power of God also manifests in the personal form and is worshipped in the Hindu tradition as the Divine Mother of the universe, in the form of Radha, Durga, Lakshmi, Kali, Sita, Parvati, etc.

Māya is called Yōgāḥh because it is an assembly of thriguṇās; satva rajas tamas guṇānām saṁyōjane Yōgāḥ śabda ucyate; And therefore, Yōgāḥ means and this māya represents Bhagavān's Māya śakti and word Ātma is reflexive pronoun and not satcidānda ātma; cidānanda ātma; ātma means My own Yōgāḥ śakti; My own Māya śakti I used for showing the Viśva rūpa.

In this shloka, Shri Krishna reassured Arjuna that there was no intent to scare Arjuna through the fearful form. It was only out of his compassion that the fearful cosmic form, a result of Ishvara’s power of maaya, was displayed.

Like Arjuna, we may also want to know why this terrible form was displayed. From a practical standpoint, it is an illustrative reminder to view creation and destruction with equanimity in our lives. Most of us tend to get attached to pleasant and favourable circumstances and reject or run away from unpleasant circumstances. Ishvara’s universal form has room for both and gives equal validity to both these aspects. Through this form. Shri Krishna wants us to view the same Ishvara in all aspects of life, pleasant and unpleasant.

Furthermore, Shri Krishna wanted to again caution us against objectifying this universal form, in other words, to think of ourselves as unique and distinct from it. We are part and parcel of that universal form; it is not outside us. To drive home this point, he summarizes the key aspects of this form. It is full of luster (tejomaya), it is that which is all pervading (vishwam), it is infinite (anantam), it is primal and beginningless (aadyam).

He also points out the exclusivity of this form to Arjuna, which is elaborated in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन के आग्रह पर विश्वरूप का दर्शन परमात्मा ने विस्तार से दिया जिस में उस की भविष्य के प्रति जिज्ञासा को भी स्पष्ट रूप से दिखाया गया। अर्जुन के अनुरोध पर अपने विश्वरूप को समेटते हुए परमात्मा अपने अलौकिक और अदभुत विराट स्वरूप के महत्व को समझते हुए कहते है कि उन्होंने अपनी कृपा से उसे अपना विराट रूप देखने के लिए उसे दिव्य दृष्टि प्रदान की थी न कि दण्ड के रूप में क्योंकि वह उससे अति प्रसन्न थे। यद्यपि दुर्योधन और यशोदा ने भी भगवान के विराट रूप की झलक देखी थी किन्तु वह इतना व्यापक, गहन और विस्मयकारी नहीं था।

श्रीकृष्ण ने अपनी योगमाया शक्ति की सहायता से अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान की थी। यह भगवान की दिव्य सर्वोच्च शक्ति है जिसका उल्लेख उन्होंने कई संदर्भो जैसे कि श्लोक 4.5 एवं 7.25 में किया है। इसी योगमाया शक्ति के कारण भगवान 'कर्तुम अकर्तुम अन्यथा कर्तुम, समर्थ' हैं अर्थात वे एक ही समय में संभव को असंभव और असंभव को संभव कर सकते हैं। भगवान की यह दिव्य शक्ति उनके साकार रूप में भी प्रकट होती है और हिन्दू धर्म में ब्रह्माण्ड की मातृत्व दिव्य शक्ति के रूप में राधा, दुर्गा, लक्ष्मी, काली, सीता, पार्वती आदि के रूप में इसकी पूजा की जाती है।

यहां माया को योगा भी इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह त्रिगुणों का समूह है; सत्व, राजस, तामस गुणानाम संयोजने योगाः शब्द उच्यते; और इसलिए योगाः का अर्थ है और यह माया भगवान की माया शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है और आत्मा शब्द एक कर्मकर्त्ता सर्वनाम है न कि सच्चिदानंद आत्मा; चिदानंद आत्मा; आत्मा का अर्थ है मेरी अपनी योगाः शक्ति; अपनी ही माया शक्ति का मैंने विश्व रूप दिखाने के लिए उपयोग किया।

मेरा यह रूप अत्यंत उत्कृष्ट और दिव्य है, असीम और दिव्य प्रकाश का पुँज़ है, सब को उत्पन्न करने वाला सब का आदि है, असीम रूप से विस्तृत है, किसी ओर से भी इस का ओर छोर नहीं मिलता एवम जो कुछ भी तुम ने दिव्य नेत्रों से देखा वह तो मेरे उस महान रूप का अंश मात्र है।

यहाँ स्वयं भगवान् स्वीकार करते हैं कि उन के विश्वरूप का दर्शन कर पाना कोई सभी भक्तों का विशेषाधिकार नहीं है। असीम कृपा के सागर भगवान् श्रीकृष्ण के विशेष अनुग्रह के रूप में अर्जुन इस विरले लाभ का आनन्द अनुभव कर सका है। वे यह भी विशेष रूप से कहते हैं कि यह मेरा तेजोमय अनन्त विश्वरूप तुम्हारे पूर्व किसी ने नहीं देखा है।

इस कथन का अभिप्राय केवल इतना ही है कि सार्वभौमिक एकता का यह बौद्धिक परिचय या अनुभव किसी व्यक्ति को उन परिस्थितियों में नहीं हुआ, जैसे कि अर्जुन को युद्धभूमि पर हुआ था। बिखरा हुआ मन, थका हुआ शरीर और मानसिक रूप से पूर्णतया विचलित यह थी अर्जुन की विषादपूर्ण दयनीय दशा। विविध नामरूपमय सृष्टि की अनेकता में एकता को देख समझ सकने के लिए बुद्धि की एकाग्रता की जो अनुकूल स्थिति आवश्यक होती है, उससे अर्जुन मीलों दूर था। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने अलौकिक योगशक्ति के प्रभाव से उसे आवश्यक दिव्यचक्षु प्रदान करके, संयोग के एक शान्त क्षण में, उसे विश्वरूप का दर्शन करा दिया।

ईश्वर ने सौम्य रूप से उग्र रूप के दर्शन सृजन, पालक एवम संहारक के परिचायक है। जीवन बांसुरी में बजने वाला मधुर संगीत ही नही, वरन कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना करके कीर्तिमान हो कर उभरना भी है।

भगवान द्वारा दिखाया गया यह विश्वरूप हम सब के लिये भी अर्जुन के समान महत्वपूर्ण है क्योंकि जीवन मे विषम परिस्थितियां हम सब के जीवन मे आती ही है और यदि तब इस विश्वरूप को ध्यान में रख कर हम अपने कर्तव्य धर्म का पालन यह सोच कर करे कि हम सब उस परमात्मा के हाथों निमित्त मात्र है, जो हो रहा है एवम जो होगा सब परमात्मा ही कर रहा है तो मुझे विचलित कर सकने वाली कोई वस्तु हो ही नही सकती क्योंकि में प्रकृति प्रदत्त जीव न हो कर उसी परमात्मा का अंश हूँ।

अर्जुन ने प्रार्थना कर के पुनः चतुर्भुज स्वरूप में आने को कहने से परमात्मा ने आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता दिखाई थी। उन का कथन है जो स्वरूप आज तक किसी ने भी नही देखा, जिस को देखने के लिये ऋषि, मुनि जन्म जन्मातर तक तप करने के बाद भी नही देख पाते, उस को देख कर तुम भयभीत हो कर मुझे वापस चतुर्भुज स्वरूप में प्रकट होने को कह रहे हो, उस स्वरूप को भी पूर्णतयः भी दिव्य चक्षु देने के बाद भी देख पाने में अपने असमर्थ हो रहे हो। यह इस बात का भी द्योतक है कि अर्जुन ने भी जो मायविक विराट विश्व रूप

देखा था वह भी अपूर्ण ही है। परमात्मा अनन्त है अतः जो आदि और अनन्त है उसे कौन पूर्ण रूप से देख या जान सकता है।

अध्यात्म में परमात्मा यदि प्रसन्न भी है तो भी कौन गहन जाना चाहता है। हम ज्ञान में उसी गहराई तक उतरना चाहते है जहाँ तक कोई असुविधा या कष्ट न हो। हम में से कितने लोग वेद शास्त्रो का गहन अध्ययन करते है, जरा से पढ़ने में यही शब्द का अर्थ समझ मे न आये या कठिन लगे तो सरल भाव से दो चार मंत्र सीख कर कर्मकांड कर के अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेते है।

अर्जुन विषाद में सब कुछ त्यागने को तैयार था। किन्तु उसे परमात्मा के स्वरूप में सखा मिला जो उस के साथ अत्यंत प्रेम रखता है। उसी परमात्मा के विराट विश्वरूप को देख कर वह भयभीत हो कर सौम्य स्वरूप की प्रार्थना करने लगा। हम जब ज्ञान के मार्ग पर आगे बढ़ते है तो जैसे ही कुछ कठिनाई आती है तो उस को त्याग कर सरल मार्ग की तलाश करते है।

व्यवहार में सोशल मीडिया पर संदेश प्रसारण करने के प्रति कितने लोग अपने को उत्तरदायी समझ कर संदेश भेजते है या पढ़ते है। जब परिस्थितियां हमे कुछ सीखने, समझने और देखने का अवसर देती है तो सयंम का धारण कर के कुछ सीखने की बजाए हम सरलता के मार्ग को अपना कर उस परिस्थिति से निकल जाना चाहते है।

भगवान् के द्वारा 'मैंने अपनी प्रसन्नता से, कृपा से ही तेरे को यह विश्वरूप दिखाया है -- ऐसा कहने से एक विलक्षण भाव निकलता है कि साधक अपने पर भगवान् की जितनी कृपा मानता है, उससे कई गुना अधिक भगवान् की कृपा होती है। भगवान् की जितनी कृपा होती है, उस को मानने की सामर्थ्य साधक में नहीं है। कारण कि भगवान् की कृपा अपार-असीम है; और उस को मानने की सामर्थ्य सीमित है।

साधक प्रायः अनुकूल वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदिमें ही भगवान् की कृपा मान लेता है अर्थात् सत्सङ्ग मिलता है, साधन ठीक चलता है, वृत्तियाँ ठीक हैं, मन भगवान् में ठीक लग रहा है आदिमें वह भगवान् की कृपा मान लेता है। इस प्रकार केवल अनुकूलता में ही कृपा मानना कृपा को सीमा में बाँधना है, जिस से असीम कृपा का अनुभव नहीं होता। उस कृपा में ही राजी होना कृपा का भोग है। साधक को चाहिये कि वह न तो कृपा को सीमा में बाँधे और न कृपा का भोग ही करे।

साधन ठीक चलने में जो सुख होता है, उस सुख में सुखी होना, राजी होना भी भोग है, जिससे बन्धन होता है --'सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ' सुख होना अथवा सुखका ज्ञान होना दोषी नहीं है, प्रत्युत उसके साथ सङ्ग करना, उससे सुखी होना, प्रसन्न होना ही दोषी है। इससे अर्थात् साधनजन्य सात्त्विक सुख भोगनेसे गुणातीत होनेमें बाधा लगती है। अतः साधकको बड़ी सावधानीसे इस सुखसे असङ्ग होना चाहिये। जो साधक इस सुखसे असङ्ग नहीं होता अर्थात् इसमें प्रसन्नतापूर्वक सुख लेता रहता है, वह भी यदि अपनी साधनामें तत्परतापूर्वक लगा रहे, तो समय पाकर उसकी उस सुखसे स्वतः अरुचि हो जायगी। परन्तु जो उस सुख से सावधानी पूर्वक असङ्ग रहता है, उसे शीघ्र ही वास्तविक तत्त्वका अनुभव हो जाता है।

उपरोक्त तीन दृष्टिकोण से इस श्लोक को समझने के पश्चात भगवान् अपने अभिप्राय को अगले श्लोक में स्पष्ट करते हुए क्या कहते है, हम आगे पढ़ते है।।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.47।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.48॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवं रूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥

"na veda- yajñādhyayanair na dānair,
na ca kriyābhir na tapobhir ugraiḥ..।
evaṁ-rūpaḥ śakya ahaṁ nṛ-loke,
draṣṭuṁ tvad anyena kuru-pravīra"..।।

भावार्थ:

हे कुरुश्रेष्ठ! मेरे इस विश्वरूप को मनुष्य लोक में न तो यज्ञों के द्वारा, न वेदों के अध्ययन द्वारा, न दान के द्वारा, न पुण्य कर्मों के द्वारा और न कठिन तपस्या द्वारा ही देखा जाना संभव है, मेरे इस विश्वरूप को तेरे अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा पहले कभी नहीं देखा गया है। (४८)

Meaning:

Not through Vedic studies, rituals, charity, actions nor severe penance can I be seen in this form in the human world by anyone than yourself, O foremost of the Kurus.

Explanation:

Shree Krishna declares that no amount of self- effort– the study of the Vedic texts, performance of ritualistic ceremonies, undertaking of severe austerities, abstinence from food, or generous acts of charity– is sufficient to bestow a vision of the cosmic form of God. This is only possible by his divine grace. This has been repeatedly stated in the Vedas as well:

tasya no hrāsva tasya no dhehi (Yajur Veda)[v24]

"Without being anointed in the nectar of the grace of the Supreme Lord, nobody can see him."

Shri Krishna taught the Gita to Arjuna during a time when most people confused the means with the end with regards to all things spiritual. We see this during our lifetime in the present day. To understand this, let us look at our pre- sleep rituals. We make the bed, we turn off the light, we lie down and close our eyes. Some of us read a book or listen to music afterwards. We know, however, that these are mere aids to encouraging sleep. If our body isn't ready to sleep, none of these aids will work.

Similarly, Shri Krishna says that moksha or liberation cannot be attained simply by studying the scriptures, or by performing elaborate rituals, charity or severe penance. All these prescriptions are helpful in purifying our mind, in purging it of selfishness and individuality. When our mind is immaculate through the disciplined observance of these prescriptions, it becomes fit to receive knowledge about the eternal essence through a qualified teacher. That is the only way by which we will realize the true nature of Ishvara and the eternal essence.

In most cases, we see people ardently take up different techniques of worship, penance, study and so on, but tend to get so attached to those techniques that they lose sight of the real goal which is liberation. They go so far as to claim the efficacy of one technique versus the other. Also, the eternal essence is our true nature and beyond the realm of action, as we saw in the second chapter. Nothing eternal can arise from action, as action always creates impermanent effects. Nothing that we create, or that nature has created, is eternal. Even the earth that outlives all of us will one day be destroyed. Therefore, Shri Krishna congratulates Arjuna by reminding him that it was only due to compassion that Arjuna could behold the universal form.

।। हिंदी समीक्षा ।।

भगवान श्रीकृष्ण बताते हैं कि मनुष्य के स्वयं के प्रयत्नों द्वारा वैदिक ग्रंथो का अध्ययन करने, धार्मिक अनुष्ठानों का पालन करने, घोर तपस्या करने, अन्न एवं जल का त्याग करने और उदारता से दान करने आदि जैसे भक्त के स्वयं के प्रयास उनके विराटरूप का दर्शन करने हेतु उनकी दिव्य दृष्टि प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार से पर्याप्त नहीं है। यह केवल और केवल उनकी दिव्य कृपा एवं उनकी उदारता से ही प्राप्त होती है। इसी प्रकार वेदों में इसे बार-बार दोहराया गया है।

तस्य ना रासव तस्य नो देहि (यजुर्वेद)

"परम प्रभु की कृपा के अमृत में निमज्जित हुए बिना कोई उसे नहीं देख सकता"।

मनुष्य का लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करना है, जिस के लिए प्रवृति- निवृति दो ही मार्ग है, उन दोनों मार्ग के लिये ज्ञान योग, सांख्य योग, निष्काम कर्म योग, ध्यान योग और भक्ति मार्ग बताया गया है। परमात्मा द्वारा अपने भक्त अर्जुन पर विशिष्ट कृपा करते हुए विराट विश्वरूप का एक अंश मात्र ही प्रकट किया किन्तु अर्जुन की विश्वरूप दर्शन में जो देखने की अपेक्षा थी, यह उस के विपरीत इतना विशाल, अनन्त,आदि स्वरूप काल से परे था कि अर्जुन उस स्वरूप को देख कर विचलित हो गया और उस ने परमात्मा से पुनः चतुर्भुज स्वरूप में प्रकट होने की प्रार्थना करने लगा। अतः भगवान को आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा।

मैंने प्रेम से अभिभूत हो अपने जिस विराट विश्वरूप का दर्शन तुम्हे दिखाया है, उस का एक अंश देख कर तुम भयभीत हो रहे हो, वह स्वरूप इस मृत्युलोक अर्थात मनुष्य लोक में वेदों के अध्ययन, तप, दान या किसी भी प्रकार यज्ञ आदि से देख पाना संभव नही है। इस को आज तक ब्रह्मा तक ने भी नही देखा, उस स्वरूप को देखने वाले तुम प्रथम व्यक्ति हो। तुम्हे भयभीत नही होना चाहिये।

श्री कृष्ण कहते है मुझे प्राप्ति के विभिन्न मार्ग है जिन्हें हम वेद, यज्ञ, स्वाध्याय, दान, भक्ति, निष्काम कर्म एवम उग्र तप के नामो से जानते है। इन को पूर्ण करने वाला विभिन्न लोको में अपने कर्मो के फल को भोग कर मुझे प्राप्त करता है। यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक के मृत्यु लोक ही एक मात्र लोक है जहां जीव को विभिन्न क्रियाओं को करने का अधिकार है। अन्य स्थान वह अपने कर्मो के अनुसार विभिन्न लोको के दर्शन एवम भोग को प्राप्त करता है। किन्तु मेरे विश्व रूप के दर्शन का अधिकार किसी को प्राप्त नही। मेरे विश्वरूप को मेरी कृपा से कोई देख सकता है। मेरे दर्शन दिव्य नेत्रों के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार हो ही नही सकते।

अर्जुन द्वारा विराट विश्वरूप देखने से भय उत्पन्न होने की बात स्वयं ईश्वर के लिये ग्राह्य नहीं थी, अतः अर्जुन के अंदर भय के कारण का निदान करना आवश्यक था। जिस प्रेमवश अर्जुन की अपना विराट विश्वरूप का दर्शन की प्रार्थना को परमात्मा ने स्वीकार की थी उस दर्शन को स्पष्ट करना भी आवश्यक था।

हे कुरुप्रवीर ! मेरे द्वारा प्राप्त दिव्य नेत्रों से विराट विश्वरूप का दर्शन करने वाले तो तुम ही एक मात्र व्यक्ति हो।

क्योंकि कुरु वंश में एक मात्र अर्जुन ने ही विराट विश्वरूप के दर्शन किये इसलिये उस को कुरु प्रवीर कह कुरु श्रेष्ठ बताया गया।

भगवान् द्वारा यहाँ कहे गये वचनों का विपरीत अर्थ कर के कोई यह नहीं समझे कि उन्होंने वेदाध्ययनादि की निन्दा की है अथवा ये समस्त साधन अनुपयोगी होने के कारण त्याज्य हैं। तात्पर्य यह है कि अध्ययन, यज्ञ, दान और तप ये सब अन्तकरण की शुद्धि तथा एकाग्रता प्राप्ति के साधन हैं, जो अनेकता में एकता के दर्शन करने के लिए अत्यावश्यक है। परन्तु कोई यह भी नहीं समझे कि यज्ञ दानादि साधन अपने आप में ही पूर्ण हैं या वे ही साध्य हैं। केवल वेदाध्ययन आदि से ही एकत्व का बोध और साक्षात् अनुभव नहीं हो सकता। जब

साधन सम्पन्न मन वृत्तिशून्य हो जाता है केवल तभी उसकी उस अन्तर्मुखी स्थिति में यह दर्शन सम्भव होता है।

गीता में कृष्ण द्वारा उन लोगो से सावधान रहने का भी संदेश दिया गया है जो अपने जप, तप एवम स्वाध्याय के बल पर विश्व रूप के दर्शन का दावा करते है। विश्वरूप के दर्शन परमात्मा की अनुकंपा से प्राप्त होते है, जब की वेद, यज्ञ, दान, क्रियाओं एवम उग्रतप से चरित्र निर्माण एवम व्यक्तित्व का विकास होता है। वे निर्विशेषवादी अल्पज्ञ ही होते है, इसलिए परमात्मा के दर्शन नही कर पाते।

अर्जुन कृष्ण के अनन्य भक्त थे, इसलिये कृष्ण को भी अर्जुन से अनुराग था। जब भक्ति निश्छल एवम अनुराग पूर्ण हो तो ही विश्वरूप दर्शन की कृपा हो सकती है।

भक्तिमार्ग में जो परमात्मा की अनुकृपा से जो प्राप्त हो सकता है, वह किसी भी मार्ग से प्राप्य नही है। इसलिये तुलसीदास जी ने भी कहा है

"वारि मथें घृत होई बरु, सिकता ते बरु तेल । बिनु हरि भजन न भव तरिअ, यह सिंद्धान्त अपेल" ।। (रा. मा. 7/122 क) (वार=जल, सिकता=बालू)

हमे यह भी बताया गया कि विश्वरूप का दर्शन अर्जुन के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति संजय ने भी देखा। महाभारत में इस परिपेक्ष्य में उल्लेख मिलते हैं कि संजय के भगवतस्वरूप गुरु वेदव्यास की कृपा से संजय को दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई थी ताकि वह युद्ध में घटित होने वाली घटनाओं का विवरण धृतराष्ट्र को सुनाने में सक्षम हो सके। इसलिए उसने भी अर्जुन के समान भगवान का विराट रूप देखा किन्तु बाद में जब दुर्योधन का वध हुआ तब शोक संतृप्त संजय की दिव्य दृष्टि भी लुप्त हो गयी थी।

अर्जुन का भय दूर करने के लिये भगवान् आगे के श्लोक में उन को देवरूप देखने की आज्ञा देते हुए क्या कहते है, यह हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 11.48।।

।। गीता के श्लोक 48 को ज्यादा अर्थपूर्ण समझने के लिये यह लेख मुझे प्रभावित करने योग्य लगा, आशा के आप को पसंद आये। इस को पढ़ना विराट विश्वरूप के दर्शन के महत्व को समझने के लिए भी आवश्यक है।। विशेष - गीता 11.48 ।।

भगवद गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते है कि बुद्धिहीन मनुष्य मुझ को ठीक से न जानने के कारण सोचते हैं कि मैं (भगवान् कृष्ण) पहले निराकार था और अब मैंने इस स्वरूप को धारण किया है। वे अपने अल्पज्ञान के कारण मेरी अविनाशी तथा सर्वोच्च प्रकृति को नहीं जान पाते।

तात्पर्य : देवताओं के उपासकों को अल्पज्ञ कहा गया है | भगवान् कृष्ण अपने साकार रूप में यहाँ पर अर्जुन से बातें कर रहे हैं, किन्तु तब भी निर्विशेषवादी अपने अज्ञान के कारण तर्क करते रहते हैं कि परमेश्वर का अन्ततः स्वरूप नहीं होता।

श्रीरामानुजाचार्य की परम्परा के महान भगवद्भक्त यामुनाचार्य ने इस सम्बन्ध में दो अत्यन्त उपयुक्त श्लोक कहे हैं (स्तोत्र रत्न १२) -

त्वां शीलरूपचरितैः परमप्रकृष्टैः

सत्त्वेन सात्विकतया प्रबलैश्च शास्त्रैः।

प्रख्यातदैवपरमार्थविदां मतैश्च

नैवासुरप्रकृतयः प्रभवन्ति बोद्धुम् ।।

“हे प्रभु! व्यासदेव तथा नारद जैसे भक्त आपको भगवान् रूप में जानते हैं | मनुष्य विभिन्न वैदिक ग्रंथों को पढ़कर आपके गुण, रूप तथा कार्यों को जान सकता है और इस तरह आपको भगवान् के रूप में समझ सकता है | किन्तु जो लोग रजो तथा तमोगुण के वश में हैं, ऐसे असुर तथा अभक्तगण आप को नहीं समझ पाते। ऐसे अभक्त वेदान्त, उपनिषद् तथा वैदिक ग्रंथों की व्याख्या करने में कितने ही निपुण क्यों न हों, वे भगवान् को समझ नहीं पाते।”

ब्रह्मसंहिता में यह बताया गया है कि केवल वेदान्त साहित्य के अध्ययन से भगवान् को नहीं समझा जा सकता। परमपुरुष को केवल भगवत्कृपा से जाना जा सकता है। अतः इस श्लोक में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि न केवल देवताओं के उपासक अल्पज्ञ होते हैं, अपितु वे अभक्त भी जो कृष्णभावनामृत से रहित हैं, जो वेदान्त तथा वैदिक साहित्य के अध्ययन में लगे रहते हैं, अल्पज्ञ हैं और उनके लिए ईश्वर के साकार रूप को समझ पाना सम्भव नहीं है। जो लोग परमसत्य को निर्विशेष करके मानते हैं वे अबुद्धयः बताये गये हैं जिसका अर्थ है, वे लोग जो परमसत्य के परम स्वरूप को नहीं समझते। श्रीमद्भागवत में बताया

गया है कि निर्विशेष ब्रह्म से ही परम अनुभूति प्रारम्भ होती है जो ऊपर उठती हुई अन्तर्यामी परमात्मा तक जाती है, किन्तु परमसत्य की अन्तिम अवस्था भगवान् है।

आधुनिक निर्विशेषवादी तो और भी अधिक अल्पज्ञ हैं, क्योंकि वे पूर्वगामी शंकराचार्य का भी अनुसरण नहीं करते जिन्होंने स्पष्ट बताया है कि कृष्ण परमेश्वर हैं। अतः निर्विशेषवादी परमसत्य को न जानने के कारण सोचते हैं कि कृष्ण देवकी तथा वासुदेव के पुत्र हैं या कि राजकुमार हैं या कि शक्तिमान जीवात्मा हैं।

भगवद्गीता में (९.११) भी इसकी भर्त्सना की गई है | अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् - केवल मुर्ख ही मुझे सामान्य पुरुष मानते हैं।

तथ्य तो यह है कि कोई बिना भक्ति के तथा कृष्णभावनामृत विकसित किये बिना कृष्ण को नहीं समझ सकता। इसकी पुष्टि भागवत में (१०.१४.२९) हुई है -

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।

जानाति तत्त्वं भगवन् महिन्मो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्।।

“हे प्रभु! यदि कोई आपके चरणकमलों की रंचमात्र भी कृपा प्राप्त कर लेता है तो वह आपकी महानता को समझ सकता है | किन्तु जो लोग भगवान् को समझने के लिए मानसिक कल्पना करते हैं वे वेदों का वर्षों तक अध्ययन करके भी नहीं समझ पाते।”

कोई न तो मनोधर्म द्वारा, न ही वैदिक साहित्य की व्याख्या द्वार भगवान् कृष्ण या उनके रूप को समझ सकता है | भक्ति के द्वारा की उन्हें समझा जा सकता है। जब मनुष्य **हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे** - इस महानतम जप से प्रारम्भ करके कृष्णभावनामृत में पूर्णतया तन्मय हो जाता है, तभी वह भगवान् को समझ सकता है | अभक्त निर्विशेषवादी मानते हैं कि भगवान् कृष्ण का शरीर इसी भौतिक प्रकृति का बना है और उनके कार्य, उनका रूप इत्यादि सभी माया हैं | ये निर्विशेषवादी मायावादी कहलाते हैं। ये परमसत्य को नहीं जानते।

पतंजलि योगशास्त्र में अविद्या को पांच स्वरूप में कहा गया है जिसे हम 1) अविद्या 2) अस्मिता, 3) राग, 4) द्वेष और 5) अभिनिवेश कहा गया है। ये अज्ञान प्रत्येक जीव में चार प्रकार से क्रिया शील है जिसे प्रसूप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार कहा गया है। अतः आत्मशुद्धि और सरलता के अभाव में जीव में प्रकृति अहम भाव रखती ही है, और इसी

अहम भाव में जीव में ये अज्ञान किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते है। इसलिए वेद और शास्त्रों के ज्ञान से विवेक हो सकता है किंतु यह विवेक अहम और राग - द्वेष से परे नहीं होता। इसी प्रकार यज्ञ करे या किसी भी प्रकार से योग करे, जीव को विश्वरूप दर्शन के योग्य नहीं बना सकता। विश्वरूप दर्शन का एक मात्र रास्ता श्रद्धा, प्रेम और विश्वास से पूर्ण समर्पण और स्मरण से हो कर गुजरता है। यह रास्ता ही ज्ञान योग, कर्मयोग या भक्ति योग सभी का है। क्योंकि अर्जुन के समर्पित भाव से परमात्मा ने प्रसन्न हो कर अपना विश्व रूप उसे दिखाया।

बीसवें श्लोक से स्पष्ट है - कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः - जो लोग कामेच्छाओं से अन्धे हैं वे अन्य देवताओं की शरण में जाते हैं। यह स्वीकार किया गया है कि भगवान् के अतिरिक्त अन्य देवता भी हैं, जिनके अपने-अपने लोक हैं और भगवान् का भी अपना लोक है। जैसा कि तेईसवें श्लोक में कहा गया है - देवान् देवजयो यान्ति भद्भक्ता यान्ति मामपि - देवताओं के उपासक उनके लोकों को जाते हैं और जो कृष्ण के भक्त हैं वे कृष्णलोक को जाते हैं, किन्तु तो भी मुर्ख मायावादी यह मानते हैं कि भगवान् निर्विशेष हैं और ये विभिन्न रूप उन पर ऊपर से थोपे गये हैं | क्या गीता के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि देवता तथा उनके धाम निर्विशेष हैं? स्पष्ट है कि न तो देवतागण, न ही कृष्ण निर्विशेष हैं | वे सभी व्यक्ति हैं। भगवान् कृष्णपरमेश्वर हैं, उनका अपना लोक है और देवताओं के भी अपने-अपने लोक हैं।

अतः यह अद्वैतवादी तर्क कि परमसत्य निर्विशेष है और रूप ऊपर से थोपा (आरोपित) हुआ है, सत्य नहीं उतरता। यहाँ स्पष्ट बताया गया है कि यह ऊपर से थोपा हुआनहीं है।

भगवद्गीता से हम स्पष्टतया समझ सकते हैं कि देवताओं के रूप तथा परमेश्वर का स्वरूप साथ-साथ विद्यमान हैं और भगवान् कृष्ण सच्चिदानन्द रूप हैं। वेद भी पुष्टि करते हैं कि परमसत्य आनन्दमयोऽभ्यासात्- अर्थात् वे स्वभाव से ही आनन्दमय हैं और वे अनन्त शुभ गुणों के आगार हैं। गीता में भगवान् कहते हैं कि यद्यपि वे अज (अजन्मा) हैं, तो भी वे प्रकट होते हैं। भगवद्गीता से हम इस सारे तथ्यों को जान सकते हैं। अतः हम यह नहीं समझ पाते कि भगवान् किस तरह निर्विशेष हैं? जहाँ तक गीता के कथन हैं, उनके अनुसार निर्विशेषवादी अद्वैतवादियों का यह आरोपित सिद्धान्त मिथ्या है। यहाँ स्पष्ट है कि परमसत्य भगवान् कृष्ण के रूप और व्यक्तित्व दोनो है।

निराकार, साकार और अवतार ये तीन मनुष्य की पूजा, उपासना और ध्यान के आधार है।

हम लोग सदियों से यह बात कहते और सुनते आ रहे कि परमेश्वर निराकार है प्रकाश स्वरूप हैं, निराकार का मतलब जो सृष्टि के कण-कण में व्यापत हैं, सिद्ध पुरुष सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वदा परमेश्वर को सबके बुरे-भले कर्मों का द्रष्टा जानकर एक क्षणमात्र भी परमात्मा से अपने को अलग न मानते हुए कुकर्म करना तो बड़ी दूर का बात रही वह मन में भी कुचेष्टा नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है जो मैं मन, वचन, कर्म से भी बुरा काम करूंगा तो इस अन्तर्यामी निराकार ब्रह्म के न्याय से बिना दण्ड पाए कदापि नही बचूंगा। इसलिए ईश्वर को निराकार रूप में भजने वाले उपासक साधक कण कण में विराजमान मानते हुए शुद्ध, पवित्र जीवन जीते हुए सबकों श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहते हैं। भगवान एक अनंत अगाध समुद्र की भाँती है, जिस साधक ने जितनी डुबकी लगाई उसने परमात्मा का उतना ही बखान किया।

श्रीराम चरित्र मानस में भी ऐसा उल्लेख आता है कि राम निराकार हैं या राजा दशरथ के पुत्र (साकार) जिसका निराकरण स्वयं भगवान शंकर जी ने बालकाण्ड में किया हैं।

जेही इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।

सोई दसरथ सुत भगत हित कोसलपति बगवान ।।

जब जब इस धरा पर धर्म की हानि होने लगती हैं तब तब निराकार ईश्वर अवतार लेकर सज्जनों की रक्षा करते है।

कहा जाता हैं कि इस अखिल विश्व ब्रह्मांड व जीव मात्र को संचालित करने वाली सूक्ष्म शक्ति हैं जो दिखाई तो नहीं देती पर उस के होने का अनुभव बराबर होता रहता हैं। लेकिन परमात्मा का साकार रूप देखना हो तो यह विश्व ही परमेश्वर माना जा सकता है। साकार रूप में ईश्वर के दर्शन करना बड़ा ही सहज और सरल हैं, साकार अर्थात प्राणी मात्र और कहा जाता है कि प्राणी मात्र में भी ईश्वर बालक, दुःखी जन में ईश्वर का वास होता हैं इसलिए साकार ब्रह्म के उपासक पीड़ित मानवता की सेवा को ही पर्मात्मा की पूजा, जप, तप ध्यान आदि मानते हैं। भगवत गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने सातवें अध्याय से ग्यारहवें अध्याय तक तो विशेष रूप से सगुण भगवान की उपासना का महत्त्व दिखलाया है। ग्याहरवें अध्याय के अंत में सगुण-साकार भगवान की अनन्य भक्ति का फल भगवत्प्राप्ति बतलाकर 'मत्कर्मकृत्' से आरम्भ होने वाले इस अंतिम श्लोक में सगुण-साकार-स्वरूप भगवान के भक्त की विशेष-रूप से बड़ाई की। समग्र ब्रह्म का दर्शन न सम्भव है न आवश्यक न उपयोगी।

ईश्वर दर्शन मानव-प्राणी की-अन्य प्राणधारियों की सत्प्रवृत्तियों के रूप में करना चाहिए। उस दिव्य प्रेरणा से सम्पन्न प्रकाश को ही परमेश्वर का साकार स्वरूप कह सकते हैं।

अतः निर्गुण उपासक एक योगी होता है और सगुण उपासक एक भक्त। परमात्मा को प्राप्त करने के लिये अपने ज्ञान को इतना उठाओ कि उस को जान सको या फिर अपने को उस के प्रति इतना समर्पित कर दो, कि वह भक्त का योगक्षेम वहन करे।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष गीता 11.48 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.49॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावोदृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यतेपभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वंतदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥

"mā te vyathā mā ca vimūḍha-bhāvo,
dṛṣṭvā rūpaṁ ghoram īdṛṅ mamedam..।
vyapeta-bhīḥ prīta-manāḥ punas tvaṁ,
tad eva me rūpam idaṁ prapaśya"..।।

भावार्थ:

हे मेरे परम-भक्त! तू मेरे इस विकराल रूप को देखकर न तो अधिक विचलित हो, और न ही मोहग्रस्त हो, अब तू पुन: सभी चिन्ताओं से मुक्त होकर प्रसन्न-चित्त से मेरे इस चतुर्भुज रूप को देख। (४९)

Meaning:

Do not be disturbed, and do not be deluded on seeing that, my frightful form. Be fearless, with a pleasant mind, behold again this very form of mine.

Explanation:

Knowing fully well that Arjuna's mind could not deal with the fear- inducing cosmic form, Shri Krishna asked Arjuna to not worry, and to remove all traces of fear. He reassured him that it was his friend, charioteer, and

companion all along, not some other person. Nothing had changed. He used the word “prapashya” meaning “behold”, urging Arjuna not to look away, that the familiar form of Shri Krishna was on its way. Shree Krishna continues to pacify Arjun should feel privileged to be blessed with a vision of the cosmic form. Further, he tells Arjun to behold his personal form again and shed his fear.

Unlike Arjuna, we have not seen the grand sweep and scale of the cosmic form. But our daily life is part of that very universe, so whatever Shri Krishna says to Arjuna is also applicable to us. The terrors, the destructive forces in the universe usually create fear and agitation in our minds. Shri Krishna urges all of us to go about our lives with a fearless attitude and a pleasant mind, because he is present in everything. Only when we forget this fact will we create fear and agitation.

So here Krishna says Arjuna if you are not ready for Viśva rūpa darśanam; I do not want to impose that upon you. This is the most unique aspect of our vedic teaching; we never impose anything upon a seeker; there are many people who are very clear that they do not want mōkṣa; because either they have not understood mōkṣa or frightened of mōkṣa; because mōkṣa is defined as advaitam; advaitam means if I stay alone; what should I do? I would like to have people around; that is only nice; even though some pidungal problem is there; it is nice to have people around; and mōkṣa means I should be free from all these things; I do not want freedom; even if there were problems I would like to be amongst people. So therefore, remember appreciating the value of mōkṣa itself requires a tremendous maturity; and therefore, Vēda says if you do not feel or appreciate the value of mōkṣa; you need not work for mōkṣa; you work for artā; you work for kāma; fulfil your desires.

Only one condition is following dharma. And whatever you get legitimately, take it as Bhagavān's gift. That is the only sādanā we request you to practice; you need not study upaniṣad; follow only karma kānda; you follow only karma Yōgāḥ by which we mean fulfil your desires legitimately and take whatever you get as Īśvara prasāda. Start there, it will lead you up to Mōkṣa.

Ultimately, the root of all sorrow and fear is delusion, the confusion between right and wrong knowledge. In Arjuna's case, it was the delusion created by attachment to his relatives. In our case, it is our attachment to our body, to our possessions, to our family, our job, our position, the list goes on and on. Shri Krishna says "maa vimoodhabhaavaha", he urges all of us to cast our state of delusion away, and learn to see Ishvara in everything, and everything in Ishvara.

In fact, Krishna himself is going to tell this beautifully in the next chapter.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन को परमात्मा ने अनुराग स्वरूप विराट विश्वरूप का दर्शन दिया किन्तु कहते है कि जब तक जीव की ममता शरीर एवम अहम भाव पूर्ण है, उसे मुक्ति से भय ही लगेगा। हम सब परमात्मा को प्राप्त करने की इच्छा रखते है किंतु इस शरीर एवम अपने विचारों के अनुरूप, इसलिये यदि परमात्मा के आने से विचारों में परिवर्तन हो या शरीर छूटने की बात हो तो पसीना छुटने लग जायेगा। क्योंकि हमारी ममता उस सर्वोत्तम परमात्मा को इस शरीर एवम अहम के रहते स्वीकार नही कर सकती। अर्जुन का भय उस की ममता एवम अहम का परिचायक है इसलिये भगवान श्री कृष्ण कहते है

मेरे विश्वरूप को देख कर तेरे में भी कोई विकृति नहीं आनी चाहिये। हे अर्जुन तेरे को जो भय लग रहा है, वह शरीर में अहंताममता (मैं- मेरापन) होने से ही लग रहा है अर्थात् अहंता ममता वाली चीज (शरीर) नष्ट न हो जाय, इसको लेकर तू भयभीत हो रहा है। यह तेरी मूर्खता है अनजानपना है। इस को तू छोड़ दे। मैंने अपना विराट विश्वरूप सृष्टि से संहार तक दिखाना शुरू किया तो यह तेरे प्रति मेरा अनुराग है, जिस से तुझे भय लग रहा है वो तेरी मूर्खता एवम मूढपन है। मैंने तुम्हे कतई भयभीत करने के लिये अपना वास्तविक विराट

स्वरूप नही दिखाया, जब कि तुम ने उसे पूरा देखे बिना ही प्रसन्न होने की जो स्तुति शुरू की है वो तुम्हारा ही अहम है। मै तो तुम्हे प्रेम वश अपना वास्तविक स्वरूप का दर्शन करवा रहा था और तुम व्यर्थ में ही यह समझ कर प्रार्थना कर रहे हो कि मै तुम से अप्रसन्न हूँ। अपने भय को त्यागो। भयभीत होने की अपेक्षा उसे मेरे विराट रूप का दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त होने पर आनंदित होना चाहिए। आगे वह कहते हैं कि अर्जुन अब भय मुक्त होकर पुनः मेरे पुरुषोत्तम रूप को देखो।

विकराल दाढ़ों के कारण भयभीत करने वाले मेरे मुखों में योद्धा लोग बड़ी तेजी से जा रहे हैं, उन में से कई चूर्ण हुए सिरों सहित दाँतोंके बीच में फँसे हुए दीख रहे हैं और मैं प्रलय काल की अग्नि के समान प्रज्वलित मुखों द्वारा सम्पूर्ण लोगों का ग्रसन करते हुए उन को चारों ओर से चाट रहा हूँ -इस प्रकार के मेरे घोर रूप को देखकर तेरे को व्यथा नहीं होनी चाहिये, प्रत्युत प्रसन्नता होनी चाहिये। क्योंकि यह स्वरूप मेरा वास्तविक स्वरूप है जो पहले किसी ने कभी नही देखा। तात्पर्य है कि पहले तू जो मेरी कृपा को देखकर हर्षित हुआ था, तो मेरी कृपा की तरफ दृष्टि होने से तेरा हर्षित होना ठीक ही था, पर यह व्यथित होना ठीक नहीं है।

तो यहाँ कृष्ण कहते हैं अर्जुन यदि तुम विश्व रूप दर्शन के लिए तैयार नहीं हो; मैं इसे तुम पर थोपना नहीं चाहता। यह हमारी वैदिक शिक्षा का सबसे अनूठा पहलू है; हम कभी भी किसी साधक पर कुछ नहीं थोपते; ऐसे कई लोग हैं जो बहुत स्पष्ट हैं कि वे मोक्ष नहीं चाहते हैं; क्योंकि या तो उन्होंने मोक्ष को नहीं समझा है या मोक्ष से डरते हैं; क्योंकि मोक्ष को अद्वैत के रूप में परिभाषित किया गया है; अद्वैत का अर्थ है यदि मैं अकेला रहूँ; मुझे क्या करना चाहिए? मैं चाहूँगा कि मेरे आस-पास लोग हों; यह अच्छा ही है; भले ही कुछ पिडुंगल समस्याएँ हों; लोगों का आस-पास होना अच्छा है; और मोक्ष का अर्थ है कि मुझे इन सभी चीज़ों से मुक्त होना चाहिए; मुझे स्वतंत्रता नहीं चाहिए; भले ही समस्याएँ हों, मैं लोगों के बीच रहना चाहूँगा। इसलिए याद रखें कि मोक्ष के मूल्य की सराहना करने के लिए बहुत परिपक्वता की आवश्यकता होती है; और इसलिए वेद कहता है कि यदि आप मोक्ष के मूल्य को महसूस या सराहते नहीं हैं; तो आपको मोक्ष के लिए काम करने की आवश्यकता नहीं है; आप आर्त के लिए काम करते हैं; आप काम के लिए काम करते हैं; अपनी इच्छाओं को पूरा करें।

बस एक शर्त है धर्म का पालन करना। और जो भी तुम्हें वैध रूप से मिले, उसे भगवान का उपहार समझो। यही एकमात्र साधना है जिसका हम तुमसे अभ्यास करने का आग्रह करते हैं; तुम्हें उपनिषद पढ़ने की ज़रूरत नहीं है; केवल कर्म कांड का पालन करो; तुम केवल कर्म योग का पालन करो जिसका मतलब है कि अपनी इच्छाओं को वैध रूप से पूरा करो और जो भी मिले उसे ईश्वर प्रसाद समझो। वहीं से शुरू करो, यह तुम्हें मोक्ष तक ले जाएगा।

आज भी जिस किसी को जहाँ कहीं जिस किसी से भी भय होता है, वह शरीर में अहंता ममता होने से ही होता है। शरीर में अहंता ममता होने से वह उत्पत्ति विनाशशील वस्तु (प्राणों) को रखना चाहता है। यही मनुष्य की मूर्खता है और यही आसुरी सम्पत्ति का मूल है। परन्तु जो भगवान् की तरफ चलनेवाले हैं, उन का प्राणों में मोह नहीं रहता, प्रत्युत उनका सर्वत्र भगवद्भाव रहता है और एकमात्र भगवान् में प्रेम रहता है। इसलिये वे निर्भय, हो जाते हैं। उनका भगवान् की तरफ चलना दैवी सम्पत्तिका मूल है।

नृसिंहभगवान् के भयंकर रूप को देख कर देवता आदि सभी डर गये, पर प्रह्लादजी नहीं डरे क्योंकि प्रह्लादजी की सर्वत्र भगवद्बुद्धि थी। इसलिये वे नृसिंहभगवान् के पास जाकर उन के चरणों में गिर गये और भगवान् ने उन को उठा कर गोद में ले लिया तथा उन को जीभ से चाटने लगे।

अर्जुन द्वारा विराट विश्वरूप की बजाय चतुर्भुज रूप के दर्शन कुछ कुछ ऐसा है जैसे हमे कोई अमेरिका का प्रेजिडेंट बनाये और हम किसी जिले का कलेक्टर बनने की इच्छा करे या कोई हमे राजमहल देने की पेशकश करें और हम एक कमरे का मकान मांगे। कोई हमे पूरी विशालकाय व्यवसाय का मालिक बनाये और हम एक चौकीदार की नोकरी मांगे। आदि आदि।

अर्जुन की विराट विश्वरूप को त्याग कर चतुर्भुज स्वरूप देखने की अभिलाषा की तुलना कामधेनु गाय मिलने पर उस को पालने की बजाए त्यागने की बात करना, अमृत कुंड से भरा समुन्दर देखने के बाद उस मे डूबने के भय दिखाना या फिर भाग्य से चिंतामणि आभूषण मिलने पर उसे भार समझ कर पहनने से इनकार करने के समान है। परमात्मा कहते है कि साक्षात सूर्य की प्राप्ति पर होने पर भी परछाई की मांग करने के समान अर्जुन की यह प्रार्थना कर रहे है।

श्री कृष्ण कहते है कि अर्जुन तुम मुझे प्रिय हो इसलिये तुम्हारी इच्छानुसार में तुम्हे मेरा सौम्य स्वरूप चतुर्भुजवाला दिखाता हूँ किन्तु यह ध्यान रहे जिस सौम्य स्वरूप में तुम मुझे

देखने की प्रार्थना कर रहे हो वो मेरा वास्तविक स्वरूप नही है। किन्तु भगवान भाव का भूखा है, इसलिये वह भक्त की इच्छा का भी सम्मान करता है।

परमात्मा जहां अच्छा होता है वहाँ भी है और परमात्मा जहां मन के अनुकूल नही होता वहाँ भी है। परमात्मा के मन मे कोई भेद नही। हमारी ही कमजोरी है कि हम परमात्मा से उत्तम से उत्तम प्राप्त करना चाहते है और जब मन के विपरीत होता है, कष्ट होता है तो स्वीकार नहीं कर पाते, भयभीत हो जाते है, जब कि परमात्मा तब भी वहाँ है। हमारा अनुराग, ममता, अहम इस शरीर से बंधा है, इस के छूटने के भय हमे अच्छा अच्छा ही देखने के लिये विवश करता है।

व्यवहार में जब जीवन में कठनाईयाँ आती है तो हम घबरा जाते है, हमारा मोह हमारे अंदर भय पैदा कर देता है और हम अपने परमात्मा के प्रति अडिग विश्वास एवम श्रद्धा से डिगना शुरू हो कर सरलता मांगना शुरू कर देते है। स्वर्ण का आभूषण अग्नि में तपने और पिटने के बाद ही तैयार होता है। संसार मे उच्च पद या उच्च स्थान पर किसी भी क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ होने के लिए प्रत्येक व्यक्ति ने अनगिनत कष्टों को भी साहस और विश्वास के साथ सहा है। वास्तव में, कृष्ण स्वयं अगले अध्याय में इसे खूबसूरती से बताने जा रहे हैं।

परमात्मा के विराट विश्वरूप दर्शन के बाद सौम्य स्वरूप का दर्शन प्रकट हो गया। भगवान श्री कृष्ण पूर्वश्लोक में अर्जुन को जिस रूप को देखने के लिये आज्ञा दी, उसी के अनुसार भगवान् अपना विष्णुरूप दिखाते हैं। इसका वर्णन सञ्जय आगे के श्लोक में क्या करते हैं, हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 11.49।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.50॥

संजय उवाच
इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनंभूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा॥

"sañjaya uvāca,
ity arjunaṁ vāsudevas tathoktvā,
svakaṁ rūpaṁ darśayām āsa bhūyaḥ..।
āśvāsayām āsa ca bhītam enaṁ,

bhūtvā punaḥ saumya-vapur mahātmā"..।।

भावार्थ:

संजय ने कहा - वासुदेव भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से इस प्रकार कहने के बाद अपना विष्णु स्वरूप चतुर्भुज रूप को प्रकट किया और फिर दो भुजाओं वाले मनुष्य स्वरूप को प्रदर्शित करके भयभीत अर्जुन को धैर्य बँधाया। (५०)

Meaning:

Sanjaya said:

Then, having said this to Arjuna, Vaasudeva showed his form, and again assuming his pleasant form, reassured the scared one.

Explanation:

The eighth chapter in the tenth canto (book) of the Srimad Bhaagavatam describes the ceremony where the sage Garga, in the village of Gokula, gave Shri Krishna the name “Vaasudeva” to indicate that he was the son of Vasudeva. This ceremony was conducted in a low- key manner so as not to arouse the suspicion of the king Kansa, who had vowed to finish the progeny of Vasudeva. Vaasudeva also means “one who pervades the universe”.

Shree Krishna hid the vision of his cosmic form, and manifested before Arjun in his four-armed form, which is adorned with a golden diadem, disc, mace, and lotus flower. It is the repository of all divine opulences such as majesty, omniscience, omnipotence, etc. The four-armed form of Shree Krishna evokes the sentiment of awe and reverence, much like the sentiments of the citizens of a kingdom toward their king. However, Arjun was a sakhā (friend) of Shree Krishna, and devotion dominated by the sentiment of awe and reverence would never satisfy him. He had played with Shree Krishna, eaten with him, confided his private secrets to him, and

shared loving personal moments with him. Such blissful devotion of sakhya bhāv (devotion where God is seen as a personal friend) is infinitely sweeter than aiśhwarya bhakti (devotion where God is revered as the distant and almighty Lord). Hence, to conform to Arjun's sentiment of devotion, Shree Krishna finally hid even his four-armed form, and transformed into his original two-armed form.

Once in the forest of Vrindavan, Shree Krishna was engaging in loving pastimes with the gopīs, when he suddenly disappeared from their midst. The gopīs prayed for him to come back. Hearing their supplications, he manifested again, but in his four-armed form. The gopīs thought him to be the Supreme Lord Vishnu, and accordingly they paid their obeisance. But they moved on, not being attracted to spend any further time with him. They had been habituated to seeing the Supreme Lord Shree Krishna as their soul-beloved, and this form of his as Lord Vishnu held no attraction for them. However, Radharani came onto the scene, and upon seeing her, Shree Krishna became overwhelmed in love for her, and could no longer maintain his four-armed form. His two arms automatically disappeared, and he resumed his two-armed form. In this verse too, Shree Krishna returned to his most attractive two-armed form.

In this shloka, Sanjaya introduced himself in the commentary to indicate that Shri Krishna ended the fearful cosmic form, then assumed his four-armed form, and then the pleasant two armed form that Arjuna knew and loved. Shri Krishna held a whip in one hand and the reins of the chariot in another. Just like a father scolds his children and immediately pacifies them, he pacified Arjuna and ensured that his state of mind returned to normal. This is reflected in the next shloka where the chanting meter also reverts to the "anushtubh chandha", the default meter for chanting the Gita.

।। हिंदी समीक्षा ।।

यह कथन संजय द्वारा धृष्टराष्ट्र सुनाते हुए बताया गया है कि अर्जुन की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए वसुदेव के पुत्र वासुदेव श्री कृष्ण ने अपने विराटरूप को छिपा लिया और फिर वे अर्जुन के सम्मुख अपने चतुर्भुज रूप में प्रकट हुए जो स्वर्ण मुकुट, गदा, चक्र और कमल के पुष्प से विभूषित था जोकि समस्त दिव्य ऐश्वर्यों, गौरव, सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता का पुंज था। श्रीकृष्ण का चतुर्भुज रूप उसी प्रकार से भय और श्रद्धा को उत्पन्न करता है जैसा कि किसी राज्य के नागरिकों का उनके राजा के प्रति होता है किन्तु अर्जुन श्रीकृष्ण का सखा था इसलिए श्रद्धा और भय के भाव से युक्त भक्ति उसे कभी संतुष्ट नहीं कर सकती थी। वह श्रीकृष्ण के साथ खेला, उनके साथ अन्न ग्रहण किया, अपने व्यक्तिगत रहस्यों को परस्पर बांटा। इस प्रकार की सखा भाव की आनन्दमयी भक्ति (ऐसी भक्ति जो भगवान के मित्र के रूप में दिखाई दे) ऐश्वर्य भक्ति से अत्यंत मधुर होती है। इसलिए अर्जुन की सखा भक्ति की भावना को पुष्ट करने के लिए श्रीकृष्ण ने अंततः अपना चतुर्भुजी रूप भी छिपा लिया और अपने मूल दो भुजाओं वाले मनोहारी रूप में परिवर्तित हो गए। एक बार वृंदावन में श्रीकृष्ण गोपियों के साथ रासलीला कर रहे थे और जब वे अचानक उनके बीच में से ओझल हो गये तब गोपियाँ उनसे पुनः प्रकट होने की विनती करने लगी। उनके अनुनय-विनय को सुन श्रीकृष्ण वहाँ पुनः चतुर्भुज रूप में प्रकट हुए। गोपियों ने उन्हें विष्णु भगवान समझा और उनका श्रद्धापूर्वक सत्कार किया किन्तु गोपियाँ उनके उस रूप पर मोहित न होकर उनके साथ और समय व्यतीत करना न चाहकर वहाँ से चली जाती है। उनका श्रीकृष्ण के भगवान विष्णु वाले रूप के प्रति कोई आकर्षण नहीं था क्योंकि उनकी आत्मा भगवान श्रीकृष्ण को प्राण-प्रियतम के रूप में देखने की आदी थी। बाद में फिर जब राधा-रानी वहाँ प्रकट होती हैं तो उन्हें देखकर उनके प्रेम में विह्वल होकर श्रीकृष्ण के चतुर्भुजी रूप की दो भुजाएँ स्वतः लुप्त हो गयी और उन्होंने पुनः अपना दो भुजाओं वाला रूप धारण कर लिया।

गीता में विराट स्वरूप दर्शन का वर्णन संजय द्वारा ही श्लोक 9 ने शुरू किया गया और अंत भी संजय द्वारा ही इस श्लोक में किया जा रहा है। व्यास जी इस के द्वारा उन लोगो को संदेश देने के प्रयत्न कर रहे है जो बिना किसी भाव के सत्य को स्वीकार करते है। यह विराट स्वरूप का दर्शन/वर्णन करने वाले में धृतराष्ट्र है, जो पुत्र मोह में और अर्जुन है जो मोह से मुक्त होने का प्रयास कर रहे है किंतु फिर भी विराट स्वरूप में सत्य को देख कर घबरा गए। यदि इस स्वरूप को बिना किसी घबराहट या भाव से यथास्वरूप किसी ने देखा है तो वह संजय ही है।

संजय धृष्टराष्ट्र को वसुदेव पुत्र श्री कृष्ण कहते है जिस से यह पुत्र मोह में अंधा व्यक्ति पुनः समझ ले कि अर्जुन जिसे विराट विश्वरूप में देख रहा था वो इस समय कौन है। वो यह जान ले कि साक्षात भगवान अर्जुन के सारथी के रूप में श्री कृष्ण ही है।

समझने और समझाने में यदि दोनों का मन- बुद्धि एवम विवेक एक समान न हो तो वार्तालाप असफल ही होता है। संजय कुरुक्षेत्र की घटना ही नही सुना रहा वरन धृष्टराष्ट्र को चेतावनी भी दे रहा है कि यदि युद्ध न रोका गया तो कुरुवंश का अंत निश्चित है। किंतु धृष्टराष्ट्र इसे मात्र एक घटना समझ कर अपनी विजय को देखना चाहता है, वो सत्य को समझ नही पा रहा। लालसा अक्सर उन अनहोनी की चाह पर सत्य को नकारना शुरू कर देती है, जिसे लोभ में अंधा व्यक्ति भी जानता है कि वो संभव नही। वो एक प्रतिशत की संभावना के पीछे 99 प्रतिशत की सत्यता को स्वीकार नही करता।

विचारणीय प्रश्न यह भी है कि विराट विश्वरूप के दर्शन अर्जुन ने भी किये किन्तु वह इस सब के लिए तैयार नही था। उसे भविष्य जानने की उत्सुकता अवश्य थी किन्तु इतना भयानक सत्य के लिये उस की मानसिक अवस्था नहीं थी। इसलिये वह भयग्रस्त हो कर पुनः सौम्य स्वरूप के दर्शन की प्रार्थना करने लगा। जब तक जीव में अहंकार, मोह और राग - द्वेष रहता है, ज्ञान का वास्तविक स्वरूप वह स्वीकार नहीं कर सकता। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में मोक्ष के लिए कौन प्रयत्न करता है? यदि यह संसार को भूल कर किसी को मोक्ष का अनुभव भी करा दे, तो आत्मशुद्धि के बिना, वह भयभीत हो होगा। विराट विश्वरूप दर्शन ने उस के मोह, अहम एवम ज्ञान की हर सीमा को तोड़ दिया। किन्तु यह वर्णन जब धृष्टराष्ट्र राष्ट्र ने सुना तो भी अपने पूर्वाग्रह मोह से मुक्त नही हो सका। क्या काल ही हर प्रेरणा का कारक है कि हमारी सोच एवम क्रिया हमारी नही, सब का नियंत्रण त्रियामी गुणों से प्रकृति ही माया द्वारा करती है। मृत्यु लोक में सब अपनी आयु को पूर्ण करते है फिर काल के निमित्त हो कर अपने अपने कर्मो के अनुसार भोग को प्राप्त होते हैं। क्या मनुष्य के कर्म भी काल से प्रेरित होते है?

आज के संदर्भ में जब TV पर बहस होती है तो वो विवेकशून्य होती है, क्योंकि दोनों पक्ष एक दूसरे को समझते हुए भी अपने अपने पक्ष में उजुल फिजूल तर्कों के साथ एवम असंगत घटनाओं के साथ बहस करते है। क्योंकि उन का बहस से पहले ही यह तय है कि उन्हें दूसरे पक्ष की बात को स्वीकार नही करनी है। एंकर के रूप में हम सभी संजय है और सभी ओर धृष्टराष्ट्र बैठ कर बहस करते है। सभी ने अपने अपने धर्म एवम सत्य को प्रतिपादित कर

लिया है, किन्तु जो सनातन धर्म एवम सत्य है, वो देख रहा है वो जानता है कि सत्य क्या है किंतु काल की भांति मौन है। अपनी संस्कृति, सभ्यता एवम आस्था के सत्य पर पूर्ण आस्था रखने वाला कोई एक चाणक्य के समान होता है वो पूरी व्यवस्था में परिवर्तन करने की क्षमता रखता है और अन्य धृष्टराष्ट्र एवम संजय की भांति धर्म एवम सत्य की सुनने एवम सुनाने वाले होते है।

यह भी ज्वलंत प्रश्न है कि कुरुक्षेत्र में युद्ध अपने अपने धर्मो के महारथियों का था या सनातन सत्य का? क्या भीष्म, द्रोण, कृपा, शकुनि, कर्ण, पांडव - युधिष्टर, अर्जुन, भीम, धृष्टराष्ट्र, दुर्योधन एवम अन्य सभी ने अपने अपने स्थापित सत्य के अनुसार अपने अपने धर्म के युद्ध को नही लड़ा?

श्री कृष्ण को मानव और सारथी रूप में पुनः देखने के बाद अर्जुन क्या कहते है, हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.50।।

।। निजी धर्म और विराट स्वरूप दर्शन ।। विशेष - 11.50 ।।

यह मेरा निजी मत है अतः सत्य नहीं भी हो। किन्तु यदि हम किसी भी भावना से, ज्ञान से, परिस्थिति से, समय से या स्थान से कोई कदम उठा लेते है तो क्या उस पर अडिग रहना ही धर्म है। समय, स्थान, परिस्थितियां, भावना या ज्ञान परिवर्तनशील है। फिर धर्म के नियम क्यों नही? निर्णय वर्तमान के अनुसार होता है, भूतकाल दृष्टिकोण दे सकता है किन्तु वर्तमान नही हो सकता। भविष्य आप का आने वाला वर्तमान ही है। भगवान श्री कृष्ण को 64 कलाओं में निपुण बताया गया था, उन्होंने वर्तमान को ही जिया, इसलिये कभी किसी बंधन को स्वीकार नही किया, जो किया वो सनातन सत्य के धर्म के निष्काम कर्म के पालन के लिये किया।

युद्ध भूमि में गीता सनातन धर्म का उपदेश है, विराट स्वरूप सृष्टि से सृजन तक ब्रहमा-विष्णु - महेश का था। किंतु हम पूर्ण सत्य को स्वीकार नही कर सकते क्यों कि जो परमात्मा है वो जीव नही हो सकता। अर्जुन नर है और कृष्ण नारायण। अर्जुन नारायण नहीं हो सकता, इसलिये परमात्मा के विराट विश्वरूप से भयभीत है। उसे अपना ही प्राकृतिक

सत्य ही सही लगता है, भक्ति- समर्पण एवम अनन्य भाव से स्मरण। उस का अपना सत्य एवम धर्म है वो सौम्य रूप में ही विश्वरूप के आनन्दित हो सकता है।

महाभारत का युद्ध सब के द्वारा अपने अपने विचारधाराओं के धर्म की धारणा का युद्ध था। कोई भी सनातन संस्कृति के जीव के प्रकृति और ब्रह्म के संबंधों को आत्मशुद्धि से साथ नहीं समझता था।

भीष्म के लिये पितृभक्ति एवम उन की प्रतिज्ञा धर्म थी।

युधिष्टर के लिये द्यूत क्रीड़ा क्षत्रिय धर्म था।

द्रोण द्वारा राज परिवार को धन के बदले ज्ञान का धर्म था।

कर्ण के मित्रता एवम दान ही धर्म था।

अर्जुन के कृष्ण भक्ति ही उस का धर्म था

धृष्टराष्ट्र के लिए राज्य भोग एवम पुत्रमोह ही धर्म था।

शकुनि के लिये असहाय हो कर बदला लेने के लिये कुटिलता धर्म था।

द्रुपद के लिये अहम केलिए प्रतिशोध ही धर्म था।

भीम के लिए बदला लेने के लिये बर्बरता ही धर्म था। इस के लिये वह अपने भाइयों का रक्त तक पीने हो उपलब्धि समझता था।

दुर्योधन के राज्य का लोभ एवम ईर्षा ही उस का धर्म था।

कुंती के लिये लोक लाज के अपने पुत्र का त्याग ही धर्म था।

द्रोपदी के अहम एवम घमंड में अपवंचन बोल देना ही धर्म था।

विदुर ज्ञानी थे किंतु यह ज्ञान उस व्यक्ति के पास था, जिस के पास न सामर्थ्य था और न ही इतिहास रचने की क्षमता। उस ने उस दार्शनिक ज्ञान को ही अपना धर्म समझा।

यह सब लोग वही है जिन्होंने अपना अपना धर्म निश्चित कर लिया और उस के तले अपना विवेक, ज्ञान, आत्मा और मन को रख दिया। यही मतान्धनता, अंधविश्वास और कट्टरपन है। जिस पर आज सनातन धर्म को छोड़ कर सभी चल रहे है। आश्चर्य यह है कि ये सभी

ज्ञानी, विवेकशील और धर्म के रास्ते पर चलने वाले लोग है। व्यक्ति राग और द्वेष में धर्म की परिभाषा भी अपने अनुकूल कर लेता है।

यह वही लोग है जिन्हें हम महान ज्ञानी, उपदेशक भी कहते है किंतु अपने तथाकथित धर्म के प्रति इन की निष्ठा इतनी अधिक है कि किसी भी अनैतिक, अमान्य एवम अधर्म के कर्म में भी यह अपना धर्म नही छोड़ कर, धर्म के नाम पर अधर्म के साथ खड़े हो जाते है।

आज के युग के मुगल और अग्रेजो के साथ भारतीय लोगो से भारतीय लोगों ने ही युद्ध किये, फिर चाहे वह जलियावाला बाग ही क्यों न हो? कर्तव्य पालन में निहत्थे और शांति प्रिय लोगों को गोलियों से छलनी करते वक्त, सिपाही का कर्तव्य बढ़ा होता है या विवेक?

इसी प्रकार आज के युग मे हम अपनी अपनी सुविधा के अनुसार अपना अपना धर्म स्थापित कर लेते है। उस के बाहर सोचने, समझने और व्यवहार करने में कठनाई महसूस करते है। सत्य को जानने की चेष्टा तक नही कर पाते क्योंकि उस को जानने, समझने और देखने मे असुविधा महसूस होती है। गीता अध्ययन तक समझने की बजाए, रटने और नियमित पाठ करने और उस के अर्थ का पुस्तकीय विवेचन करने में ही अपने कर्तव्यधर्म को पूर्ण मानते है। जिस सनातन धर्म मे गीता जैसे अमूल्य ग्रन्थ की धरोहर हो उस धर्म मे स्वार्थ, मानसिक गुलामी, हीन भावना या आपसी सामंजस्य की कमी होना क्या इस बात का प्रतीक नही है। गीता का पाठ करने वाला अभ्यार्थी निर्भय, मोह से मुक्त, वीर, किसी भी परिस्थिति में भयभीत न होने वाला, धर्म के अनुसार आचरण करने वाला, अहिंसक शंका से रहित ज्ञानवान, शत्रु का नाश करने वाला, तटस्थ, निष्काम कर्मयोगी होता है। क्या हम गीता पाठ करने वाले इन गुणों से युक्त है। सहिष्णुता, उदारवादिता, अहिंसा, धर्मनिरपेक्षता आदि आदि धर्म के पाठ गीता में सही शब्दो मे व्याख्या किये गए है किंतु लोग आज भी स्वार्थ में इसे अपने अपने अर्थानुसार अपना धर्म का मार्ग बना रहे है।

बात राजनैतिक ही होगी किंतु यदि कोई अपनी आस्था को किसी पार्टी विशेष या व्यक्ति विशेष बनाता है तो उस के लिए वह सनातन सत्य को भी अपने स्वार्थ, अंधविश्वास या आस्था के अनुकूल बना लेता है, वह सनातन के सत्य स्वरूप को स्वीकार ही नही कर सकता। इसी कारण वह इतिहास को भूल कर उन लोगों के साथ खड़ा हो जाता है जिन्होंने भूतकाल में सनातन संस्कृति को खंड खंड करने का प्रयास किया था। वह धर्म का मार्ग छोड़ कर अन्याय करने वालों के साथ खड़ा हो कर सनातन संस्कृति को नष्ट करने के लिए भी तैयार हो जाता है। इसी लिए दुर्योधन के भीष्म, कर्ण या द्रोण कितने भी न्यायप्रिय और

योग्य हो, धर्म की रक्षा के लिए इन को भी समाप्त होना जरूरी है और वैसे ही आज राजनीति में भी चुनाव धर्म युद्ध ही है। जो इस धर्म के विरुद्ध है तो उस से कोई मोह, ममता या राग से संबंध नहीं रखते हुए, निष्काम और निस्वार्थ भाव से अपने मत के अधिकार का प्रयोग करना ही चाहिए।

500 वर्षो से अधिक समय भगवान राम सनातन आस्था के प्रतीक टेंट में रह रहे थे और जब उन का भव्य मंदिर बना तो उस पर विरोध करने वाले राजनीति करने से नहीं चूकते और उन के साथ वहीं लोग खड़े हो जाते है जो राम पर प्रश्न चिन्ह नहीं भी लगा पाए तो उस संस्कृति की रक्षा के लिए जो तत्पर है, उन पर प्रश्न चिन्ह लगाते है। यही तामसी स्वार्थ, राग - द्वेष और लोभ की राजनीति है। इसी कारण रावण, कंस, या अंग्रेज या मुगल के साथ देने वालो की कमी कभी भी कम नहीं हुई।

जब विचारधाराएं विपरीत हो जाए और प्रकृति में विकार बढ़ जाए तो महाभारत भी होता है और उस में निर्णायक कृष्ण ही होते है जो किसी अर्जुन को साथ ले कर अपने और पराए के भेद को मिटा कर, पुनः धर्म को स्थापित करते है।

भगवान श्री कृष्ण ने किसी भी नैतिक या शास्त्र की विचारधारा से अधिक महत्व निस्वार्थ लोकसंग्रह की कर्म को दिया। इसलिए जो लोग नैतिकता का दुहाई या धर्म धर्म चिल्लाते है, वे अक्सर लोकसंग्रह या जनकल्याण में निस्वार्थ की भावना के किए कर्म को नही समझते और धर्म की आड़ में अपने लोभ और स्वार्थ की पूर्ति में लगे रहते है।

कर्ण ने अर्जुन से युद्ध नियम से किया किंतु जब उस को निहत्था देख कर मारा जा रहा था तो उस ने धर्म और युद्ध के नियमो की बात की। तब भगवान ने उसे पूर्व में किए अधर्म के कार्य याद करवाए। अतः धर्म और नियम की बात उन्हे ही शोभा देती है जिन्होंने पूरा जीवन उस के अनुसार जिया हो, यह कोई मौका परस्ती की चादर नही है, जब चाहे ओढ़ ली और जब चाहे उतार दी और न ही यह कर्तव्य पालन में कमजोरी बने। जैसे हम पृथ्वीराज चौहान के द्वारा मोहम्मद गौरी को बार बार क्षमा करने के गलतियों में पाते है।

अतः धर्म अर्थात निजी धारणा या विचार पर दृढ़ रहना विवेक को खोने के समान है। सत्य का एक ही पहलू है जो ब्रह्मा जी सृष्टि की रचना के बाद कहा कि तुम इस सृष्टि के लिये कर्म करो, जो फल प्राप्त हो, उस मे उतने पर ही तुम्हारा हक है जो तुम्हारे जीवन व्यापन के लिये आवश्यक है, शेष पर प्रकृति का हक है, उसे प्रकृति के दायित्व को समझ कर दान कर दो। इस मे जितना तुम प्रकृति में दोगे, देवता उस से अधिक तुम्हे देंगे।

किस ने सोचा कि प्रकृति हम जीवन व्यापन के लिये,अन्न, जल औषधि और सभी वस्तुएँ देती है तो हम उस पर अपना हक किस प्रकार कर सकते है। दुर्योधन को सत्ता चाहिए, जिस पर उस का हक़ नही, धृतराष्ट्र को पुत्र मोह और पद चाहिये, किंतु वह भी शाश्वत नही, भीष्म को अपनी प्रतिज्ञा के पालन की चिंता है और कर्ण को मित्र धर्म की। अर्जुन स्वजनों के मोह में है। इन मे कोई भी सनातन धर्म या सत्य को नही जान पाया। यदि जान पाता तो युद्ध नही हो पाता।

समस्या यही है कि महाभारत काल से आज तक किसी ने भी ब्रह्मा जी कथन के अनुसार धर्म को नही समझा। सब ने अपने अपने धर्म के कीर्तिमान स्थापित किये जो उन की प्रतिष्ठा और सम्मान से जुड़े थे और है।

आज भी हर व्यक्ति अपने अपने धर्म पर चल रहा है। उसे ज्ञान या विवेक की आवश्यकता बांटने के लिये चाहिये और अपने लिये वह स्वार्थ और लोभ में ही जी रहा है। रज गुण निजी कर्म की लालसा का है तो तम गुण मादकता, आलस्य और काम, क्रोध, स्वार्थ, लोभ में किसी भी हद तक जाने का है।

आज भी धर्म मे कर्म कांड और मत को ले कर मतान्धनता ने मनुष्य को घेर लिया है। सभी अपने अपने मत को सत्य सिद्ध करने में लगे है। एक दूसरे से राग और द्वेष में रहते है। सृष्टि का यही पल ऐसा था जब इन सब को समाप्त होना चाहिए, इसलिये परब्रह्म ने महाकाल स्वरूप में सभी को नष्ट करते हुए अपने स्वरूप को अर्जुन को दिखलाया। आज भी यदि अर्जुन परमात्मा से विराट स्वरुप के दर्शन की अभिलाषा रखते तो उसे यही स्वरूप देखने को मिलता। विभिन्न राष्ट्रों द्वारा अपने प्रभुत्व की महत्वकांक्षा ने तीसरे विश्व युद्ध की संभावना को जगा रखा है। लोगों धर्म के नाम मे जेहाद कर रहे है। सभी राष्ट्र और लोग प्रकृति का दोहन ब्रह्मा जी के कथन की अवहेलना करते हुए स्वार्थ और लोभ में अधिक से अधिक कर रहे है।

सत्य यही है कि प्रकृति में कुछ भी स्थायी नही है, जो जन्म लेता है या जो उत्पन्न होगा, वह काल मे क्षय को प्राप्त होगा, वह कोई भी मत, विचार, धर्म, वस्तु, जीव या देवता ही क्यों न हो। सनातन सिर्फ परमात्मा है और वही सत्य है, इसलिये सृष्टि की रचना में जो ब्रह्मा जी कहा वही सत्य और धर्म है।

किन्तु आज भी धर्म और नियम भी ज्यादा से ज्यादा निजी, सभ्यता और संस्कृति का मापदंड विवेक और ज्ञान की बजाए भौतिकवाद का होता जा रहा है। धर्म और संस्कृति, सेवा, समर्पण, दान और कर्तव्य का अर्थ व्यापार और व्यावसायिक स्वरूप में प्रदर्शित हो रहा है। यही संस्कृति का स्वरूप महाभारत का वह काल था जिस के कारण इतना विशाल युद्ध के द्वारा परमात्मा ने पूरी संस्कृति को नष्ट कर के सनातन धर्म को स्थापित करने का कदम उठाया।

छाती ठोक कर भी यह कहने वाला भी मिल जाये कि वह इसे नही मानता तो यह उस का अज्ञान है क्योंकि वह स्वयम ही काल के वश में स्थायी नही है तो उस के मानने या न मानने का कोई अर्थ नही।

संजय द्वारा धृतराष्ट्र को यह संदेश अत्यंत सुंदर स्वरूप में देने के बाद भी धृतराष्ट्र पर कोई असर नही होता क्योंकि वह भी अपने धर्म के अनुसार पुत्र मोह से ग्रस्त है। यह बात गीता का अध्ययन करने वाले न जाने कितने लोगों पर भी सत्य सिद्ध होती है।

यदि यह सब लोग सनातन धर्म को समझते और अपने अपने धर्म की बजाए सनातन धर्म का पालन करते तो संभवतः यह युद्ध न होता। आज भी सभी अपने धर्म का पालन कर रहे है, सभी अपने को सत्य मान कर एक दूसरे से उलझ रहे है। इस कि समाप्ति ही सनातन धर्म की स्थापना है।

काल के गर्भ में क्या है, इसे कृष्ण ही जानते है। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष का सामंजस्य ही ज्ञान है। कृष्ण को अर्जुन की तलाश है, जिसे गीता जैसा ज्ञान पुनः दे सके। वह हम सब मे कोई भी हो सकता है।

।। हरि ॐ तत सत।। विशेष 11.50।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.51॥

अर्जुन उवाच
दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥

"arjuna uvāca,
dṛṣṭvedaṁ mānuṣaṁ rūpaṁ,

tava saumyaṁ janārdana..।
idānīm asmi saṁvṛttaḥ,
sa-cetāḥ prakṛtiṁ gataḥ"..।।

भावार्थ:

अर्जुन ने कहा - हे जनार्दन! आपके इस अत्यन्त सुन्दर मनुष्य रूप को देखकर अब मैं स्थिर चित्त हो गया हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो गया हूँ। (५१)

Meaning:

Arjuna said:

Seeing this, your pleasant human form, O Janaardana, I have now regained my composure, and attained my true nature.

Explanation:

The pleasing form of Shri Krishna is glorified in the Srimad Bhaagavatam repeatedly. The cowherdesses of Vrindaavan known as the gopis, elaborately praise this form in the tenth canto of the Bhaagavatam. They say: “Your beauty makes all three worlds auspicious. Even the cows, birds, trees and deer are enthralled when they see your beautiful form.” Arjuna, seeing the human form of Shri Krishna, regained his natural state, free from the fear and bewilderment resulting from the cosmic form.

Seeing Shree Krishna in his beautiful two- armed form reconfirmed and strengthened **Arjun’s sentiment of sakhya bhāv.** Thus, Arjun says he has regained his composure and is back to normal. Seeing Shree Krishna’s pastimes with the Pandavas, the celestial **sage Narad had earlier told Arjun’s elder brother, King Yudhishthir: gūḍhaṁ paraṁ brahma manuṣhya liṅgam (Bhāgavatam 7.15.75)[v25] “Shree Krishna resides in your house and lives with you just like your brother.”** Thus, Arjun was habituated to having the privilege of interacting with the Lord as a brother and friend.

We have come across the meaning of the term “Janaardana” earlier. “Arda” means one who moves, or makes others move. Jana means people, and therefore Janaardana means one who moves people to heaven or hell, in other words, dispenses justice to evildoers. Another meaning of Janaardana is one whom people ask for prosperity and well-being. By addressing Shri Krishna as Janaardana, a term he used to address Shri Krishna prior to knowing that he was Ishvara, Arjuna recalled the glory of his human form.

So far, we saw Arjuna request Shri Krishna for the cosmic form, Arjuna’s description of the cosmic form and his subsequent reaction to it, followed by a request to revert back to the human form. Now, Shri Krishna summarizes the teaching of this chapter in the the four shlokas that follow.

।। हिंदी समीक्षा ।।

श्री कृष्ण को पुनः सारथी मानव रूप में देख कर अर्जुन कहते है, हे जनार्दन, अब मैं अपने मित्र की आकृति में आप के इस प्रसन्नमुख सौम्य मानुष रूप को देख कर सचेता यानी प्रसन्न चित्त हुआ हूँ और अपनी प्रकृति को वास्तविक स्थिति को प्राप्त हो कर भय मुक्त हो गया हूँ।

श्रीकृष्ण के मनमोहक सुन्दर दो भुजाओं वाले रूप का दर्शन **अर्जुन के सख्य भाव** की पुनः पुष्टि और प्रबलता को व्यक्त करता है। इसलिए अर्जुन कहता है कि उसने अपना धैर्य पुनः प्राप्त कर लिया है और उसकी मनोदशा सामान्य हो गयी है। **पाण्डवों के साथ श्रीकृष्ण की लीलाओं को देखकर नारद मुनि पहले ही अर्जुन के ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को बता चुके थेः**

गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् (श्रीमद्भागवतम्-7.15.75)

"श्रीकृष्ण आपके घर में आपके साथ भ्राता के रूप में निवास करते हैं।" इसलिए अर्जुन सौभाग्यवश श्रीकृष्ण के साथ परस्पर भ्रातव्य और प्रिय सखा जैसा आचार व्यवहार करने का आदी था।

परमात्मा का कृष्ण के रूप के मानवीय स्वरूप बहुत ही सुंदर, मधुर और शांत है। कुछ लोग भ्रम से उन्हें अपने जैसा मनुष्य समझ कर व्यवहार करते है, तो यह उन का अज्ञान है।

देशकालातीत वस्तु को ग्रहण तथा अनुभव करने के लिए आवश्यक पूर्व तैयारी के अभाव के कारण अकस्मात् समष्टि के इतने विशाल विराट् रूप को देखकर स्वाभाविक है कि अर्जुन भय और मोह से ग्रस्त हो गया था। परन्तु यहाँ वह स्वीकार करता है कि भगवान् के शान्त, सौम्य मनुष्य रूप को देखकर उस के मन की व्यथा, भय और मोह भंग हो कर वह पुनः शान्तचित्त होकर अपने स्वभाव को प्राप्त हो गया है।

सत्य को उस के वास्तविक स्वरूप में जानने की कितनी भी उत्कंठा हो, किन्तु उसे देख पाना और स्वीकार करना सभी के वश में नही। हम अक्सर अज्ञान में अपने जीवन से संतुष्ट रहते है। ज्ञान को समझने या उस के अनुसार व्यवहार कर पाने की अपेक्षा जीवन मे जो भी सरल और सौम्य है, उसे स्वीकार करते है। शायद इसी कारण हमारे ऋषि मुनियों में समाजिक नियम, अचार-विचार और व्यवहार के नियम और पध्दतियां स्थापित की है, जो आज सनातन धर्म का प्रतीक हो गयी है।

इसलिए जब अर्जुन को अपना अहंकार-ममाकार वापस मिल गया तो स्वाभाविक रूप से वह भगवान की विश्वरूप सुंदरता से वंचित रह गया। बेशक उसके लिए यह सुंदरता नहीं बल्कि एक भयानक चीज़ है। अब वह कृष्ण को व्यक्तिगत भगवान के रूप में देखता है; अनेकरूप भक्ति से वह एकरूप भक्ति में वापस आता है।

इस से यह बात बहुत स्पष्ट है कि अनेकरूप भक्ति के लिए हम सभी के मन को परिपक्व होना पड़ेगा, अन्यथा अनेकरूप भक्ति भयावह होगी। उस में कोई आनंद नहीं आएगा। जब अनेकरूप भक्ति ही भयावह है, तो अरूप की तो बात ही क्या, अपरिपक्व मन को अरूपं ब्रह्म भी नहीं भाएगा। निर्गुणं ब्रह्म भी नहीं भाएगा। इसलिए जब मन अपरिपक्व है, अनेकरूप भक्ति भी नहीं भाएगी, अरूप भक्ति भी नहीं भाएगी, कोई बात नहीं, बेहतर है कि हम एकरूप तक ही सीमित रहें।

अतः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में हम जब तक परिपक्व नहीं होते, तब तक मोक्ष की बाते कितनी भी कर ले, किंतु मानसिक रूप से तैयार नहीं होते। हमारी सारी भक्ति प्रकृति से जुड़ी अहंकार और महत्व की होती है।

अर्जुन की कृतज्ञता का अनुमोदन करते हुए भगवान् क्या कहते है, हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 11.51।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.52॥

श्रीभगवानुवाच
सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः॥

"śrī-bhagavān uvāca,
su-durdarśam idaṁ rūpaṁ,
dṛṣṭavān asi yan mama..।
devā apy asya rūpasya,
nityaṁ darśana- kāṅkṣiṇaḥ"..।।

भावार्थ:

श्री भगवान ने कहा - मेरा जो चतुर्भज रूप तुमने देखा है, उसे देख पाना अत्यन्त दुर्लभ है देवता भी इस शाश्वत रूप के दर्शन की आकांक्षा करते रहते हैं। (५२)

Meaning:

Shree Bhagavaan said:

It is extremely rare (for anyone) to see that form of mine that you have just seen. Even the gods eternally long to see this form.

Explanation:

Having shown Arjun the cosmic form, and having praised it as being unavailable to anyone but him, Shree Krishna does not want him to slacken his love for the personal form of God. Hence, Shree Krishna says that the way in which Arjun sees God is exceedingly rare. He emphasizes that even the celestial gods yearn to realize God in his two-armed personal form as he is standing before Arjun. This is not possible by any amount of Vedic studies, austerities, or fire sacrifices.

The Gita uses a lot of the Katha Upanishad for its teachings. In that Upanishad, the young boy Nachiketa approaches the lord of death Yama for spiritual instruction. His most powerful question to Yama is what happens to the soul after death. Yama tries to distract Nachiketa with boons of wealth and power but fails. Eventually he responds: “Nachikata, even the gods are even anxious to know the answer to this question and have never been able to figure this out”.

The same language is used by Shri Krishna in this shloka. He says that the gods have desired to see Ishvara’s cosmic form since eternity but have not been able to do so. It is “sudurdarsham”, extremely difficult and rare to see, it is next to impossible. They may have seen Lord Naarayana in his four-armed form, but not the universal cosmic vision seen by Arjuna. And they will probably not see it in their lifetime.

Why is it the case the the gods cannot see this vision? Let’s investigate the nature of gods. They may be more powerful than humans, but they are subject to the three gunaas like every other aspect of creation. Which means that they also are impelled by selfish desires. Even Indra, the king of the gods, starts plotting to remove anyone who has an eye on his throne. So, what Shri Krishna means here is that humans, gods, demons, anyone who is part of this creation, will never get to see this cosmic form unless they have a specific quality. Shri Krishna will give a detailed answer to this question soon.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन द्वारा चतुर्भुज स्वरूप देखने एवम पुनः द्विभुज रूप कृष्ण को देखने से जो संतोष व्यक्त किया गया वो पर्याप्त नहीं था। अतः भगवान द्वारा अपने विराट स्वरूप दर्शन एवम चतुर्भुज व द्विभुज रूप में उस के साथ को स्पष्ट करना जरूरी था।

अर्जुन को अपना विराटरूप दिखाने और उसकी सराहना करने के पश्चात तथा उसका दर्शन अन्यों के लिए दुर्लभ बताते हुए अब श्रीकृष्ण अपने साकार भगवान वाले रूप के लिए अर्जुन

के सखा भाव के प्रेम को कम नहीं करना चाहते। वे इस पर बल देते हुए कहते हैं कि स्वर्ग के देवता भी भगवान को उनके दो भुजा वाले उस साकार रूप में देखना चाहते हैं जिस रूप में वे अर्जुन के समक्ष खड़े हैं।

इसलिये श्रीकृष्ण कहते है मेरे जिस रूप को तूने दिव्य दृष्टि से देखा है, वह बड़ा दुर्दर्श है अर्थात् जिसका दर्शन बड़ी कठिनतासे होता है। देवता लोग भी मेरे इस रूप का दर्शन करने की सदा इच्छा करते हैं। अभिप्राय यह है कि दर्शन की इच्छा करते हुए भी उन्होंने तेरी भाँति (मेरा रूप) देखा नहीं है और देखेंगे भी नहीं।

समस्त सृष्टि का रचियता परमात्मा ही है, अतः मनुष्य, देव, गंधर्व, राक्षस, यक्ष, पितर, किन्नर आदि उस की रचना के ही हिस्सा है, जिस में यम से ले कर ब्रह्मा तक सभी आते है। जो इस सृष्टि का हिस्सा है वो सब माया द्वारा प्रकृति के त्रियामी गुणों से बंधे है इसलिये अपने कर्मो के फलों के भोगते है या प्रकृति के नियमो के नियामक है। उन्हें परमात्मा के दर्शन परमात्मा की इच्छा पर ही निर्भर है।

श्री कृष्ण द्वारा अपने विराट रूप दर्शन को अर्जुन द्वारा भय के कारण सामान्य न समझे एवम उसे भुलाने की चेष्टा न करे, इसलिये उस का महत्व प्रकट करना आवश्यक था।

व्यवहार में गीता जैसा महान ग्रन्थ युद्ध भूमि में श्रुति द्वारा अर्जुन को दिया अत्यंत दुर्लभ उपदेश है। जब तक परमात्मा की असीम कृपा न हो, इस का पाठ करने से ज्ञान नही होता। इस के ज्ञान के ऋषि - मुनि वर्षो तप करते रहते है। यदि आज यह किसी को उपलब्ध हो जाये तो यह केवल परमात्मा के अनुग्रह से प्राप्त है। इस को सरल समझना या चितंन- मनन द्वारा न समझना मूर्खता का ही परिचय देना है।

कृष्ण अर्जुन के सखा थे, अर्जुन का उन पर अपार विश्वास था, इसलिये युद्ध भूमि में कृष्ण की अपार नारायणी सेना को त्याग कर उस ने निहत्थे कृष्ण को चुना।कृष्ण भी अर्जुन से प्रेम रखते थे, इसलिये देवताओ को भी दुर्लभ चतुर्भुज स्वरूप और विराट विश्वरूप दर्शन उस को दिए।

आज के युग में गीता की मीमांसा और दुनिया की लगभग सभी भाषाओं में अनुवाद उपलब्ध है। किंतु प्रकृति के तीनों गुणों में फसा जीव गीता का अध्ययन तभी कर सकता है जब इस की प्रेरणा अंदर से उत्पन्न हो अन्यथा वह कल कल करता हुआ अपने सांसारिक नित्य कर्म करता रहता है। अतः जब वेदों और उपनिषदों का संपूर्ण ज्ञान उपलब्ध हो तो भी जीव की

मोह और ममता महामाया के कारण कम नहीं होती तो इस का कारण ईश्वर की कृपा के लिए उस के अंदर श्रद्धा, प्रेम और भक्ति नही है।

आगे इस रूप के महत्व में श्री कृष्ण क्या कहते है एवम क्यों अर्जुन को यह रूप देखने को मिला, हम पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.52।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.53॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्ट्वानसि मां यथा॥

"nāhaṁ vedair na tapasā,
na dānena na cejyayā..।
śakya evaṁ-vidho draṣṭuṁ,
dṛṣṭavān asi māṁ yathā"..।।

भावार्थ:

मेरे इस चतुर्भुज रूप को जिसको तेरे द्वारा देखा गया है इस रूप को न वेदों के अध्यन से, न तपस्या से, न दान से और न यज्ञ से ही देखा जाना संभव है। (५३)

Meaning:

Not through the Vedas, penance, charity, nor through worship can I be seen, in the manner in which you have seen me.

Explanation:

In this shloka, Shri Krishna lists tools that help us lead a fruitful life. First, he lists the Vedas, which refer to material and spiritual teachings, give us knowledge to lead a purposeful and ethical life. By encouraging action in life's early stages, then emphasizing renunciation in the later stages, they get us from harbouring selfish desires to desirelessness. Austerity and

charity further reduce our ego, and penance strengthens us internally and externally. Worship invokes Ishvara's grace and blessings.

However, Shri Krishna reminds us that none of these methods will give us attainment of Ishvara as their result. This point is of such importance that he brings it up for the second time in the same chapter.This is not possible by any amount of Vedic studies, austerities, or fire sacrifices. The basic spiritual principle is that God cannot be known by the strength of one's efforts. However, those who engage in devotion to him become recipients of his grace. Then, by virtue of his grace, they are easily able to know him. **The Muṇḍakopaniṣhad states:**

nāyamātmā pravachanena labhyo na medhayā na bahunā śhrutena (3.2.3)[v26]

"God cannot be known either by spiritual discourses or through the intellect; nor can he be known by hearing various kinds of teachings." If none of these means can help realize God in his personal form, then how can he be seen in this manner? He now reveals the secret.

Each of the means outlined above have their own results which are valid in life's various stages, but they can only purify us, not give us Ishvara directly. If we don't understand this, we are like the child who wants to go to a dentist not to take care of a tooth issue, but to get the lollipop at the end of the visit.

Attainment of Ishvara is purely in the hands of Ishvara himself, as we saw earlier. It is his choice as to whom he will bestow his grace upon. But so far, Shri Krishna himself has described that there is no bias in the way he has set up the machinery of the universe. This leads us to believe that Ishvara will not arbitrarily bestow his grace upon anyone randomly. There has to be a logic to it. Shri Krishna reveals this answer next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

परमात्मा परम् तत्व है तो उस के बराबर या उस से ऊपर कुछ भी नही। बाजार के नियम से यदि कोई वस्तु खरीदने जाए तो वस्तु के वास्तविक मूल्य से कुछ अधिक दाम देने से वह आप को मिल सकती है अर्थात जो आप के पास है वह उस मूल्य का नहीं है जिसे दे कर आप ने खरीदा है क्योंकि उस मे बेचने वाले का लाभ एवम कर जुड़ा होगा। किसी को प्राप्त करने के लिये उस के वास्तविक मूल्य से अधिक व्यय करने पर ही वह वस्तु आप को प्राप्त हो सकती है। इसी तरह अनेक वेदों का अध्ययन करने पर, बहुत बड़ी तपस्या करनेपर, बहुत बड़ा दान देने पर तथा बहुत बड़ा यज्ञ-अनुष्ठान करने पर भगवान् मिल जायँगे--ऐसी बात नहीं है। कितनी ही महान् क्रिया क्यों न हो, कितनी ही योग्यता सम्पन्न क्यों न की जाय, उसके द्वारा भगवान् खरीदे नहीं जा सकते। वे सब-के-सब मिलकर भी भगवत्प्राप्ति का मूल्य नहीं हो सकते। उनके द्वारा भगवान् पर अधिकार नहीं जमाया जा सकता।

आध्यात्मिकता का मुख्य सिद्धान्त यह है कि भगवान को हम अपने प्रयत्नों या सामर्थ्य द्वारा नहीं जान सकते किन्तु जो भगवान की भक्ति में तल्लीन है ऐसे भक्त उनकी कृपा से उन्हें जानने की पात्रता प्राप्त कर लेते हैं तब उनकी कृपा से वे उन्हें सुगमता से देखने में समर्थ हो जाते हैं। **मुंडकोपनिषद् में वर्णन है;**

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेध्या न बहुना श्रुतेना।(मुंडकोपनिषद्-3.2.3)

"भगवान को आध्यात्मिक प्रवचनों या बुद्धि द्वारा जाना नहीं जा सकता। उसे विभिन्न प्रकार के उपदेशों को सुनकर भी नहीं जाना जा सकता"।

सांसारिक चीजों में तो अधिक योग्यतावाला कम योग्यतावाले पर आधिपत्य कर सकता है, अधिक बुद्धिमान् कम बुद्धिवालों पर अपना रोब जमा सकता है, अधिक धनवान् निर्धनों पर अपनी अधिकता प्रकट कर सकता है; परन्तु भगवान् किसी बल, बुद्धि, योग्यता, व्यक्ति, वस्तु आदि से खरीदे नहीं जा सकते। कारण कि जिस भगवान् के संकल्प मात्र से तत्काल अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना हो जाती है, उसे एक ब्रह्माण्ड के भी किसी अंश में रहनेवाले किसी वस्तु, व्यक्ति आदि से कैसे खरीदा जा सकता है?

इस बात को भी हमे ध्यान में रखना होगा कि कर्म करने पर अधिकार सिर्फ मृत्यु लोक अर्थात पृथ्वी पर ही है, अन्य लोक में मृत्यु लोक में किये गए कर्मो को भोगने के लिये

जाते है। इस का अर्थ और अधिक स्पष्ट करें तो कर्म को करना ही है क्योंकि वह नियति तय करती है किंतु वह किस प्रकार करे, यह जीव पर निर्भर है कि वह उस कर्म में बंधन को स्वीकार कर के अहम भाव से करे या समर्पित भाव से निष्काम हो कर करें।

परमात्मा कहते है कि जिस प्रकार मुझे तूने देखा है ऐसे पहले दिखलाये हुए रूपवाला मैं न तो ऋक्, यजु, साम और अथर्व आदि चारों वेदोंसे, न चान्द्रायण आदि उग्र तपों से, न गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदिके दान से और न यजन से ही देखा जा सकता हूँ अर्थात् यज्ञ या पूजा से भी मैं (इस प्रकार) नहीं देखा जा सकता।

परमात्मा परम् तत्व में सब से अधिक अमूल्य है, भगवान् के इस विश्वरूप का दर्शन मिलना किसी के लिए भी सुलभ नहीं है। विराट विश्वरूप को और भी दुर्लभ है। यहाँ तक कि स्वर्ग के निवासी देवतागण भी अपनी विशाल बुद्धि, दीर्घ जीवन और कठिन साधना के द्वारा भी इस रूप को नहीं देख पाते और सदा उसके लिए लालायित रहते हैं। ऐसा होने पर भी भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने इस विराट् और आश्चर्यमय रूप को अपने मित्र अर्जुन को केवल अनुग्रह करके दर्शाया जैसा कि स्वयं उन्होंने ही स्वीकार किया था।

हम इस बात पर आश्चर्य़ करेंगे कि किस कारण से भगवान् अपनी कृपा की वर्षा किसी एक व्यक्ति पर तो करते हैं और अन्य पर नहीं निश्चय ही यह एक सर्वशक्तिमान् द्वारा किया गया आकस्मिक वितरण नहीं हो सकता, जो स्वच्छन्दतापूर्वक, निरंकुश होकर बिना किसी नियम या कारण के कार्य करता रहता हो क्योंकि उस स्थिति में भगवान् पक्षपात तथा निरंकुशता के दोषी कहे जायेंगे। जो कि उपयुक्त नहीं है।

भगवान कृष्ण जिस साधन का उल्लेख करना चाहते हैं वह है भक्ति। तो उत्सुकता, एक सच्ची इच्छा या लालसा, जिसे तीव्र भक्ति कहा जाता है। वह विश्व रूप दर्शन के लिए साधना है और कृष्ण इस तीव्र भक्ति का महिमामंडन करना चाहते हैं और शास्त्रों में एक साधना का महिमामंडन करने के लिए, उन्होंने अन्य सभी साधनाओं को नीचे रख दिया। लेकिन हमें बहुत सावधान रहना चाहिए, ऐसा नहीं है कि अन्य साधनाएँ निम्न हैं; वे सभी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं और अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। लेकिन एक साधना पर ध्यान केंद्रित करें, अन्य साधनाएँ निन्दित हैं और उस न्याय को क्या कहा जाता है, न निंदा न्याय; इसलिए शाब्दिक रूप से यह नीचे लाना नहीं है, लेकिन इस पर ध्यान केंद्रित करना है।

और इसलिए इस श्लोक में, कृष्ण कह रहे हैं कि अन्य सभी साधनाएँ निम्न हैं; बिल्कुल भी महत्वहीन हैं; भक्ति ही सबसे महत्वपूर्ण साधना है। क्योंकि जब तक जीव में परमात्मा के

प्रति समर्पण, श्रद्धा, प्रेम और विश्वास न हो तो ज्ञान या कर्म में उच्चतम स्थान अहंकार को जन्म देता है। प्रकृति के तीन गुणों से मुक्त होना मोक्ष है, यह तभी संभव है जब जीव प्रकृति के अहंकार और महंत से मुक्त हो कर परम पिता परमेश्वर की शरण ले और अपने सभी कर्म उस को समर्पित करते हुए करे। इसलिए ज्ञान योग या कर्म योग बिना अहम को त्यागे, निम्न कोटि का है।

श्लोक में इसका युक्तियुक्त स्पष्टीकरण किया गया है कि किस कारण से बाध्य होकर भगवान् अपनी विशेष कृपा की वर्षा कभी किसी व्यक्ति पर करते हैं, और सदा सब के ऊपर नहीं। अगर इन प्रचलित साधनों द्वारा भगवान के साकार रूप को जाना नहीं जा सकता तब फिर कैसे उन्हें इस रूप में देखा जा सकता है। अब आगे श्रीकृष्ण इसका रहस्योद्घाटन करेंगे।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.53।।

।। निज धर्म और मर्यादा ।। विशेष - गीता 11.53 ।।

पूर्व में एक निजी मत रखा था, उसी संदर्भ में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की कविताओं को सुन रहा था जो यूट्यूब में रश्मिरथी में श्रृंखला बद्ध में है।

यदि सभी अपने अपने सीमित धर्मो का पालन कर रहे थे तो प्रश्न यह आता है कि भीष्म ने प्रतिज्ञा में हस्तिनापुर की रक्षा करते हुए, अपने की प्राण हरण की विधि बता कर प्रतिज्ञा के साथ अन्याय नही किया। उन्हें स्वैच्छा से मृत्यु का वरदान था तो उन्होंने क्यों मृत्यु का मार्ग चुना।

कर्ण ने मित्र धर्म को निभाते हुए भी अपना कर्ण कुंडल एवम कवच का दान दिया एवम चार पांडव को भी युद्ध मे जीवन दान दिया। अर्जुन को भी एक बार हरा कर युद्ध के नियमो में छोड़ दिया। उस ने भी अपनी मृत्यु का स्वेच्छा से वरण किया।

द्रोण हस्तिनापुर के साथ बंधे रहने के बावजूद युद्ध भूमि में अपने पुत्र की मृत्यु के समाचार को सहन नही कर सके एवम सेनापति होते हुए भी हथियार डाल दिये।

पांडव लड़ तो धर्म युद्ध रहे थे किंतु लगभग सभी कौरव वीरों को युद्ध के नियमो के विरुद्ध जा कर मारा। क्यों धर्म युद्ध का उद्देश्य सिर्फ युद्ध जितना ही है।

कृष्ण स्वयं परमात्मा होते हुए भी अपने मे विश्वास रखने वाले कर्ण, दुर्योधन आदि को पांडव के हित में राजनीति में गलत सलाह देते रहे।

धर्मयुद्ध जीत कर भी पांडव उस गौरव प्राप्त न कर सके और जिसे भीष्म, कर्ण, बर्बरीक आदि हार कर भी उन से अधिक प्राप्त किया। उन से अनुचित कार्य उन की मर्यादा में रहने से हो गया, हो सकता है किंतु निजी स्वार्थ में इन लोगो ने कोई अनुचित कार्य नहीं किया।

हम धर्म को कैसे परिभाषित कर सकते है, किस के चरित्र को ले कर हम कह सकते है यह धर्म से युक्त है, सनातन है। धर्म को परिभाषित करने के लिये भी हमे कृष्ण के समान परमात्मा ही चाहिए। अतः हम जिस भी मर्यादा या नियम का पालन करे वह सात्विक, जनहित में, निस्वार्थ होनी चाहिये। हमारा हमारे वर्ण के अनुसार किया प्रत्येक कर्तव्य कर्म ही हमारा धर्म है।

जब कोई व्यक्ति किसी मर्यादा का पालन जनहित या निस्वार्थ भाव मे सात्विक गुण के साथ करता है, तो वह मर्यादा उस के व्यक्तित्व का आयाम हो जाती है, इस जगत में रहने वाले सात्विक मर्यादाओं को सम्मान देते है। इसलिये मातृभूमि, स्त्री एवम निर्बल की रक्षा, आपातकाल में अपना सर्वशः दान करना, सत्य बोलना, किसी की रक्षा हेतु अपना बलिदान देना आदि ऐसे गुण या मर्यादाएं है जिन से कोई भी व्यक्ति यदि इन मर्यादाओं का पालन करते हुए प्राण भी दे दे तो भी जगत में वह आम जनमानस पर अपनी छाप अनगिनत काल तक छोड़ देता है। फिर चाहे व्यवसाय ही क्यों न हो, वह भी हमारा धर्म बन जायेगा। व्यापार में अपनी बात की मर्यादा और धोखा घड़ी नही करने वालों को पूरा व्यापारी वर्ग सम्मान भी देता है और याद भी रखता है, भले ही उस ने धन नहीं कमाया हो, किंतु उस नाम धन कमाने वाले से अधिक होता है। उदाहरण में टाटा ग्रुप को लोग अडानी या अंबानी ग्रुप से अधिक सम्मान जनित मानते है।

यही कारण है कि भीष्म, कर्ण आदि युद्ध न भी जीत सके, अधर्म व्यक्ति के पक्ष में युद्ध भी किये किन्तु अपनी योग्यता, मर्यादा के कारण जगत में पांडव से अधिक प्रसिद्धि को प्राप्त हुए।

अपनी प्रतिज्ञा, नियम और धर्म के अतिशय पालन भी अपने आप मे एक कमजोरी है, कर्ण की दान के नियम ने उस के कवच कुंडल छीन लिए। राजा बलि को वामन अवतार में उस के दान की प्रवृति के कारण भगवान विष्णु ने ठगा। पृथ्वी राज चौहान द्वारा निहत्थे हारे हुए शत्रु को अभय प्रदान करना, उस के लिये प्राण, राज खोने का कारण बना। यदि हम भगवान श्री कृष्ण का जीवन चरित्र पढ़े, तो हमे ज्ञात होगा, निष्काम कर्मभूमि में कर्म करते हुए, उन्होंने किसी भी प्रतिज्ञा या मर्यादा को अपनी कमजोरी नही बनने दिया। युद्ध भूमि में भीष्म के विरुद्ध हथियार उठा कर, उन्होंने प्रतिज्ञा भंग की। अतः निष्काम कर्मयोग में लोकसंग्रह एवम ब्रह्मा जी द्वारा बताए सनातन धर्म का पालन करना ही श्रेष्ठ धर्म है। अन्य मर्यादा या प्रतिज्ञा हमारे चरित्र या प्रसिद्धि को अवश्य प्रदान कर सकते है, किन्तु लोकसंग्रह के कर्तव्य पालन को पूर्ण करने में बाधक हो सकते है।

इसलिये जो पूर्ण सनातन धर्म का पालन भी नही कर सकते, यदि वह सात्विक मर्यादाओं में जीवन व्यापन करते है और जिन का जीवन जनहित को समर्पित होता है, वह निष्काम कर्मयोगी भी अपने अच्छे कर्मों के कारण संसार मे पूजा जाता है। गुरु तेगबहादुर जी बलिदान, शिवा जी, महाराणा प्रताप , Dr होमी जहांगीर भाभा आदि हमे कई नाम मिल जायेंगे, जिन को संसार उन की उपलब्धियों और त्याग के लिये याद करता है। किन्तु कर्तव्य पालन के धर्म मे सनातन धर्म ही श्रेष्ठ है।

हम यदि त्रेतायुग में राम एवम रावण के समय पर विचार करे तो हम पाएंगे कि राम ने एक मर्यादित जीवन जिया, वह स्वयं एवम अपने सभी निकट लोगो के साथ पूर्णता मर्यादित रहे। इस लिये रावण ज्ञानी, शक्तिशाली एवम नीतिवान होते हुए भी राम के समक्ष टिक नही सका।

पुराने चलचित्रों में चरित्र को विशेष महत्व दे कर सद्चरित्र, अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाले, असत्य या मिथ्या भाषी न होना नायक की पहचान थी। किन्तु आज के युग मे चरित्र, कर्म, वाक किसी का न महत्व न हो कर नायक उसे बना दिया जो निर्धन और गरीब को सहायता दे। धन किसी भी स्रोत से आये, प्राप्त करने वाला पात्र हो या न हो, उस का उपयोग क्या होगा, इस कि कोई विवेचना नही। यह समाज का अवमूल्यन नही तो क्या है। महाभारत में अधर्म में दुर्योधन के साथ जिन भी महापराक्रमी लोगो ने साथ दिया, उन्हें कभी नायक नही बनाया गया। रामायण में भी रावण के साथ कितने भी सद्चरित्र योद्धा हो, उन्हें नायक नही बनाया गया।

महाभारत में ब्राह्मण और व्याध का संवाद है जिस में व्याध पहले बहुत से अध्यात्म ज्ञान देता है, फिर कहता है, ' हे द्विजवर ! मेरा जो प्रत्यक्ष धर्म है, उसे देखो । इस के बाद उस ने ब्राह्मण का परिचय अपने वृद्ध माता-पिता से कराया और कहा, यही मेरे प्रत्यक्ष देवता है और मनोभाव से इन की ईश्वर के समान सेवा करना ही मेरा प्रत्यक्ष धर्म है।

अतः व्यक्तिगत मर्यादा और कर्तव्य पालन का धर्म और ब्रह्मा जी द्वारा बताए हुए सनातन धर्म के अंतर को भली भांति समझा जा सकता है।

राम ने जिस मर्यादा की स्थापना त्रेतायुग में की थी वो भगवान कृष्ण जी ने द्वापर में खत्म कर दी। यही कारण के राम आज भी जिस आदर्श एवम आत्मिक सम्मान के साथ जन जन के मानस में है, उस के विपरीत भगवान श्री कृष्ण को राजनीतिज्ञ के रूप पूजा जाता है। भगवान श्री कृष्ण और राम एक ही परमात्मा के दो रूप है। किन्तु सामाजिक आचरण की दृष्टि से लोग भगवान राम के चरित्र को भगवान श्री कृष्ण के चरित्र की अपेक्षा अधिक महत्व देते है।

समाज में लोकसंग्रह या लोक कल्याण के लिए भी यदि कोई विपरीत मार्ग में जाने की चेष्टा करता है तो उस को पहले अपना चरित्र भगवान श्री कृष्ण जैसे निष्पक्ष, निष्काम, निस्वार्थ और तपस्वी सा बनाना होगा अन्यथा विपरीत मार्ग में कब जीव योगभ्रष्ट हो जाए, कोई नही जानता। उस को अपने अहम को त्याग कर अपनी कोई छवि या मर्यादा नही बनानी होगी, क्योंकि विरोध में अनेक बाधाए और अपमान भी सहने होते है। जो मर्यादित होते है वे कर्ण, भीष्म या द्रोण तो हो सकते है किंतु भगवान श्री कृष्ण नहीं।

गीता में अर्जुन को भगवान ने अपने स्वरूप के दर्शन के साथ स्पष्ट कर दिया कि जिस विराट स्वरूप के दर्शन उस ने देखे है उस का एक मात्र कारण अर्जुन का समर्पण भाव है। यह वेद शास्त्रो के अध्ययन, यज्ञ और दान से नही मिलता, इस को प्राप्त करने के भगवान के प्रति अहम त्याग कर समर्पण करना पड़ता है। ज्ञान, साहस, योग्यता और मर्यादा में द्रोण, भीष्म और कर्ण अर्जुन से आगे थे, किन्तु यह सभी अपने अपने अहम से बंधे थे, इसलिये जब तक मैं और तू है, परमात्मा के दर्शन नही हो सकते। उसे पाने के लिए मैं को त्याग कर सिर्फ तू होना पड़ता है।

पूर्व में लिखा था कि कृष्ण को अर्जुन की तलाश है, क्योंकि गीता को पढ़ने वाले अक्सर कृष्ण बन जाते है और गीता की उपदेशों का प्रचार और प्रसार करते है। अर्जुन बन कर गीता के उपदेश को आत्मसात करने और अनुसरण करने वाले कदाचित ही मिलते है। महृषि

व्यास जी गीता किसी को पढ़ कर सुनाने के लिये या उस के श्लोक याद कर के बोलने के नही लिखी, उन्होंने इसे आत्मसात करने, जीवन मे इस को अपनाने एवम इस के अनुसार निष्काम कर्म करने के लिये लिखी। किंतु वे कृष्ण भी पूरे कहा बन सकते है क्योंकि वे प्रकृति से बंध कर सकाम, राग - द्वेष, लोभ और स्वार्थ एवम मोह और ममता से बंधे ज्ञानी होते है, यह स्थिति को हम ने प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्याय में अर्जुन द्वारा शास्त्रों और अपनी कमजोरी को सही सिद्ध करते समय पढ़ी थी।

गीता अर्जुन का ग्रन्थ है, अर्जुन ही उस के योग्य पात्र है, इसलिये भगवान का विराट विश्वरूप दर्शन, चतुर्भुज दर्शन और दो भुजाओं में मानवीय स्वरूप में उस के सारथी का दर्शन उस को ही प्राप्त हुआ जो किसी भी वेद के अध्ययन, ध्यान यज्ञ और दान आदि से प्राप्त नही हो सकता है। अर्जुन बनो- कृष्ण स्वयम तुम्हे खोज लेंगे, गीता का संदेश भी देंगे और तुम भी विराट स्वरूप के दर्शन कर पाओगे। कृष्ण बन कर गीता का पाठ यदि करते भी रहे या जन जन को सुनाते या पढ़ाते भी रहे तो दर्शन का लाभ नही मिल सकता। वेद, शास्त्रो अध्ययन और यज्ञ कर्मो को अनुगामी होकर करो। भक्त का स्थान भगवान से बड़ा हो जाता है जब भक्त श्रद्धा, प्रेम और विश्वास से भगवान को समर्पित हो जाता है। गीता निष्काम भाव से कर्मयोग में भक्ति मार्ग का अनुमोदन करती है, जिसे हम अब आगे पढ़ेंगे।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष गीता - 11.53 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.54॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥

"bhaktyā tv ananyayā śakya
aham evaṁ-vidho 'rjuna
jñātuṁ draṣṭuṁ ca tattvena
praveṣṭuṁ ca parantapa"

भावार्थ:

हे परन्तप अर्जुन! केवल अनन्य भक्ति के द्वारा ही मेरा साक्षात दर्शन किया जा सकता है, वास्तविक स्वरूप को जाना जा सकता है और इसी विधि से मुझमें प्रवेश भी पाया जा सकता है। (५४)

Meaning:

But, by single-pointed devotion, I am accessible, O Arjuna. In this manner, as my essence, I can be known, seen, and merged into, O scorcher of foes.

Explanation:

In 7th chapter of the Gītā; where we have talked about four levels of bhakthi; ārtaḥ; artarthi; jijñāsuḥ; and jñāni; which can be reduced into three levels; So, this four levels can be understood in three levels; ārtaḥ and ārtharthi is one level; jijñāsu is another level; jñāni is the third and final level. So, Krishna adds an adjective ananya bhaktya ēvaṃ draṣṭum sakya; not ordinary bhakthi but ananya bhakthiḥ.

So finally, Shri Krishna reveals the means by which we can access Ishvara's cosmic form. It cannot be through any action such as rituals, study of the Vedas and so on since all of these methods are in the realm of space and time. "Ananya bhakti", or single- pointed devotion is the only means to access Ishvara. We have come across the term "ananya" in prior chapters. It means that in which there is no "anya", no other. We should not be devoted to Ishvara so that we can get something else. The devotion should be for obtaining Ishvara and nothing else.

Shree Krishna emphatically declares that his two-armed form as he is standing before Arjun can only be realized through bhakti. This has been repeatedly stated in the Vedic scriptures:

"Devotion alone will unite us with God; devotion alone will help us see him; devotion alone will help us attain him; God is enslaved by true devotion, which is the best of all paths."

"Uddhav, I come under the control of my devotees and am won over by them. But those who do not engage in devotion can never attain me by

practicing aṣhṭāṅg yog, studying Sānkhya and other philosophies, performing pious acts and austerities, or cultivating renunciation."

"I am only attained through bhakti. Those who engage in my bhakti with faith are very dear to me."

"Without devotion, one can never attain God, no matter how much one endeavors through the practice of aṣhṭāṅg yog, austerities, knowledge, and detachment."

We see this principle in our daily life as well. You have two friends, one who always comes to you when he needs something from you, not otherwise. Another friend comes to you just to know how you are doing, without any ulterior motive or hidden agenda. We would always prefer to deal with the second friend and say to him "my house is your house, don't behave like a stranger, take what you want". Similarly, when we ask something materialistic from Ishvara, we treat him as different from us. Ishvara does not like this. When we want only Ishvara, we do not treat him as different from us. This is the crux of single-pointed devotion.

In the second half of the shloka, Shri Krishna outlines the process of attaining Ishvara. First, we have to know what Ishvara is, discarding all our prior notions. We have to know him as "tattvena", in his essence, as pervading the entire world, not as someone hiding up in the sky somewhere. When we gain this knowledge and reflect upon it constantly, we begin to see Ishvara in everything, and everything as Ishvara. But the last step, of not seeing Ishvara from the outside, but of totally merging into Ishvara, can only happen through single- pointed devotion. Arjuna came to know Ishvara through Shri Krishna's teaching, and he also saw Ishvara's cosmic form. But he did not fully merge into it, he was standing out of it.

In this manner, Shri Krishna slowly brings up the topic of the next chapter, which is the yoga of bhakti or devotion. He summarizes this chapter in the next and last shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

गीता के सातवें अध्याय में, जहाँ हमने भक्ति के चार स्तरों के बारे में बात की है; आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी। जिन्हें तीन स्तरों में घटाया जा सकता है, तो इन चार स्तरों को तीन स्तरों में समझा जा सकता है। आर्त और अर्थार्थी एक स्तर है, जिज्ञासु दूसरा स्तर है और ज्ञानी तीसरा और अंतिम स्तर है। इसलिए कृष्ण एक विशेषण जोड़ते हैं अनन्या भक्त्या एवं द्रष्टुम साक्य; साधारण भक्ति नहीं बल्कि अनन्या भक्ति:।

यह एक ऐसी भक्ति है जिसमें भगवान न तो साधन हैं और न ही साध्य। फिर भगवान क्या है, यह न तो साधना है और न ही साध्य; बल्कि यह मैं ही सिद्ध वस्तु हूँ। क्योंकि जब तक मैं भगवान को साधन या साध्य के रूप में देखता हूँ, तब तक भगवान मुझ से भिन्न हैं। इसलिए जब मैं भगवान को साधना के रूप में देखता हूँ तो मैं द्वैत में हूँ। जब मैं भगवान को लक्ष्य के रूप में देखता हूँ, तब भी मैं द्वैत में हूँ। तीसरे स्तर पर, मैं अद्वैत में आता हूँ, जहाँ भगवान न तो साधन हैं और न ही साध्य; भगवान गंतव्य नहीं हैं; भगवान स्वयं यात्री हैं। भगवान खोजे जाने योग्य नहीं हैं, बल्कि भगवान स्वयं साधक हैं। वह अंतिम चरण है, जिसे हमें अभी देखने की आवश्यकता नहीं है; यहाँ हम अनन्य भक्ति के बारे में बात कर रहे हैं; जहाँ भगवान स्वयं लक्ष्य हैं।

पूर्व के श्लोक में यह कहा गया है कि मेरे चतुर्भुज या द्विभुज स्वरूप को वेद, जप, तप, यज्ञ एवम दान से नही देखा जा सकता, तो इन सब से जो भी प्राप्त है वह है ब्रह्मविद होना अर्थात ब्रह्म में लीन हो जाना।

तब चतुर्भुज या द्विभुज का दर्शन यदि संभव है तो उस का एक ही मार्ग है, अनन्य भाव से भक्ति। हम ने पूर्व में भी पढ़ा है अनन्य भक्तिवालों के लिये ही भगवान् ने कहा है, जो अनन्य चित्त वाला भक्त नित्य निरन्तर मेरा चिन्तन करता है, उसके लिये मैं सुलभ हूँ (गीता 8। 14) और जो अनन्यभक्त मेरा चिन्तन करते हुए उपासना करते हैं, उनका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ (गीता 9। 22)।

भक्ति के चार स्वरूप में चार प्रकार् के भक्त आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी पढ़े है। इस मे ज्ञानी भक्त जब परमात्मा की भक्ति में साधन और साध्य के मतभेद की पार कर के परमात्मा के एकस्वरूप की भक्ति करने लग जाये तो वह अनन्य भक्ति होगी।

अनन्य भक्ति का अर्थ है, केवल भगवान् का ही आश्रय हो, सहारा हो, आशा हो विश्वास हो । भगवान् के सिवाय किसी अन्य योग्यता, बल, बुद्धि आदि का किञ्चिन्मात्र भी सहारा न हो। इन का अन्तःकरण में किञ्चिन्मात्र भी महत्त्व न हो। यह अनन्यभक्ति स्वयं से ही होती है, मन बुद्धि इन्द्रियों आदि के द्वारा नहीं। तात्पर्य है कि केवल स्वयं की व्याकुलता पूर्वक उत्कण्ठा हो, भगवान् के दर्शन बिना एक क्षण भी चैन न पड़े। ऐसी जो भीतरमें स्वयंकी बैचेनी है, वही भगवत्प्राप्ति में खास कारण है। इस बेचैनी में, व्याकुलता में अनन्त जन्मों के अनन्त पाप भस्म हो जाते हैं।

भक्त को जिस ' मैं ' वाले स्वरूप में समाकर एकाकार हो जाना चाहिये, वह 'मैं ' वैसा ही हूँ। इसलिये भक्त के लिये परम् आवश्यक है कि वह अपनी समग्र भावनाओ को इकठ्ठा कर के प्रेम से सराबोर हो कर मेरी ओर बढ़े और मुझ में समा कर समरस हो जाये।

जैसे क्षीर सिंधु के तट पर भी क्षीर ही होता है और मध्य में भी क्षीर ही होता है। सच्ची भक्ति वही है, जिस में व्यक्ति छोटी सी चींटी को भी मेरा ही स्वरूप समझे और पूरे चराचर को भी मुझ से पृथक न माने। बस इस के अलावा और कोई किसी प्रकार की भक्ति सच्ची भक्ति नहीं है। जिस समय ऐसी ऐक्य स्थिति प्राप्त होगी, उसी समय मेरे स्वरूप का वास्तविक ज्ञान हो जाएगा और ज्यों ही किसी को स्वरूप ज्ञान होगा, त्यों ही इसे स्वाभाविक रूप से मेरे दर्शन भी हो जाएंगे।

मेरे स्वरूप का साक्षाकार होते ही अहंकार का नाश हो जाता है और उस के नष्ट होते ही द्वेतभाव भी स्वतः समाप्त हो जाता है। तब फिर मैं और वह दोनों स्वभावतः मिल कर एक मैं ही हो जाते है।

वैदिक ग्रंथों में इसे भी बार-बार दोहराया गया है;

भक्तिरेवैनम् नयति भक्तिरेवैनम् पश्यति भक्तिरेवैनम्। दर्शयति भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव गर्यसी ।। (माथर श्रुति)

"केवल भक्ति ही हमें भगवान के साथ एकीकृत करती है। उसका दर्शन करने के लिए केवल भक्ति ही हमारी सहायता करेगी। उसे केवल भक्ति द्वारा अनुभव किया जा सकता है। केवल

भक्ति ही उसकी प्राप्ति में हमारी सहायता करेगी। भगवान सच्ची भक्ति में बंध जाते हैं जो सभी मार्गों में सर्वोत्तम है।"

न साध्यति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ।।(श्रीमदभागवत् 11.14.20)

"उद्धव! मैं अपने भक्तों के वश में हो जाता हूँ और वे मुझे जीत लेते हैं किन्तु जो मेरी भक्ति में लीन नहीं हैं, वे चाहे अष्टांग योग का पालन करें, सांख्य दर्शन या अन्य दर्शनों का अध्ययन करें, पुण्य कर्म और तपस्या करें तब भी वे कभी मुझे नहीं पा सकते।"

भक्त्याहमेकया ग्राहयः श्रद्धयात्माप्रियःसताम्।(श्रीमदभागवतम् 11.14.21)

"मैं केवल प्रेममयी भक्ति के माध्यम से ही प्राप्य हूँ जो श्रद्धा के साथ मेरी भक्ति में तल्लीन रहते हैं, वे मुझे बहुत प्रिय है।"

मिलहि न रघुपति बिनु अनुरागा। किये जोग तप ज्ञान वैरागा।। (रामचरितमानस)

"बिना भक्ति के कोई भी भगवान को प्राप्त नहीं कर सकता चाहे कोई अष्टांग योग, तपस्या, ज्ञान और विरक्ति का कितना भी अभ्यास क्यों न कर ले।"

भक्ति के विषय में आचार्य शंकर कहते हैं कि सभी मोक्ष साधनों में भक्ति ही श्रेष्ठ है और यह भक्ति स्वस्वरूप के अनुसंधान के द्वारा आत्मस्वरूप बन जाती है। **जिन तीन क्रमिक सोपानों में सत्य का साक्षात्कार होता है, उस का निर्देश भगवान् इन तीन शब्दों से करते हैं जानना देखना और प्रवेश करना।** सर्व प्रथम एक साधक को अपने साध्य तथा साधन का बौद्धिक ज्ञान आवश्यक होता है, जिसे यहां जानना शब्द से सूचित किया गया है और इसका साधन है श्रवण। इस प्रकार कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेने पर मन में सन्देह उत्पन्न होते हैं इन सन्देहों की निवृत्ति के लिए प्राप्त ज्ञान पर युक्तिपूर्वक मनन करना अत्यावश्यक होता है। सन्देहों की निवृत्ति होने पर तत्त्व का दर्शन (देखना) होता है। तत्पश्चात् निदिध्यासन के अभ्यास से मिथ्या उपाधियों के साथ तादात्म्य को सर्वथा त्यागकर आत्मस्वरूप के साथ एकरूप हो जाना ही उसमें प्रवेश करना है। आत्मा का यह अनुभव स्वयं से भिन्न किसी वस्तु का नहीं वरन् अपने स्वस्वरूप का है। प्रवेश शब्द से साधक और साध्य के एकत्व का बोध कराया गया है। स्वप्नद्रष्टा के स्वाप्निक दुखों का तब अन्त हो जाता है, जब वह जाग्रत पुरुष में प्रवेश करके स्वयं जाग्रत पुरुष बन जाता है।

तुलसी दास जी कुछ चौपाइयों को हम भी दोहराते है जो भक्ति से परमात्मा की प्राप्ति को कहती है।

श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहहिं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।

रामचन्द्र के भजन बिनु जो चह पद निर्वान। ज्ञानवंत अपि सो नर पशु बिनु पूँछ विषान।।

मोहि भगत प्रिय सतंत, अस विचारी सुनु काग। कायँ वचन मन मम पद, करेसु अचल अनुराग।।

भक्ति के विषय पर आगे इस अध्याय के अंतिम श्लोक में परमात्मा क्या कहते है यह हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 11.54।।

।। भक्ति, ज्ञान और कर्मयोग ।। विशेष गीता - 11.54 ।।

अभी तक हम ने गीता में पढ़ा कि देह में बनी सर्वभूतात्मैक्यरूपी निष्काम बुद्धि ही कर्मयोग की और मोक्ष की भी जड़ है। यह शुद्ध बुद्धि ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञान से प्राप्त होती है। अतः इस को प्राप्त करने के लिये ज्ञान, ध्यान और त्याग को हम ने पढ़ा। किन्तु प्रश्न यह है कि यह सभी के लिये संभव नही है। प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि का विकास एक समान हो, यह आवश्यक नही। तो क्या हम यह मान ले कि मोक्ष का अधिकार उन लोगो को नही है,जिन का मानसिक विकास उच्च श्रेणी में नही हुआ है।

कुछ बाते ज्ञान से समझ मे आती है, ज्ञानी लोग भी इस के लिये अध्ययन और चितंन करते रहते है। किंतु जब ब्रह्म का विषय हो तक उस की विवेचना करते हुए उन्हें भी नेति-नेति कहना पड़ता है, क्योंकि ब्रह्म का वर्णन करना सभी के लिये सम्भव नही।

कौन इस संभावना से इनकार कर सकता है कि बरगद के फल में कुछ भी नजर नही आने पर भी, इतना विशाल वृक्ष बन जाता है। सूर्य पूर्व से हर सुबह प्रकट होता है, क्यों? हम कारण बता सकते है परंतु 'क्यों' को बताना कठिन है।

स्त्री के प्रति दृष्टिकोण का आधार हमारा ज्ञान नही होता, उस का आधार होता है, हमारी श्रद्धा और भावना। एक स्त्री श्रद्धा और भावना से माँ, बहन, कामुक, बेटी आदि विभिन्न स्वरूप में दिखती है।

इसी प्रकार प्रकृति में अनेक वर्षों से जो क्रम चल रहा है, वह किस को कब कौंध जाए, इसे कौन जानता है। न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण की खोज सेब को गिरते देख कर की, क्या सेब उस से पहले नही गिरता था।

अतः सर्वभूतात्मैक्यरूपी निष्काम बुद्धि को यही प्राप्त करना सभी के सम्भव न हो तो उस ज्ञान को, जिसे अन्य ने प्राप्त किया है, हम श्रद्धा, प्रेम और विश्वास के साथ भी प्राप्त कर सकते है। परमात्मा कहते है, जो मुझे भक्तिभाव से भजते है, उन्हें ज्ञान मैं प्रदान करता हूँ और उन का योगक्षेम मैं वहन करता हूँ।

कर्म कांड या पूजा पाठ में मंत्र जाप करने से या मंदिर में जा कर दर्शन करने से मुक्ति मिल जाती, अथवा निष्ठा मंदिर परिसर में मूर्ति की तारक शक्ति होतो तो, मन्दिर में चप्पल की चोरी कोई नही कर सकता था। दिनभर लोगो को व्यापार में धोका देना या लोगो को फसा कर ठगना, फिर सुबह-शाम मंदिर जाना, भक्ति का भाव नही है। जब तक व्यवहारिक या स्वार्थ बुद्धि से भक्ति होगी तो कितनी भी पूजा करे, कुछ भी लाभ नही होगा। मुक्ति के लिये अनन्य भक्ति ही होनी चाहिए।

भक्ति विभिन्न प्रकार और उद्देश्य को ध्यान में रख कर की जाती है, इसलिये भक्ति सगुण उपासना है। इस भक्ति में पराकाष्ठा अनन्य भक्ति की है, जहां भक्त और भगवान में अंतर नही रहे अर्थात भक्त भी ज्ञानयोगी की भांति भगवान के चिंतन में इतना अधिक डूब जाए कि उस की स्थिति ब्रह्मसन्ध की भांति हो, उसे एक चींटी तक मे भगवान ही के स्वरूप दिखे।

अतः मार्ग निष्काम कर्मयोग हो, ज्ञानयोग, ध्यान योग हो या फिर भक्ति योग। परमात्मा ही एक मात्र साध्य है, साधन भी वही है। यही एकरूपता है।

जीव जब तक प्रकृति से जुड़ा है, तब तक वह प्रकृति के नियमो से बंधा है। उस के बंधन में कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव का अभाव होना ही, मुक्त होना है। अतः अभाव का यह अर्थ यह कदाचित नही है कि जीव प्रकृति से मुक्त हो गया या कर्मो से मुक्त हो गया। कर्म का

स्वरूप निष्काम एवम लोकसंग्रह हेतु हो जाता है। इसलिए युद्ध भूमि में भगवान अर्जुन को कर्म त्याग का आदेश या सुझाव कभी नही देते।

आलस्य जीव का प्राकृतिक स्वभाव है। राग-द्वेष, मन की स्वावभिक प्रकृति है। इसलिये जीव मूलतः काम, क्रोध, लोभ, मोह, स्वार्थ जैसे दुर्गुणों से जुड़ा रहता है। ज्ञान योग के मार्ग क्लेशमय कठिन मार्ग है किंतु भक्ति मार्ग में भी अनन्य भक्ति का मार्ग भी किसी भी प्रकार् से तप से कम नही, किन्तु इस मे परमात्मा की कृपा दृष्टि बनी रहती है, इसलिये जब निष्काम कर्मयोगी श्रद्धा, प्रेम और विश्वास के साथ परमात्मा के प्रति समर्पण एवम स्मरण भाव ह्रदय में धारण कर के अपने कर्म में लगा रहता है, तो उस के लिये परमात्मा ही सारथी का कार्य भार संभालते है और उसे के लिये सभी मार्ग से निष्कंटक पार करवाते है।

इस अध्याय के अंत मे भक्तिमार्ग का वर्णन किया है जिसे हम अगले अध्याय में पढ़ेंगे। भक्तिमार्ग मोक्ष का सब से अहम और सरल मार्ग है किंतु भक्ति किसे कहते है, यह निष्काम कर्मयोग से किस प्रकार सम्बंधित है, हम आगे पढ़ेंगे।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष गीता - 11.54 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 11.55॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥

mat-karma-kṛn mat-paramo
mad-bhaktaḥ saṅga-varjitaḥ
nirvairaḥ sarva-bhūteṣu
yaḥ sa mām eti pāṇḍava

भावार्थ:

हे पाण्डुपुत्र! जो मनुष्य केवल मेरी शरण होकर मेरे ही लिए सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को करता है, मेरी भक्ति में स्थित रहता है, सभी कामनाओं से मुक्त रहता है और समस्त प्राणियों से मैत्रीभाव रखता है, वह मनुष्य निश्चित रूप से मुझे ही प्राप्त करता है। (५५)

Meaning:

One who performs actions for me, considers me as supreme, is devoted to me, is free from attachment and without enmity towards all beings, that person attains me, O Paandava.

Explanation:

What do we get as a reward for studying one of the longest chapters of the Gita? It is this concluding shloka of the eleventh chapter which Shankaraachaarya considers the essence of the entire Bhagavad Gita. Shri Krishna says that Isvara can be attained by following five guidelines: perform actions for the sake of Ishvara, fix Ishvara as the ultimate goal, observe single- pointed devotion to Ishvara, remain free from worldly attachments, do not harbour likes or dislikes.

Now, he concludes this chapter by highlighting five characteristics of those who are engaged in exclusive devotion:

1.They perform all their duties for my sake. Accomplished devotees do not divide their works into material and spiritual. They perform every work for the pleasure of God, thus consecrating every act of theirs to him. **The Saint Kabir states:**

"When I walk, I think I am circumambulating the Lord; when I work, I think I am serving the Lord; and when I sleep, I think I am offering him obeisance. In this manner, I perform no activity other than that which is offered to him."

2.They depend upon me. Those who rely upon their spiritual practices to reach God are not exclusively dependent upon him.

3.They are devoted to me.

4.They are free of attachment. Devotion requires the engagement of the mind. This is only possible if the mind is detached from the world.

5.They are without malice toward all beings.

Furthermore, all five steps are interconnected and strengthen each other. The mind cannot fully detach itself from everything. Like a child that drops attachment to toys and is attached to higher ideals as an adult, Shri Krishna advises us to drop attachments to material things and develop attachment for Ishvara. When we begin to see everything as Ishvara, and see ourselves as part of Ishvara, we will not generate feelings of dislike towards anyone or anything, just like we do not have enmity towards any part of our own body. This is the theme of this chapter, where the individual essence sees itself as part of the universal eternal essence.

।। हिंदी समीक्षा ।।

जो जीव परमात्मा को प्राप्त करना चाहता है उस के एकादश अध्याय यह अंतिम श्लोक एक मंत्र के समान है। इस भौतिक संसार मे जीव प्रकृति एवम अध्यात्म में सामंजस्य को इस श्लोक द्वारा समझा जा सकता है और मोक्ष किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है।

परमात्मा को प्राप्त करने एवम उस के विश्वरूप के दर्शन को प्राप्त करने के जहां वेद, शास्त्र, यज्ञ, पूजा, पाठ को असाध्य बता कर, अनन्य भक्ति का मार्ग बताया गया है। उसी अनन्य भक्ति का स्वरूप क्या हो, इस को स्पष्ट करते हुए, परमात्मा कहते है।

किसी जीव को ईश्वरत्व प्राप्त करने का श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट योजना के पांच अंग हैं। उन पांच अंगों या आवश्यक गुणों को इस श्लोक में बताया गया है। वे गुण हैं (1) जो ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करता है, (2) जिसका परम लक्ष्य ईश्वर ही है, (3) जो ईश्वर का भक्त है, (4) जो आसक्तियों से रहित है तथा (5) जो भूतमात्र के प्रति वैरभाव से रहित है। इन पांच आवश्यक गुणों में आत्मसंयम की सम्पूर्ण साधना का सारांश दिया गया है। ईश्वर के अखण्ड स्मरण से ही समस्त उपाधियों के कर्मों में अनासक्ति का भाव दृढ़ होता है।

जो मनुष्य स्वार्थ, ममता और आसक्ति को छोड़ कर, सब कुछ भगवान का समझ कर, अपने को केवल निमित्तमात्र मानता हुआ यज्ञ, दान, तप और खान - पान, व्यवहार आदि समस्त शास्त्र विहित कर्तव्यकर्मो को निष्काम भाव से भगवान की ही प्रसन्नता के लिये भगवान की आज्ञानुसार करता है- **वह मत्कर्मकृत कहलाता है।**

जो भगवान को ही परम आश्रय परमगति, एक मात्र शरण लेने योग्य, सर्वोत्तम, सर्वाधार, सर्वशक्तिमान, सब के सुहृद, परम् आत्मीय और अपने सर्वस्व समझता है तथा उन के किये हुए प्रत्येक विधान से सदा सुप्रसन्न रहता है - **उसे मत्परमः अर्थात भगवान के परायण कहेंगे।**

भगवान में अनन्य प्रेम हो जाने के कारण जो भगवान में ही तन्मय हो कर नित्य निरंतर भगवान के नाम, रूप, गुण, प्रभाव और लीला आदि का श्रवण, कीर्तन और मनन आदि करता रहता है**: वह मद्भक्त है।**

शरीर, स्त्री, पुत्र, घर,धन कुटुंब तथा मान बड़ाई जितने भी लोक परलोक के भोग्य पदार्थ है, उस मे किसी प्रकार की आसक्ति नही रखना ही **सर्ववर्जित** है।

प्रेम जाग्रत् होने पर राग का अत्यन्त अभाव हो जाता है। राग का अत्यन्त अभाव होने से और सर्वत्र भगवद्भाव होने से उस के शरीर के साथ कोई कितना ही दुर्व्यवहार करे, उस को मारेपीटे, उस का अनिष्ट करे, तो भी उस के हृदय में अनिष्ट करने वाले के प्रति किञ्चिन्मात्र भी वैर भाव उत्पन्न नहीं होता। वह उस में भगवान् की ही मरजी, कृपा मानता है। **ऐसे भक्त को भगवान् ने निर्वैरहः सर्वभूतेषु कहा है।**

गीता में कर्मयोग, ध्यान योग, बुद्धि अर्थात ज्ञान योग के पश्चात भक्ति योग का विचार है। क्योंकि ईश्वर के शरणागत होने यह तीन मार्ग है। किसी भी प्रकार का कर्म फल के बिना नहीं होगा। अतः कार्य - कारण से सिद्धांत से यदि कर्ता भाव में कर्म के फल मिलते रहे तो मोक्ष नहीं मिल सकता। इसलिए जीव के कर्म, ज्ञान और उपासना का लक्ष्य मुक्ति का तभी होगा, जब यह परमात्मा को समर्पित भाव से होगा। इसलिए भक्ति के पांच गुणों में कर्ता भाव जब अहम को त्याग कर परमात्मा के प्रति समर्पित भाव में परिवर्तित होगा तो जो भी आप करेंगे, वह परमात्मा की भक्ति ही होगी। इसी समर्पित भाव की भक्ति को हम आगे के अध्याय में पढ़ेंगे।

यहाँ मन से यह बात निकाल देनी चाहिये कि भक्त होने का अर्थ कर्म विहीन होना है। कर्म प्रकृति का विधान है, जीव निमित्त है, यदि कर्म को ले कर उस के हाथ मे कुछ है तो सिर्फ कामना, मोह, लालसा एवम अहम। यदि नहीं हो जो भी कर्म है, वो प्रकृति के त्रियामी गुणों के अंतर्गत निमित्त हो सृष्टि के संचालन के लिए है। जीव कर्म से बंधे या परमात्मा से, यह जीव ही निश्चित करता है। यदि परम् गति प्राप्त करनी है तो यह पांच गुण होना आवश्यक है।

हनुमान जी, प्रहलाद, जनक, कर्ण, भीष्म, राजा बलि आदि अनेक उदाहरण है जिन में इन पांच गुणों में अधिक से अधिक गुण मिलेंगे। कहते है सुदामा में यह पांचों ही गुण थे। सन्त कबीर की इस दोहे में भक्ति का सार है।

जहाँ जहाँ चलु करू परिक्रमा, जो जो करू सो सेवा । जब सौंवु करू दण्डवत, जानु देव न दूजा ।।

।। हरि ॐ तत सत।।11.55।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ अध्याय: ११ सारांश॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः॥

||ōṃ tatsād iti śrīmadbhagavadgītāsūpaniṣatsu brahmavidyāyāṃ yōgaśāstrē śrīkṛṣṇārjunasaṃvādē viśvarūpadarśanayōgō nāma ēkādaśō'dhyāyaḥ||

भावार्थ:

इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में विश्वरूप दर्शन-योग नाम का ग्यारहवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ॥

Explanation:

So, the eleventh chapter of the Gītā is over which is titled Viśva rūpa darśana yōgāḥ.

॥ हरि: ॐ तत् सत् ॥

Summary of Bhagvad Gita Chapter 11:

All of us know that even the largest tree came from a tiny seed. But our eyes cannot see the miniscule changes that transform the seed into a sapling, then into a plant and so on. Only when we take a series of photographs each day and play them at high speed can we actually see the seed turn into a tree. Our other senses have similar limitations. The mind,

which gives meaning to the information from our senses, chops up time and space. It can never view the unity of things.

Arjuna was aware of this limitation. Having heard about Ishvara's vibhootis or grand expressions in the prior chapter, he desperately wanted to get rid of this limitation. In response to his request, Shri Krishna granted him divine vision that enabled him to see the universe without the limitations of space and time. Without the limitation of time, Arjuna did not just see the tree, he saw the seed, the sapling and the tree all at once. Without the limitation of space, he saw not just that tree, but all the trees in the universe all at once.

Our mind has another limitation. It tends to get attracted to some things, and gets repelled from other things. To highlight this limitation, Shri Krishna first showed Ishvara's pleasant form, and then followed it with his frightful, menacing form. Everything that existed in the pleasant form was violently destroyed by the same Ishvara. Shri Krishna later emphasized that creation and destruction were to be viewed in the same light, because creation cannot happen without destruction. Both have their place in the universe. Also, when one's actions or karmas are exhausted on earth, they are destroyed. There is no randomness or personal bias in who gets destroyed.

Shri Krishna concluded this chapter by instructing Arjuna on how to attain Ishvara. The key qualification is ananya bhakti, or single- pointed devotion. Combined with karma yoga, jnyana yoga, subduing likes and dislikes and giving up attachment to the material world, we are able to access Ishvara in his cosmic form. The previous shloka enabled us to see the one Ishvara in everything, the one in all. This chapter urges us to see the all in one.

सारांश - अध्याय एकादश

अध्याय नवम में भक्तियोग के बारे में श्री कृष्ण ने बताना शुरू किया था। भक्त का अर्थ है जो अनन्य भाव से नित्य परमात्मा को स्मरण करे एवम उस के प्रति समर्पित हो। इस प्रकार के भक्त का योगक्षेम का वहन परमात्मा द्वारा ही होता है।

भक्त चार प्रकार के बताए गए जिन्हें आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी में विभक्त किया गया है। ज्ञानी भक्त जब अनन्य भाव से परमात्मा को पूर्ण श्रद्धा, प्रेम और विश्वास से समर्पित हो स्मरण करता है, तो वह अनन्य भक्त कहलाता है। परमात्मा इस प्रकार के भक्त को ज्ञान भी प्रदान करते है और अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन भी देते है।

अध्याय दशम में अर्जुन परमात्मा से समस्त विभूतियो को बताने की प्रार्थना करता है। किन्तु परमात्मा कण कण में है इसलिये कुछ विशिष्ट ही विभूतियो को बताया गया।

इतना सब कुछ सुनने एवम जानने के बाद अर्जुन के मन ने परमात्मा का एक विश्वरूप देखने की इच्छा हुई, इसलिये उसने इस ले लिए प्रार्थना की। अर्जुन भगवान श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे एवम भगवान भी उस से सर्वाधिक प्रेम करते थे, इसलिये उन्होंने अपना विराट विश्वरूप दर्शन दिया। किन्तु विश्व रूप का दर्शन प्राकृतिक आंखों से करना सम्भव नही, जिस के लिये उन्होंने अर्जुन को दिव्यदृष्टि भी दी।

अव्यक्त परमात्मा निराकार एवम अनन्त है। यह समस्त ब्रह्मांड उस अत्यंत सूक्ष्म परमात्मा के संकल्प मात्र से उत्पन्न है, जिसे वह प्रकृति द्वारा माया से त्रियामी गुणों से नियंत्रित करता है। इस निर्गुणाकार परब्रह्म को अत्यंत उत्तम प्रकार से व्यास जी सृजन से संहारक तक प्रस्तुत किया।

अर्जुन परमात्मा के चतुर्भुज स्वरुप के दर्शन से लेकर, भविष्य में होने वाली घटनाओं तक देख रहा है। अर्जुन उस मे देख रहा है कौरव एवम पांडव सेना के महारथी एक एक कर के नष्ट जो रहे है। उस भयानक दृश्य को देख कर अर्जुन भयभीत हो कर प्रार्थना करने लगा कि हे कृष्ण, आप अपने सौम्य रूप में ही दर्शन दे। अर्जुन के भयभीत होने का कारण उस की प्राकृतिक क्षमताओं का सीमित होना है, वह नर है, नारायण को देख पाना और महाकाल के स्वरूप में स्वीकार करना सम्भव नही।

अर्जुन की प्रार्थना पर भगवान ने उसे अपना चतुर्भुज सौम्य रूप दिखाया एवम पूर्वत द्विभुज हो प्रस्तुत हुए। उन्होंने स्पष्ट किया कि उन का विराट विश्वरूप सब के द्वारा देखना संभव नही।

महृषि व्यास जी निर्गुण परमात्मा, प्रकृति, माया एवम काल का अत्यंत उत्तम निरूपण किया है जो इस से पहले कभी नही हुआ। परमात्मा का स्वरूप आदि, मध्य, अंत रहित, कालातीत अर्थात काल से परे दिखाया गया। काल मे हर नियति, घटना कर्म तय है, मनुष्य जो यह सोचता है कि वो कर रहा है यह उस का मतिभ्रम है। मृत्यु लोक में कर्म का अधिकार अवश्य दिया है किंतु काल ने भविष्य पहले से तय कर के रखा है, इसलिये भगवान श्री कृष्ण कहते है कि इस नियति के अनुसार निष्काम कर्म को करो और इस जगत में कीर्ति, सुख एवम ऐष्वर्य का भोग करो। यदि काल ने तुम्हे निमित चुना है तो अपने कर्तव्य धर्म का पालन करो। क्योंकि यदि आप अपने कर्तव्य धर्म का पालन नहीं करेंगे तो भी होना वही है जो काल ने नियत कर रखा है। आप कर्ता नही है, कर्म के फल पर अधिकार भी नही है, फिर सिर्फ कर्तव्य पालन ही आप के अधिकार क्षेत्र में है।

यहाँ यह भी स्पष्ट है कि मनुष्य को कर्म का अधिकार है, जो भी कार्य हो रहा है, वह प्रकृति योगमाया के साथ कर रही है। वह व्यक्ति को उस की कर्म की क्षमताओं के आधार पर कार्य के लिये निमित्त बनाती है, मनुष्य ही कर्तृत्व एवम भोक्तत्व भाव मे प्रकृति के आधीन हो जाता है।

अर्जुन का विश्वरूप दर्शन से मोह, भय एवम अहम नष्ट हो गया था। उसे कृष्ण के सदाहरण किन्तु प्रिय सखा के इतने विस्तृत ज्ञान एवम स्वरूप का कतई भान नही था। उस का मन उन के प्रति इतनी श्रद्धा एवम प्रेम से भर गया कि वो पूर्व में अनजाने में भी की गई गलती, अभद्रभाषा या मजाक की माफी मांगने लग गया।

परमात्मा ने बताया कि यह विराट विश्वरूप दर्शन हर किसी के लिये संभव नही। इसे ज्ञान, तप, यज्ञ, दान या कर्म से प्राप्त नही किया जा सकता। इस को देखने के लिए देव, यक्ष, गंधर्व, ऋषि मुनि सभी प्रत्यन करते है किंतु किसी को भी नही देखने मिलता। इस का अधिकारी वो ही है जो उन की अनन्य भाव से समर्पित को स्मरण करें और जिस को वो दिखाना चाहे।

गीता में निष्काम कर्मयोगी के ज्ञानयोग, ध्यान योग, बुद्धियोग का निरूपण करने के बाद, परमात्मा अपने स्वरूप के दर्शन करवाते है और क्योंकि उपरोक्त तीनो मार्ग क्लेशमय होने से, सरल मार्ग श्रद्धा, प्रेम और विश्वास के साथ समर्पण और स्मरण को बतलाते है। यही भक्ति मार्ग है जो हर व्यक्ति, जाति, वर्ण के उपयुक्त एवम अपनाने के सरल है।

संसार मे प्रेम ही एक ऐसी पवित्र वस्तु है, जो अहम को भेंट लेने में समर्थ है। सांसारिक स्त्री के प्रेम में मनुष्य अपने आप को भूल सकता है तो परमात्मा से प्रेम में तो वह समुन्दर की थाह भी पा सकता है। प्रेम का अर्थ ही है अपने आप को समर्पित कर के एक हो जाना।

विश्वरूप दर्शन का यह अध्याय भक्तियोग द्वारा ही दर्शन प्राप्त होने के संदेश के साथ अंत मे भक्त के पांच गुण बताए गए जिन्हें हम क्रमशः मत्कर्मकृत, मत्परमः, मद्भक्त, सर्ववर्जित एवम निर्वैरहः के नाम से जानते है।

सारांश में कह सकते है कि योग में ज्ञान, कर्म, बुद्धि या भक्ति भी दिमाग से करने वाला प्रकृति के त्रिगुण की योगमाया से परे नहीं होता। उस की कामनाएं या मोक्ष विभिन्न लोक यहां तक ब्रह्म लोक तक की हो सकती है किंतु वह सब प्रकृति की ही है। इसलिए परब्रह्म को अनन्य भक्ति अर्थात दिमाग की जगह हृदय से समर्पित भाव की भक्ति से प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए जितने भी मार्ग है, वे आत्मशुद्धि या चित्तशुद्धि के है और मोक्ष का मार्ग अनन्य भक्ति से ही जाता है। जगत के समस्त कार्य भक्त को निराभिमान हो कर परमेश्वर अर्पण बुद्धि से करना चाहिये अर्थात समस्त कार्य इस निरभिमान बुद्धि से करना चाहिए, कि जगत के सभी कर्म परमेश्वर के है, सच्चा कर्ता और कराने वाला वही है: किंतु हमे निमित्त बना कर वह ये कर्म हम से करवा रहा हैं; ऐसा करने से कर्म शांति अथवा मोह प्राप्ति में बाधक नही होते। गीता के सार के रूप में यह अध्याय अत्यंत महत्वपूर्ण है जो भक्ति मार्ग में राम नाम की माला जपने की जगह उत्कट भक्ति के साथ ही साथ उत्साह से सब निष्काम कर्म करते रहने की शिक्षा देता है।

भक्ति मार्ग के पांच गुणों विस्तृत रूप से अगले बारहवें अध्याय भक्ति योग में पढ़ेंगे।

।। हरि ॐ तत सत।। 11 अध्याय ।।